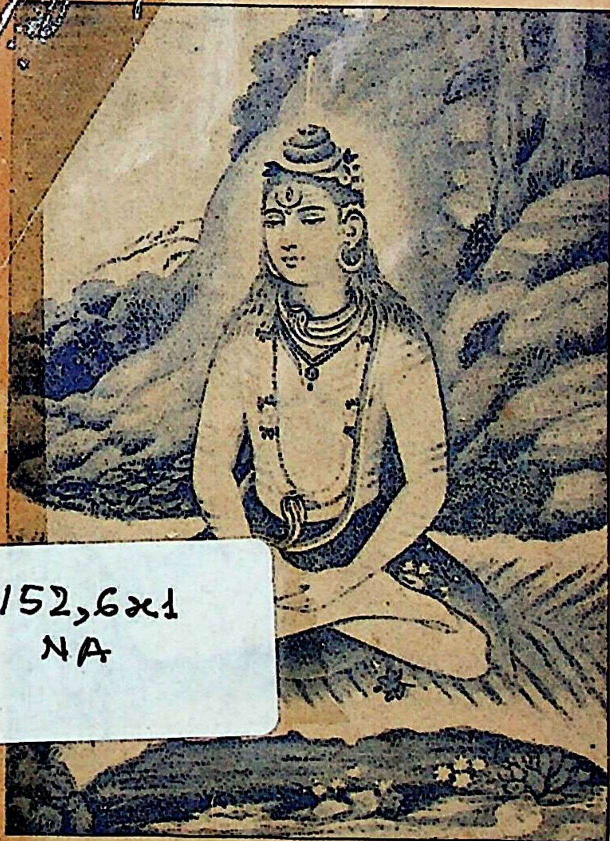
शिव-भक्त-माल



लीयते शमनाद्भीतिः क्षीयते भवबन्धनम् ।
यन्नाम्ना तमहं वन्दे शिवकल्पतरुं शिवम् ॥१॥

Shiva-Bhakta-mal.

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

❀ प्रस्तावना ❀

अवियोगोऽस्तु मे देव त्वदङ्घ्रियुगलेन वै ।
एष एव वरः शम्भो नान्यं कञ्चिद्वरं वृणे ॥

सम्पूर्ण वेदों तथा वेदान्त का सार और परम तत्त्व शिव ही हैं । "ईशानो ज्योतिरव्ययः, एको हि रुद्रो न द्वितीयः, यो देवानां प्रभवोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः" इत्यादि श्रुतियों से सिद्ध होता है कि एक शिव ही अद्वितीय हैं । अथर्वशीर्ष के प्रथम खण्ड में लिखा है–किसी समय देवताओं ने रुद्र से पूछा कि आप कौन हैं ? तब उन्होंने कहा—एक मात्र मैं ही जगत् की उत्पत्ति और पालन करने वाला हूँ । मुझसे अधिक कोई नहीं है । इसी के दूसरे और तीसरे खण्ड में सब देवता शिवजी की विभूति का वर्णन किये हैं । "यो रुद्रो अग्नौ य अप्सु य ओषधीषु यो रुद्रो विश्वा भुवनाविवेश तस्मै रुद्राय नमोऽस्तु ।" अर्थात् जो रुद्र अग्नि, जल, ओषधी और सब संसार में व्याप्त हैं, उनको नमस्कार है । इसी प्रकार रुद्राध्याय में "नमः स्रोतस्याय च" इस मन्त्र में भी सब वस्तु में शिव का सद्भाव कहा है । "य एषो[illegible]" इत्यादि बृहदा-

रण्यक के मंत्रों में भी यही कहा है। "अथ यदिदमस्मिन्निति" इसमें शिवको सर्वेश लिखा है। "ब्रह्मविष्ण्वग्निशुक्रार्कजलभूमि-पुरोगमाः॥ सुराऽसुराः संप्रसूतास्ततः सर्वे महेश्वरा:" ब्रह्माण्डपुराण में कहा है कि ब्रह्मा, विष्णु, अग्नि, शुक्र, सूर्य, जल, भूमि आदि सब उन्हीं (शिव) से उत्पन्न हुए हैं। हरिवंश की कैलासयात्रा के प्रसंग में शिवजी ने कहा है—"हे गोविन्द ! जो तुम्हारे नाम हैं, सो मेरे ही हैं" "शिवं प्रस्तुत्य सर्वाणि ह वा एतस्य नामधेयानि" आश्वलायन के इस मंत्र में लिखा है कि शिव की स्तुति करके नामकरण करै। स्कन्दपुराण में लिखा है कि कोई ब्रह्मा, कोई विष्णु, कोई सूर्यादि की मूर्ति की उपासना करते हैं, परन्तु "प्रतिपाद्यो महादेवः स्थितः सर्वासु मूर्तिषु" इस प्रमाण से मूर्तियों में महादेव का प्रतिपादन करना चाहिये, वे ही सब में स्थित हैं। कूर्मपुराण में "गोप्ता चैव जगच्छास्ता शक्तः सर्वो महेश्वरः। यज्ञानां फलदो देवो महादेवनियोगतः" आदिवाक्यों से शिव ही को सब यज्ञ का फलदाता लिखा है। महाभारत के वनपर्व की तीर्थ-यात्रा के प्रसंग में—"ततो गच्छेत्सुवर्णाख्यं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्। यत्र विष्णुः प्रसादार्थं रुद्रमाराधयत्पुरा॥ वरांश्च सुबहूँल्लेभे दैवतैरपि दुर्लभान्" [illegible] जाय, जहाँ विष्णु ने शिव की आ[illegible]ते थे, इसी तरह द्रोणपर्व में अश्वत्थामा के लिं[illegible] शांतिपर्व में भीष्म ने कहा है—

"यं विष्णुरिन्द्रः सूर्यश्च तथा लोकपितामहः। स्तुवंति विविधैः स्तोत्रैर्देवदेवं महेश्वरम्॥ तमर्चयन्ति ये शश्वद्दुर्गाण्यतितरन्ति ते" जिनकी ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र और सूर्य स्तुति करते हैं, उन शिवजी का जो पूजन करता है, उसके सब कष्ट दूर हो जाते हैं। फिर अनुशासन पर्व में शिव से ब्रह्मा विष्णु की उत्पत्ति लिखी है। "सोऽसृजद्दक्षिणादंगाद्ब्रह्माणं लोकभावनम्। वामपार्श्वात्तथा विष्णुमादौ प्रभुरथासृजत्॥ अप्रज्ञातं जगत्सर्वं तदा ह्येको महेश्वरः" अर्थात् जब कुछ नहीं था, तब एक मात्र शिव थे, इत्यादि बहुत स्थल में शिव को सर्वेश्वर कहा है। हरिवंश में लिखा है कि श्रीकृष्णजी ने शिव की स्तुति कर के वर पाया है। वाल्मीकि में "रौद्राय वपुषे नमः" उत्तरकाण्ड में "ते तु रामस्य तच्छ्रुत्वा नमस्कृत्य वृषध्वजम्" ऐसा कहा है और अश्वमेधप्रकरण में रामचन्द्रजी ने शिवाराधन किया है। यथा—"विशेषाद्ब्राह्मणान्सर्वान् पूजयामास चेश्वरम्। यज्ञेन यज्ञहंतारमश्वमेधेन शंकरम्॥" और युद्धकाण्ड में—"अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः।" कहकर शिव का पूजन और शिव की सर्वोत्कृष्टता कही है। भागवत के चौथे स्कंध में दक्ष के यज्ञ में शिव की क्रोधशान्ति की इच्छावाले देवताओं से ब्रह्मा ने कहा है—"नाहं न यज्ञो न च यूयमन्ये ये देहभाजो मुनयश्च तत्त्वम्। विदुः प्रमाणं बलवीर्ययोर्वा तस्यात्मतंत्रस्य कथं विधित्सेत्॥" अर्थात् मैं, विष्णु, तुम, ऋषि और मुनि आदि कोई भी उन

शिव की महिमा को नहीं जानते। अष्टमस्कंध में–"न ते गिरित्राखिललोकपालविरिंचिवैकुण्ठसुरेन्द्रगम्यम्। ज्योतिः परं यत्र रजस्तमश्च सत्त्वं न यद्ब्रह्मनिरस्तभेदम्" कहा है इससे विष्णु ब्रह्मादि की अपेक्षा शिव की उत्कृष्टता का प्रतिपादन होता है। स्कन्दपुराण में "एषां त्रयाणामधिकः शिवः परमकारणम्" इस वाक्य से तीनों देवताओं से अधिक शिव को कहा है। इसी प्रकार पद्मपुराण में—"यस्यान्तःस्थानि भूतानि यस्मात्सर्वं प्रवर्तते। यदाहुस्तत्परं तत्त्वं स देवः स्यान्महेश्वरः॥" इत्यादि वाक्यों द्वारा चारों वेदों ने शिव की ही स्तुति की है। विष्णुपुराण में लिखा है कि—"धिक्तेषां धिक्तेषां धिक्तेषां जन्म धिक्तेषाम्। येषां न वसति हृदये कुमतेर्यदा विमोचको रुद्रः॥" अर्थात् जिनके हृदय में शिवभक्ति नहीं, उनको धिक्कार है। ऋग्वेद में–"अन्तरिच्छन्ति तं जनो रुद्रं परो मनीषया गृभ्णंति जिह्वया ससमिति" पुरुषसूक्त में भी—"उतामृतत्वस्येशान" इस ईशानपद से शिव का ही बोध होता है। इसी प्रकार बौधायनसूत्र में भी "रुद्रो ह्येवैतत्सर्वम्" और आश्वलायन में–"तस्मै शिवाय महते नमः सूक्ष्माक्षरात्मने" इससे शिवकी सर्वोत्कृष्टता कही है। पातञ्जल का भी–"पुरुषविशेष ईश्वरः" "तस्य वाचकः प्रणवः" यह अंश शिव का ही बोधक है। यही वार्ता वायुसंहिता के सातवें अध्याय में लिखी है। कौमुदीकार ने भी सूत्रों को शिवमूलक जानकर शिवका विषय

स्पष्ट किया है। पद्मपुराण के गीतामाहात्म्य में गीता के अठारह अध्याय को नारायण शिव की मूर्ति कहा है। "ईश्वरः सर्वभूतानाम्" और "तमेव शरणं गच्छ" यह वाक्य शिवपरक है। रसेश्वर मुनि ने भी कहा है—"कल्पान्तरे कदाचित्तु दग्ध्वा लोकान्महेश्वरः। सहसैवासृजद्विष्णुं ब्राह्मणं च निजेच्छया॥" अर्थात् शिव ने सृष्टि के आदि में ब्रह्मा और विष्णु को उत्पन्न किया है। इस तरह सब पुराण और धर्मशास्त्रादि में शिवकी उत्कृष्टता लिखी है। फिर विचार के साथ देखने से हरिहरमें कोई भेद नहीं पाया जाता। इससे बुद्धिमान् लोग इनको शास्त्रानुसार एक ही रूप मानते हैं। आगे लिखे प्रमाणों से यह बात और भी स्पष्ट हो जायगी कि शिवजी की उत्कृष्टता का प्रतिपादन करने में वेद किसी से पीछे नहीं हैं।*

यजुर्वेद—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्।

दिव्य गन्ध से युक्त, मर्त्यधर्महीन, उभय लोक के फलदाता, धन-धान्यादि से पुष्टि बढ़ानेवाले, तीन नेत्रवाले शिवदेवका हम

---

* वि० वा० पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र (मुरादाबाद) के हरिहरैक्यभाव वर्णन से।

पूजन करते हैं। वे शिवजी हमको मृत्यु, अपमृत्यु तथा संसार के मरण से मुक्त करें यानी छुड़ावें। जैसे पक्का फल अपनी ग्रन्थि से टूटकर पृथ्वी पर गिरता है इसी प्रकार हम भी जन्म-मरण के बन्धन से चिरमुक्त हो जायँ और अभ्युदय तथा निःश्रेयसरूप दोनों फलों से भ्रष्ट न हों।

नमस्ते रुद्र मन्यवऽउतोतऽइषवे नमः। नमस्ते अस्तु धन्वने वाहुभ्यामुततेनमः॥ १६।१॥ या ते रुद्र शिवात-नूरघोरापापकाशिनी। तया नस्तन्वाशन्तमयागिरिशन्ताभि-चाकशीहि या०॥ १६।२॥

हे दुःख दूर करनेवाले, ज्ञान के देनेवाले अथवा पापीजनों को कर्मफल देकर रुलानेवाले रुद्रदेव! आपको, आपके बाणों को और आपकी दोनों भुजाओं को नमस्कार है, हे रुद्र देव! आपका क्रोध और बाणधारी हस्त शत्रुओं पर पड़ै और हमको शान्ति हो ॥१६।१॥ कैलास पर्वत पर स्थित होकर प्राणियोंके सुख का विस्तार करनेवाले अथवा गिरा अर्थात् वाणीमें स्थित होकर सुखका विस्तार करनेवाले, पर्वत पर शयन करनेवाले हे सर्वज्ञ रुद्र! आपका शान्त और मंगलरूप विषमता रहित होने से पाप-फलको न देकर पुण्य-फल का ही देनेवाला है। उस (शान्तमय) सुख भरे शरीर से हमको आलोकित कीजिए ॥१६।२॥

नमः शम्भवाय च मयो भवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥१६।४१॥

इस लोक के कल्याणकारी, जिनसे कि सुख होता है अथवा सुखरूप संसाररूप मुक्तिरूप आप शिवजी को नमस्कार है। संसार के सुखदाता पारलौकिक कल्याण के आकर (खान) आपको नमस्कार है और मोक्षसुख करनेवाले आपको नमस्कार है, कल्याणरूप एवं निष्पाप आपको नमस्कार है और भक्तों के अत्यन्त कल्याणकारक तथा उनको निष्पाप करनेवाले हे शिवजी ! आपको नमस्कार है ॥ १६।४१ ॥

अथर्ववेद—

नमस्तेऽस्त्वायते नमो अस्तु परायते नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनाय ते नमः ॥ ११।१।२।१५ ॥

हे रुद्र ! हमारे सन्मुख आते हुए आपके निमित्त नमस्कार है, पराङ्मुख होकर जाते हुए आपको नमस्कार है, जहाँ-कहीं स्थित और अपने स्थान पर आसीन आपको नमस्कार है ।११।१।२।१५।

भवशर्वाविदं ब्रूमो रुद्रं पशुपतिश्च यः ॥११।३।६।९॥

भव तथा शर्व नामवाले महादेव के उद्देश्य से हम स्तुति-वाक्य कहते हुए रुद्ररूप पशुपति देव की स्तुति करते हैं।।११।३।६।९

सहस्राक्षमतिपश्यं पुरस्ताद्रुद्रमस्यन्त बहुधा विपश्चितम् ।
मोपरम जिह्वयेयमानेयम् ॥१२।२।१७ ॥

सहस्रों नेत्रवाले सन्मुख से आड़ में दीखनेवाले अनेक प्रकार से (पापों को) गिरानेवाले यानी नाश करनेवाले महा बुद्धिमान्, जयशक्ति के साथ चलते हुए रुद्र (दुःखनाशक शिव) से हम उपराम न हों यानी उनको न भूलें अर्थात् उनका निरन्तर चिन्तवन करें ॥ १२।२।२७ ॥

योऽभियातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति ।
पश्चादनुप्रयुङ्क्तेत्तं विद्धस्य पदवीरिव ॥११।२।१३॥

जो (दुष्कर्मा) गुप्त रीति से भी शिव की आज्ञा का भङ्ग करता है, शिवदेव उसे दण्ड ही देते हैं। जैसे व्याधे घायल शिकार को रुधिरादि चिन्ह से खोज कर पकड़ लेते हैं ॥ ११ । २ । १३ ॥

ऋग्वेद (रुद्रसूक्त)—

उन्मामदंद वृषभो मरुत्वान्त्वक्षीयया वचसानाधमानं । घृणीवच्छायामरपा अशीया विवासेयं रुद्रस्यसुम्नं ॥ कस्यते रुद्र मृडयाकुर्हस्तो यो अस्ति भेषजोजलाषः । अप भर्तारपसो दैव्यस्याभी नु मा वृषभ चक्षमीथाः ॥ प्र बभ्रेव

वृषभाय श्वितीचे महो मह्रीं सुष्टुतिमीरयामि। नमस्या-कल्मलीकिनं नमोभिर्गृणीमसि त्वेषं रुद्रस्य नाम ॥ स्थिरे-भिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः। ईशा नादस्य भुवनस्य भूरेर्न वा उ योषद्रुद्रादसूर्यम् ॥ अर्हन् बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपं। अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति ॥ ऋ० वे० अष्ट २–७ अ० २ वर्ग ४।

हे रुद्र! आपका सुखदायक हाथ कहाँ है, जो हाथ सबको सुखी करनेवाला है, उस हाथ से मेरी रक्षा करो। हे काम-नाओं की वर्षा करनेवाले! देवकृत पापों के विनाशक! आप मुझ अपराधी के अपराध शीघ्र क्षमा करें। विश्व के भर्ता, ब-भ्रुवर्ण, कामनाओं के बरसानेवाले, शीघ्रकारी, पूजित, इस गुण-विशिष्ट रुद्र के निमित्त मैं सुन्दर स्तुति का उच्चारण करता हूँ। हे स्तुति करनेवाले! प्रज्वलित और प्रकाशित रुद्र को नमस्कार करो अथवा हवि से उनका पूजन करो। हम महादेव का दीप्त नाम संकीर्त्तन करते हैं। दृढ़ अङ्गों से युक्त आठ मूर्तिरूप आत्मावाले बहुत रूपों से युक्त, तेजस्वी, बभ्रुवर्णवाले, रुद्र, प्रदीप्त, हिरण्मय, रमणीय अलंकारों से दीप्त होनेवाले हे ईश्वर! इस भूत-समूह के स्वामी! आप रुद्र से बल पृथक् नहीं होता। हे

रुद्र ! आप ही पूजा के योग्य होते हुए धनुष और बाण को धारण करते हैं, बहुत प्रकार के पूजनीय रूपों से युक्त निष्क अर्थात् हार को धारण करते तथा पूजित होते हुए इस समस्त विश्व को रक्षित रखते हो। हे रुद्र ! आपसे अधिक बलवान् इस जगत् में कोई नहीं है, इस कारण आप ही इस पूजा के व्यापार से युक्त होने योग्य हैं।

सामवेद—

आवोराजामध्वरस्य रुद्रम् ॥

कौषातकीब्राह्मण—

रुद्रो वै ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च देवानाम् ॥२५-१३॥

जैमिनि ब्राह्मण—

ततो देवा रुद्रं नापश्यन्। ते देवा रुद्रं ध्यायन्ति। ते देवा ऊर्ध्वं बाहवः स्तुन्वन्ति। यो वै रुद्रः स भगवानित्यादि।

शतपथब्राह्मण—

शर्व एतान्यष्टौ (रुद्रः, सर्वः, शर्वः, उग्रः, पशुपतिः, उग्रः, अशनिः, भवः, महान्देवः,) अग्निरूपाणि ॥ १६-१-३-१८ ॥

श्रीकुलार्णवतन्त्र—

अस्ति देवि परं ब्रह्मस्वरूपी निष्कलः शिवः।
सर्वज्ञः सर्वकर्त्ता च सर्व्वेशो निर्म्मलोऽद्वयः ॥ ७ ॥

स्वयं ज्योतिरनाद्यन्तो निर्व्वैरः परात् परः ।
निर्गुणः सच्चिदानन्दस्तथा वै जीवसंज्ञकः ॥ ८ ॥

तैत्तिरीयकारण्य—

ॐ सद्यो जातं प्रपद्यामि सद्यो जाताय वै नमो नमः ।
भवे भवेनाति भवेभवस्व मां भवोद्भवाय नमः ॥ १ ॥

वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमः ॥ २ ॥ बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः ॥ ३ ॥ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः। सर्वेभ्यः शर्वसर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥४॥ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि । तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥ ५ ॥ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम् । ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदा शिवोम् ॥६॥

बुद्धिमान् पुरुष के ज्ञान उत्पन्न करनेवाले महादेव के पंचमुखों के मध्य में पश्चिम मुख के प्रतिपादक मंत्र का अर्थ कहते हैं—मैं तो सद्योजात नामक पश्चिम मुख की शरण को प्राप्त होता हूँ, उस सद्योजात मुख को प्रणाम है। पृथ्वी में जन्म लेने के लिए आप मुझ को प्रेरणा मत कीजिये। बल्कि जन्म के लंघन-

रूपी तत्त्वज्ञान की प्रेरणा कीजिए। संसार से उद्धार करने-वाले सद्योजात के निमित्त प्रणाम है ॥ १ ॥ अब उत्तर मुख प्रतिपादक मंत्रार्थ कहते हैं—उत्तर मुख वामदेव, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, रुद्ररूप के निमित्त नमस्कार है। काल, कलविकरण और बलवि-करण के निमित्त नमस्कार है ॥ २ ॥ बल, बलप्रमथन, सर्वभूत-दमन, मनोन्मन के निमित्त नमस्कार है, जो महादेव कि सब के स्वामी हैं, उन के निमित्त नमस्कार है ॥ ३ ॥ अब दक्षिण वक्त्रके प्रतिपादक मंत्र का अर्थ कहते हैं—अघोर नामक दक्षिण वक्त्ररूप जो देव हैं, उनके विग्रह अघोर हैं। सात्त्विक होने से पहला विग्रह शान्त है, दूसरा विग्रह घोर अर्थात् राजस होने से उग्र है, तीसरा विग्रह तामस होने से घोरतर है, हे शर्व ! हे पर-मेश्वर!! आपके यह तीन प्रकार के विग्रह और सब रुद्ररूपों को सब देश काल में नमस्कार है ॥ ४ ॥ उत्तर मुखवाला तत्पुरुष नामक देव है, उस तत्पुरुष नाम देव को गुरु तथा शास्त्र मुख से जानते हैं और जानकर उन महादेव का ध्यान करते हैं, वह रुद्रदेव हमको ज्ञान-ध्यान के अर्थ में प्रेरणा करैं ॥५॥ ईशान नामक जो ऊर्ध्वमुख देव हैं, वे वेदशास्त्रादि चौंसठ कला और विद्याओं के नियामक हैं तथा सब प्राणियों के ईश्वर हैं। वेद के पालक हिरण्यगर्भ के अधिपति ब्रह्म परमात्मा हमारे ऊपर अनुग्रह करने के निमित्त शान्त और सदा शिवरूप हों ॥ ५ ॥

श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा है।

क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः
क्षरात्मानावीशते देव एकः।
तस्याभिध्यानाद्योजनात्तत्त्वभावाद्
भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः ॥ (अ० १)

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय
तस्थुर्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति संचुकोपान्तकाले
संसृज्य विश्वाभुवनानि गोपाः ॥ २ ॥
(अध्याय० ३)

जाबालोपनिषद् ॥ १४ ॥

अथ हैनं ब्रह्मचारिण ऊचुः किं जप्येनामृतत्वं ब्रूहीति ॥ स होवाच याज्ञवल्क्यः। शतरुद्रियेणेत्येतान्येव ह वा अमृतस्य नामानि ॥ एतैर्ह वा अमृतो भवतीति एवमेवैतद्याज्ञवल्क्यः ॥ ३ ॥

ब्रह्मबिन्दूपनिषद् ॥ १२ ॥

निर्विकल्पमनन्तं च हेतुदृष्टान्तवर्जितम्।
अप्रमेयमनाद्यं च ज्ञात्वा च परमं शिवम् ॥९॥

कैवल्योपनिषद् ॥ १३ ॥

हृत्पुण्डरीकं विरजं विशुद्धं विचिन्त्य मध्ये विशदं विशोकम्।
अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तरूपं शिवं प्रशान्तममृतं ब्रह्मयोनिम् ॥६॥
तमादिमध्यान्तविहीनमेकं विभुं चिदानन्दमरूपमद्भुतम् ।
उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् ॥
ध्यात्वामुनिर्गच्छतिभूतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात् ७

हंसोपनिषद् ॥ १५ ॥

तस्मिन्मनो विलीयते मनसि संकल्पविकल्पे दग्धे पुण्य-पापे सदाशिवः शक्त्यात्मा सर्वत्रावस्थितः स्वयं ज्योतिः शुद्धो बुद्धो नित्यो निरञ्जनः शान्तः प्रकाशत इति ॥३॥

गर्भोपनिषद् ॥ १७ ॥

अहो दुःखोदधौ मग्नो न पश्यामि प्रतिक्रियाम् ।
यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्प्रपद्ये महेश्वरम् ॥

अमृतनादोपनिषद् ॥ २२ ॥

ओंकाररथमारुह्य विष्णुं कृत्वाथ सारथिम् ।
ब्रह्मलोकपदान्वेषी रुद्राराधनतत्परः ॥ २ ॥

अथर्वशिर उपनिषद् ॥ २३ ॥

ॐ देवा ह वै स्वर्गं लोकमायँस्ते रुद्रमपृच्छन्को भवा-

न्निति । सोऽब्रवीदहमेकः प्रथममासं वर्तामि च भविष्यामि च नान्यः कश्चिन्मत्तो व्यतिरिक्त इति।

हृदि त्वमसि यो नित्यं तिस्रो मात्राः परस्तु सः । तस्योत्तरतः शिरो दक्षिणतः पादौ य उत्तरतः स ओङ्कारः य ओङ्कारः स प्रणवः यः प्रणवः स सर्वव्यापी यः सर्वव्यापी सोऽनन्तःयोऽनन्तस्तत्तारं यत्तारं तत्सूक्ष्मं यत्सूक्ष्मं तच्छुक्लं यच्छुक्लं तद्वैद्युतं यद्वैद्युतं तत्परं ब्रह्म यत्परं ब्रह्म स एकः य एकः स रुद्रः यो रुद्रः स ईशानः य ईशानः स भगवान् महेश्वरः ॥ ३ ॥

अथर्वशिखोपनिषद् ॥ २४ ॥

देवाश्चेति संधत्तां सर्वेभ्यो दुःखभयेभ्यः संतारयतीति तारणात्तारः । सर्वे देवाः संविशन्तीति विष्णुः । सर्वाणि बृंहयतीति ब्रह्मा । सर्वेभ्योऽन्तःस्थानेभ्यो ध्येयेभ्यः प्रदीपवत्प्रकाशयतीति प्रकाशः ॥ १ ॥ प्रकाशेभ्यः सदोमित्यन्तःशरीरे विद्युद्वद्द्योतयतीति मुहुर्मुहुरिति विद्युद्वत्प्रतीयादिशं दिशं भित्वा सर्वाल्लोकान्व्याप्नोतीति व्यापनाद्व्यापी महादेवः ॥ २ ॥

बृहज्जाबालोपनिषद् ॥ २७ ॥

शिवश्चोर्ध्वमयः शक्तिरूर्ध्वशक्तिमयः शिवः ।
तदित्थं शिवशक्तिभ्यां नाव्याप्तमिह किंचन ॥६॥
(अध्याय २)

मन्त्रिकोपनिषद् ॥ ३४ ॥

कालः प्राणश्च भगवान्मृत्युः शर्वो महेश्वरः ।
उग्रो भवश्च रुद्रश्च ससुरः सासुरस्तथा ॥ १२ ॥
प्रजापतिर्विराट् चैव पुरुषः सलिलमेव च ।
स्तूयते मन्त्रसंस्तुत्यैरथर्वविदितैर्विभुः ॥ १३ ॥

शुकरहस्योपनिषद् ॥ ३७ ॥

अथ महावाक्यानि चत्वारि। यथा ॐ प्रज्ञानं ब्रह्म ॥१॥ ॐ अहं ब्रह्मास्मि ॥२॥ ॐ तत्त्वमसि ॥३॥ ॐ अयमात्मा ब्रह्म ॥ ४ ॥ तत्त्वमसीत्यभेदवाचकमिदं ये जपन्ति ते शिवसायुज्यमुक्तिभाजो भवन्ति ॥

निरालम्बोपनिषद् ॥ ३६ ॥

ॐ नमः शिवाय गुरवे सच्चिदानन्दमूर्तये ।
निष्प्रपञ्चाय शान्ताय निरालम्बाय तेजसे ॥

किं ब्रह्म । स होवाच महदहंकारपृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशत्वेन बृहद्रूपेणाण्डकोशेन कर्मज्ञानार्थरूपतया भास-

मानमद्वितीयमखिलोपाधिविनिर्मुक्तं तत्सकलशक्त्युपबृं-हितमनाद्यनन्तं शुद्धं शि ं शान्तं निर्गुणमित्यादिवाच्यमनि-र्वाच्यं चैतन्यं ब्रह्म ॥

तेजोबिन्दूपनिषत् ॥ ३६ ॥

ॐ तेजोबिन्दुः परं ध्यानं विश्वात्महृदि संस्थितम् ।
आणवं शांभवं शान्तं स्थूलं सूक्ष्मं परं च यत् ॥१॥

नादबिन्दूपनिषत् ॥ ४० ॥

अतीन्द्रियं गुणातीतं मनो लीनं यदा भवेत् ।
अनूपमं शिवं शान्तं योगयुक्तं सदा विशेत् ॥ १८ ॥

ध्यानबिन्दूपनिषत् ॥ ४१ ॥

रेचकेन तु विद्यात्मा ललाटस्थं त्रिलोचनम् ।
शुद्धस्फटिकसंकाशं निष्कलं पापनाशनम् ॥ ३२ ॥
अब्जपत्रमधः पुष्पमूर्ध्वनालमधोमुखम् ।
कदलीपुष्पसंकाशं सर्ववेदमयं शिवम् ॥ ३२ ॥

योगतत्त्वोपनिषत् ॥ ४३ ॥

बिन्दुरूपं महादेवं व्योमाकारं सदाशिवम् ।
शुद्धस्फटिकसंकाशं धृतबालेन्दुमौलिनम् ॥६६॥
पञ्चवक्त्रयुतं सौम्यं दशबाहुं त्रिलोचनम् ।
सर्वायुधैर्धृताकारं सर्वाभूषणभूषितम् ॥ १०० ॥

उमार्धदेहवरदं सर्वकारणकारणम् ।
आकाशधारणात्तस्य खेचरत्वं भवेद्ध्रुवम् ॥१०१॥

जाबाल्युपनिषत् ॥ १०८ ॥

अथ हैनं भगवन्तं जाबालिं पैप्पलादिः पप्रच्छ भगवन्मे ब्रूहि परमतत्त्वरहस्यम् । किं तत्त्वं को जीवः कः पशुः क ईशः को मोक्षोपाय इति । स तमुवाच यथा तृणाशिनो विवेकहीनाः परप्रेष्याः कृष्यादिकर्मसु नियुक्ताः सकलदुःखसहाः स्वस्वामिवध्यमाना गवादयः पशवः । यथा तत्स्वामिन इव सर्वज्ञ ईशः पशुपतिः ।

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषत् ॥ ४६ ॥

ओ३म् त्रिशिखी ब्राह्मण आदित्यलोकं जगाम तं गत्वोवाच । भगवन् किं देहः किं प्राणः किं कारणं किमात्मा सहोवाच सर्वमिदं शिव एव विजानीहि । किंतु नित्यः शुद्धो निरञ्जनो विभुरद्वयः शिव एकः स्वेन भासेदं सर्वं दृष्ट्वा तप्तायःपिण्डवदेकं भिन्नवदवभासते ।

भस्मजाबालोपनिषत् ॥ ९० ॥

कैलासशिखरावासमोंकारस्वरूपिणं महादेवमुमार्धकृतशेखरं सोमसूर्याग्निनयनमनन्तेन्दुरविप्रभं व्याघ्रचर्माम्बरधरं

मृगहस्तं भस्मोद्धूलितविग्रहं तिर्यक्त्रिपुंड्रेखाविराजमान-भालप्रदेशं स्मितसंपूर्णपञ्चविधपञ्चाननं वीरासनारूढम-प्रमेयमनाद्यनन्तं निष्कलं निर्गुणं शान्तं निरञ्जनमनामयम् ।

श्रीजाबालिदर्शनोपनिषत् ॥ ६३ ॥

नष्टे पापे विशुद्धं स्याच्चित्तदर्पणमद्भुतम् ।
पुनर्ब्रह्मादिभोगेभ्यो वैराग्यं जायते हृदि ॥ ४६ ॥
विरक्तस्य तु संसाराज्ज्ञानं कैवल्यसाधनम् ।
तेन पापापहानिः स्याज्ज्ञात्वा देवं सदाशिवम् ॥४७॥

पञ्चब्रह्मोपनिषत् ॥ ६६ ॥

अथ पैप्पलादो भगवान्भो किमादौ किं जातमिति । किं भगव इति । अघोर इति । किं भगव इति ! वामदेव इति । किं वा पुनरिमे भगव इति । तत्पुरुष इति । किं वा पुनरिमे भगव इति । सर्वेषां दिव्यानां प्रेरयिता ईशान इति । ईशानो भूतभव्यस्य सर्वेषां देवयोगिनाम् । कति वर्णाः । कति भेदाः । कति शक्तयः । यत्सर्वं तद्गुह्यम् । तस्मै नमो महादेवाय महारुद्राय प्रोवाच तस्मै भगवान्महेशः ॥

पाशुपतब्रह्मोपनिषत् ॥ ८० ॥

वैश्रवणो ब्रह्मपुत्रो बालखिल्यः स्वयंभुवं परिपृच्छति

जगतां का विद्या का देवता जाग्रत्तुरीययोरस्य को देवो यानि तस्य वशानि कालाः कियत्प्रमाणाः कस्याज्ञया रविचन्द्रग्रहादयो भासन्ते कस्य महिमा गगनस्वरूप एतदहं श्रोतुमिच्छामि नान्यो जानाति त्वं ब्रूहि ब्रह्मन् ।

स्वयंभूरुवाच कृत्स्नजगतां मातृका विद्या द्वित्रिवर्णसहिता द्विवर्णमाता त्रिवर्णसहिता । चतुर्मात्रात्मकोङ्कारो मम प्राणात्मिका देवता । अहमेव जगत्त्रयस्यैकः पतिः । मम वशानि सर्वाणि युगान्यपि । अहो रात्रादयो मत्संवर्धिताः कालाः । मम रूपा रवेस्तेजश्चन्द्रनक्षत्रग्रहतेजांसि च । गगनो मम त्रिशक्तिमायास्वरूपः नान्यो मदस्ति ।

रुद्रहृदयोपनिषत् ॥ ८८ ॥

श्रीसर्वदेवात्मको रुद्रः सर्वे देवाः शिवात्मकाः ॥ १ ॥
श्रीरुद्ररुद्ररुद्रेति यस्तं ब्रूयाद्विचक्षणः ॥ १६ ॥
कीर्तनात्सर्वदेवस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
धनुस्तारं शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥ ३८ ॥
लक्ष्यं सर्वगतं चैव शरः सर्वगतो मुखः ।
वेद्धा सर्वगतश्चैव शिवलक्ष्यं न संशयः ॥ ३९ ॥

योगकुण्डल्युपनिषत् ।

तदभ्यासप्रदातारं शिवं मत्वा समाश्रयेत् ॥ १३ ॥

शरभोपनिषत् ॥ ५२ ॥

अथ हैनं पैप्पलादो ब्रह्माणमुवाच भो भगवन् ब्रह्मविष्णुरुद्राणां मध्ये को वा अधिकतरो ध्येयः स्यात्तत्त्वमेव नो ब्रूहीति । तस्मै स होवाच पितामहश्च हे पैप्पलाद शृणु वाक्यमेतत् ।

बहूनि पुण्यानि कृतानि येन तेनैव लभ्यः परमेश्वरोऽसौ ।
यस्याङ्गजोऽहं हरिरिन्द्रमुख्याः मोहान्न जानन्ति सुरेन्द्रमुख्याः १
प्रभुं वरेण्यं पितरं महेशं यो ब्रह्माणं विदधाति तस्मै ।
वेदांश्च सर्वान्प्रहिणोति चाग्र्यं तं वै प्रभुं पितरं देवतानाम् २
ममापि विष्णोर्जनकं देवमीड्यं योऽन्तकाले सर्वलोकान्संजहार ३
स एकः श्रेष्ठश्च सर्वशास्ता स एव वरिष्ठश्च ।
शिव एव सदा ध्येयः सर्वसंसारमोचकः ।
तस्मै महाग्रासाय महेश्वराय नमः ॥ ३१ ॥

शाण्डिल्योपनिषत् ॥ ६१ ॥

अथ कस्मादुच्यते महेश्वर इति । यस्मान् महत ईशः शब्दध्वन्या चात्मशक्त्या च महत ईशते तस्मादुच्यते महेश्वर इति ।

पंचाक्षर मंत्र की महिमा—

शिवोऽयं परमो देवः शक्तिरेषा तु जीवज्ञा ॐ नमः शिवायेति याजुषमन्त्रोपासको रुद्रत्वं प्राप्नोति। कल्याणं प्राप्नोति य एवं वेद।

त्रिपुरातापिन्युपनिषत् ॥ ८३ ॥

सर्वव्रतेषु संपूज्य देवदेवमुमापतिम् ॥
जपेत्पंचाक्षरीं विद्यां विधिनैव द्विजोत्तम ॥१॥

(लिङ्गाध्याय ५)

सूतजी कहते हैं कि हे मुनीश्वरों! सब व्रतों में शिव-पूजन करके विधि से पंचाक्षरी विद्या का जप करै। तभी व्रत सफल होता है। ऋषियों ने पूछा कि पंचाक्षरी विद्या कौन है? उसका क्या प्रभाव है और जपका क्या विधान है। यह हमारी श्रवण करने की इच्छा है, आप वर्णन करें।

सूतजी बोले—हेमुनीश्वरों! एक समय पार्वतीजी के प्रति शिवजी ने जैसा कथन किया था, वही हम आपको सुनाते हैं।

पंचाक्षरस्य माहात्म्यं वर्षकोटिशतैरपि।
न शक्यं कथितुं देवि तस्मात्संक्षेपतः शृणु ॥१॥

श्रीमहादेवजी कहने लगे—पंचाक्षर मंत्र के पूरें माहात्म्य

को करोड़ों वर्षों में भी कोई कहने को समर्थ नहीं है, परन्तु संक्षेप से हम सुनाते हैं। प्रलयकाल में स्थावर, जंगम, देव, असुर, नाग इत्यादि नष्ट हो जाते हैं। प्रकृति के रूप में तुम भी लीन हो जाती हो। तब हम एकाएकी रहते हैं, कोई दूसरा अवशिष्ट नहीं रहता। उस समय वेद और शास्त्र हमारी शक्ति द्वारा पालन किये हुए पंचाक्षर मंत्र में निवास करते हैं। फिर जब हम दो रूप धारण करते हैं तब हमारी प्रकृति ही मायामय शरीर धारणकर नारायणरूप से समुद्र में शयन करती है। उसके नाभिकमल से पंचमुख ब्रह्मा उत्पन्न हो सृष्टि करने की सामर्थ्य के लिए प्रार्थना करते हैं। एक बार ब्रह्माजी की प्रार्थना सुन उनके हित के लिए मैंने पाँच मुखों से पाँच अक्षरों का उच्चारण किया। उन वर्णों को ब्रह्माजी ने पाँच मुखों से ग्रहण किया और वाच्य-वाचक भाव करके परमेश्वर को जाना। पाँच अक्षरों करके त्रैलोक्य पूजित शिव वाच्य है। यह पंचाक्षर मंत्र शिवका वाचक है। उस मन्त्र को तथा उसकी विधि को जानकर बहुत काल जप कर सिद्धि पाकर के जगत् के हित के अर्थ अपने पुत्रों को भी ब्रह्माजी ने उस पंचाक्षर मन्त्र का उपदेश किया। ब्रह्माजी ने उस मन्त्र को पाकर भगवान् शिवजी को प्रसन्न करने के लिए मेरु पर्वत के मुंजवान् शिखर पर दिव्य हजार वर्ष तक तप किया। उनकी दृढ़ भक्ति देख भगवान् ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर लोकहित के लिए

पंचाक्षर मंत्र के ऋषि, छन्द, देवता, शक्ति, वीज, षडंगन्यास, दिग्वन्ध और विनियोग का उपदेश किया।

वे ऋषिगण भी इस तरह मन्त्र का माहात्म्य सुनकर अनुष्ठान करने लगे क्योंकि उसी के प्रभाव से देवता, मनुष्य, असुर, चार वर्णों के धर्मादि, वेद, ऋषि तथा शाश्वत धर्म और यह जगत् स्थित है।

पंचाक्षर मन्त्र अल्पाक्षर है। बहुत अर्थ करके युक्त है। वेद का सार, मुक्ति का देनेवाला, असंदिग्ध, अनेक सिद्धि देनेवाला, सुख से उच्चारण करने योग्य, सब कामना देनेवाला, सब विद्याओं का वीज मंत्र, सब मन्त्रों में आदि मन्त्र, वट-बीज की भाँति बहुत विस्तार युक्त और परमेश्वर का वाक्य पंचाक्षर ही है। उसके आदि में प्रणव लगा देने से वह षडक्षर हो जाता है।

पंचाक्षर मन्त्र तथा षडक्षर मन्त्र में वाच्य वाचक भाव करके शिव स्थित है। शिववाच्य है। और मन्त्र वाचक है यह वाच्य वाचक भाव अनादि सिद्ध है। जिस पुरुष के हृदय में पंचाक्षर मंत्र विद्यमान है। उसने मानो सब शास्त्र और वेद पढ़ लिया क्योंकि शिव ही ज्ञान है, इतना ही परम पद है, इतनी ही ब्रह्म विद्या है। इस लिए नित्य पंचाक्षर को जपै। पंचाक्षर भगवान् शिवजी का हृदय, गुह्य से भी गुह्य और मोक्ष ज्ञान का सब से उत्तम साधन है।

न्यास तीन प्रकार का है—उत्पत्ति, स्थिति और संहार, १ उत्पत्ति न्यास ब्रह्मचारियों को करना चाहिए। २ स्थिति न्यास गृहस्थ के करने योग्य है। ३ संहार न्यास के एकमात्र संन्यासी अधिकारी हैं।

इस प्रकार गुरु से प्राप्त पंचाक्षर मन्त्र का जप करे। क्योंकि सब यज्ञों में जपयज्ञ उत्तम है और सब यज्ञों में हिंसा होती है, किन्तु जप यज्ञ हिंसा रहित है। इसी से और सब यज्ञ, दान, तप आदि जपयज्ञ के षोडशांश की भी तुलना नहीं कर सकते। जप करने से देवता प्रसन्न होते हैं और भोग तथा मोक्ष देते हैं। यक्ष, राक्षस, पिशाच ग्रहादि भी भयभीत होकर जप करनेवाले से दूर रहते हैं। जप से पुरुष मृत्यु को भी जीत लेता है। यदि इसका निरन्तर जप करै तो अवश्य कल्याण होवै।

न्यास करते समय पहले करन्यास, बाद में देहन्यास, पीछे अंगन्यास करै।

पुरश्चरण के समय मन्त्र के वर्णों से चौगुना लक्ष जप करै। रात्रि के समय भोजन करै। सब प्रकार के नियम से रहै। आसन बाँध पूर्व मुख या उत्तर मुख बैठ कर एकाग्र चित्त हो मौन भाव से जप करै और आदि अन्त में पंचाक्षर जप पूर्वक प्राणायाम करै। अन्तमें १०८ वीज (ॐ) मन्त्र का जप करै।

वीज	शक्ति	स्वर	ऋषि	वर्ण	देवता	मुख	छन्द
प्रणव	पार्वती	उदात्त	ॐ	श्वेत	परमात्मा		गायत्र
,,	,,	,,	न	पति	इन्द्र	पूर्व	,,
,,	,,	,,	मः	कृष्ण	रुद्र	दक्षिण	अनुष्टु
,,	,,	निषाद	शि	धूम्र	विष्णु	पश्चिम	त्रिष्टु
,,	,,	उदात्त	वा	वर्ण	ब्रह्मा	उत्तर	वृहती
,,	,,	स्वरित	य	रक्त	स्कन्द	ऊर्ध्व	विरा
,,	,,						

(ॐ) हृदयाय नमः (न) शिरसे स्वाहा (मः) शिखायै वषट् (शि) कवचाय हुँ (वा) नेत्राय वौषट् (य) अस्त्राय फट् ।

जपके प्रभाव को जानकर सदाचार में तत्पर हो निरंतर ज करै तो अवश्य कल्याण हो । आचारहीन पुरुष का सब साध

निष्फल होता है। परम धर्म और परम तप आचार ही है। आचारयुक्त पुरुष को कहीं भी भय नहीं रहता। सदाचार के पालन करने से पुरुष ऋषि और देवता तक बनजाते हैं। मुख्यतः असत्य का त्याग करै क्योंकि सत्य ब्रह्म है और असत्य ब्रह्म का दूषण है।

असत्य तथा कठोर वाक्य, पैशुन्य (चुगली), परस्त्री, पराया धन तथा हिंसा इनको मन वचन कर्म से त्याग देवे।

दीर्घायु चाहनेवाला पवित्र होकर गंगादि नदियों पर लक्ष पंचाक्षर मंत्र का जप करै। दूर्वा के अंकुर, तिल और गुडूची (गिलोय) का दश हज़ार हवन करे।

अपमृत्यु निवारण के लिए शनिवार को अश्वत्थ वृक्ष का स्पर्श करै और जप करे।

व्याधि दूर करने के लिए एकाग्र चित्त हो एक लक्ष जप करै और नित्य आककी समिधा से अष्टोत्तर शत हवन करै।

उदर रोग के शान्त्यर्थ ५ लक्ष मंत्र जप करके दश हजार हवन करै। नित्य सूर्य के सम्मुख पवित्र जल को अष्टोत्तर शत बार अभिमंत्रण करके पान करै।

इति।



गोरखपुर
श्रावण
संवत् १९८९

भवदीय—
गौरीशंकर गनेड़ीवाला।

ऋषिखण्ड ।

ब्रह्मर्षि खण्ड ।

राजर्षि खण्ड ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

शिव-भक्त-माल

उत्तरार्द्ध

ऋषिखण्ड ।

लीयते शमनाद्भीतिः क्षीयते भवबन्धनम् ।
यन्नाम्ना तमहं बन्दे शिवकल्पतरुं शिवम् ॥ १ ॥

पचपनवाँ रत्न

वत्स मुनि ।

पुरातन समय में बड़े तेजस्वी वत्स नामक मुनि भ्रमण करते हुए एक वार सूतजी के आश्रम में आये। जिनकी युवावस्था और सूर्य्य के समान दीप्ति (कान्ति) थी। सूतजी ने भक्ति से उनको प्रणाम करके पाद्य, अर्घ्य आदि देकर मुनि से विनय-

पूर्वक कहा—हे विप्रेन्द्र! आपका आगमन कहाँ से हुआ है। मेरे योग्य कोई कार्य हो तो आज्ञा दीजिए।

वत्सजी बोले—हे सूतजी! यदि आप मेरी सेवा करें तो मैं इस आश्रम में चातुर्मास व्रत का अनुष्ठान करूँ।

सूतजी बोले—हे ब्रह्मर्षे! निस्सन्देह मैं आपकी आज्ञा का पालन करूंगा। इस आश्रम को आप पवित्र करेंगे तो मैं अपने को धन्य समझूंगा। सूतजी विनयपूर्वक उनकी सेवा करने लगे। महर्षि वत्स दैनिक कार्य से निवृत्त होकर रात्रि के समय अवकाश मिलने पर सूतजी से विचित्र कथायें कहा करते थे।

एक समय कथा के अन्त में सूतजी ने विस्मित होकर महर्षि वत्सजी से पूछा कि हे भगवन्! आपका यह शरीर इतना सुकुमार है और आप अनेक विचित्र कथाओं को कहते हैं। हे तात! मुझे यह वतलाइये कि इतनी थोड़ी अवस्था में आप ने यह घटनायें कैसे देखीं। हे मुनीश्वर! क्या यह आपकी तपस्या का प्रभाव है अथवा मन्त्र का पराक्रम है?

वत्स मुनि हँसकर बोले—हे सूतजी! तुमने बहुत ठीक पूछा। यह मेरे मन्त्र का ही पराक्रम है। * मैं प्रतिदिन शिवजी के समीप आठ हजार शिवजी के षडक्षर मन्त्र का जप किया करता हूँ। इसी के प्रभाव से मेरी युवावस्था तीनों काल

* सदाहमष्टसंयुक्तं सहस्रं शिवसन्निधौ।
जपामि शिवमन्त्रस्य षडक्षरमिनस्य च॥ ३१॥

में एक सी रहती है और मुझे सदैव भूत-भविष्य का ज्ञान बना रहता है। मेरा जन्म हुए आज एक हजार वर्ष होगया हे महामते! सदाशिवजी की प्रसन्नता से मैंने जिस प्रका सिद्धि प्राप्त की है, इसका वृत्तान्त मैं विस्तार से तुम्हारे प्रति कहता हूँ।

एक बार वनों में भ्रमण करते-करते हम महर्षि देवरात ऋषि के आश्रम पर पहुँचे। वहाँ सब लक्षणों से युक्त, रूप और यौवन से सम्पन्न, अपूर्व सौन्दर्यसमन्वित, मृगलोचनी, देवरात की पुत्री मृगावती को देख कर मेरा चित्त चञ्चल हो उठा। मैं देवरात के समीप गया और मृगावती के साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट की। देवरात ने भी शुभ मुहूर्त में बड़ी प्रसन्नता से मेरे साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया।

तबसे उस परम सुन्दरी के साथ विहार करता हुआ मैं जीवन का आनन्द लेने लगा। परन्तु मेरे भाग्य में यह आनन्द अधिक काल के लिये नहीं लिखा था।

एक दिन मृगावती अपनी सहेलियों के साथ वन में विचरण करने गयी। घूमते-घूमते उसका पैर घास-फूस से ढके हुए एक भयंकर नाग के सिर पर पड़ गया। उस सर्प ने क्रोध में आकर मृगावती को काट लिया और वह मर गयी।

उसकी सखियों ने यह दारुण वृत्तान्त मुझे सुनाया। मैं यह दुःखद वृत्तान्त सुनते ही हाहाकार मचाता हुआ घटनास्थल पर जो पहुँचा और अपनी प्राणप्रिया को निर्जीव देख छाती पीट पीट

कर विलाप करने और करुण स्वर में कहने लगा कि हाय ! मेरे प्राणों से भी अधिक प्यारी मृगलोचनी मृगावती परलोक को चल बसी। अब मैं अकेला नहीं जी सकता। प्रियारहित घर में निवास करने से दुःख के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। मुझ में इतना साहस और धैर्य्य नहीं है कि मैं अकेला इस लोक में रह सकूँ। अतएव मैं भी अब अपने प्राणों का परित्याग कर उसी लोक में जाऊँगा, जहाँ मेरी प्राण-वल्लभा चली गयी है।

इस प्रकार हृदयविदारक विलाप करते-करते मैंने चिता बनायी। मृगावती के शरीर को उसपर रख कर आग लगा दी और स्वयं भी उस चिता पर चढ़ने लगा कि इतने में मेरे कुछ मित्र इस दारुण वृत्तान्त को सुन कर उस जगह पहुँच गये और मुझको समझा-बुझा कर आत्महननरूपी दुष्कर्म करने से रोक लिया और आश्रम में ले गये।

आधीरात तक तो मैं किसी प्रकार विलाप करता हुआ आश्रम में पड़ा रहा; पर ज्यों ही मेरे समीपवर्ती लोग सो गये त्यों ही मैं कान्ता के वियोग में विलाप करता हुआ आश्रम को त्याग कर निर्जन वन की ओर निकल पड़ा।

लेकिन वे मुझे फिर पकड़ लाये और आश्रम में लाकर फटकारते हुए उन्होंने कहा—हे कामिन् ! तुम को धिक्कार है, एक ब्रह्मर्षि होकर तुम स्त्री के लिए इस तरह रोते हो ?

मनुष्यों का जीवन सोचने योग्य नहीं है। * हम, तुम और संसार के सब प्राणी जो भूमि में उत्पन्न हुए हैं, वे सब मरेंगे। इस विषय में विलाप करने से क्या लाभ?

† किसी के साथ बहुत दिन तक एकत्र वास नहीं होता। दूसरों की कौन कहे, अपने शरीर का भी अधिक दिन तक साथ नहीं रहता।

‡ खोई हुई वस्तु को या व्यतीत वार्त्ता को अथवा मरे हुये प्राणी के लिए जो पुरुष सोच करता है। वह दुःख से दुःखी होता यानी दोनों अनर्थों को पाता है ॥ ९६ ॥

आश्रम में आने पर मेरा दुःख कोपरूप में परिणत हो गया और मैंने आँखों के सामने आये हुए सभी सर्पों को मारने की प्रतिज्ञा की।

एक रात को रोता-पीटता मैं फिर निकल कर बहुत दूर तक भाग गया। इधर जब मेरे मित्रों की नींद खुली तो वे मुझे न पाकर बड़े दुःखित हुए और मुझे खोजने निकले। खोजते-

---

* यूयं वयं तथा चान्ये सञ्जाताः प्राणिनो भुवि।
सर्वं एव मरिष्यामस्तत्र का परिदेवना ॥ ९३ ॥

† नायमत्यन्तसंवासः कस्यचित्केनचित्सह।
अपि स्वेन शरीरेण किमुतान्यैः पृथग्जनैः ॥

‡ मृतं वा यदि वा नष्टं यो नित्यमनुशोचति।
स दुःखेन लभेद्दुखं द्वावनर्थौ प्रपद्यते ॥ ९६ ॥

खोजते किसी प्रकार मेरे समीप पहुँचे और मुझे आश्रम में पकड़ लाये। इसके अनन्तर आश्रम में रहकर सर्पजाति का विनाश करना ही मैंने अपने जीवन का एकमात्र कर्तव्य बना लिया।

उसी दिन से मैंने ब्राह्मणवृत्ति का परित्याग कर दिया और एक मोटा सा डंडा लेकर साँपों की खोज में निकला। मेरे सामने छोटे, बड़े, विषैले, काले, पीले, जैसे भी साँप पड़े वे सब मेरे दण्डप्रहार से काल के गाल में पहुँच गये। इस प्रकार असंख्य सर्पों को मारते हुए हम एक दिन एक सरोवर के समीप पहुँचे। वहाँ मुझे एक बूढ़ा, बनैला साँप दिखाई दिया। उसको देखते ही मैंने मारने के लिये अपना दण्ड सम्हाला।

अपने सिर पर काल को सवार देखकर उस वृद्ध सर्प ने नम्रतापूर्वक कहा कि हे ब्राह्मणसत्तम ! मैं यहाँ एकान्त में पड़ा हुआ अपना जीवन व्यतीत करता हूं। न किसी से बोलता हूँ और न किसी को कोई कष्ट ही पहुँचाता हूँ। फिर मुझ निरपराधी बूढ़े को आप क्यों मारते हैं ?

उसने मुझसे बहुत प्रार्थना की; पर मैंने अपना डण्डा चला ही दिया। डण्डे के लगते ही सर्प का शरीर तो न जाने कहाँ चला गया और सामने सूर्य के समान तेजस्वी एक महापुरुष दिखाई पड़ा। यह घटना देखकर मुझको बड़ा आश्चर्य हुआ और मैं उस पुरुष को प्रणाम कर कहने लगा कि हे महापुरुष ! मैंने कोपवश बड़ा अनुचित कार्य किया है। कृपया मेरा

अपराध क्षमा कीजिये । अब दया करके मुझे यह बताइए कि आप कौन हैं और आपने सर्प का शरीर क्यों धारण किया था ? किसी के शाप से ऐसा हुआ या यह आपकी एक लीला-मात्र थी ?

उस महापुरुष ने प्रसन्न मन से गम्भीर वाणी में उत्तर दिया कि हे मुने ! मैं आपको अपना पूरा वृत्तान्त सुनाता हूँ। आप ध्यानपूर्वक सुनने की कृपा करें।

इससे पूर्वजन्म में मैं चमत्कारपुर * में निवास करता था । ईश्वर की दया से मैं परम तेजस्वी एवं धन-धान्य से समृद्ध था। उसी नगर में सिद्धेश्वर महादेव का विशाल मन्दिर था। एक दिन बड़े उत्साह के साथ उस शिवालय में उत्सव मनाया गया । वहाँ पर नाना प्रकार के बाजे बजे, जिनकी गम्भीरता से तीनों लोक व्याप्त हो गये। उस निनाद को सुनकर हजारों शैव तथा अन्य शिव-भक्त दूर दूर से वहाँ आ पहुँचे। उनमें से कुछ केवल एक बार भोजन करते, कुछ सूखे पत्ते चबाकर निर्वाह करते, कुछ केवल जल पीकर रहते, कुछ वायु पीकर ही सन्तुष्ट रहते और कुछ एक दम निराहार रहकर भगवान् शङ्कर का ध्यान किया करते थे।

वे सब भक्त भगवान् सिद्धेश्वर की वन्दना कर उनके

---

* वड़ौदा राज्य के काड़ी विभाग में वाडवनगर ग्राम है। उसी को चमत्कारपुर कहते हैं।

सामने बैठ जाते और अनेक देवर्षियों, ब्रह्मर्षियों तथा राजर्षियों की दया, धर्म, सत्य आदि के उपदेश देनेवाली विविध प्रकार की कथायें कहते-सुनते थे। भक्तिपूर्ण हृदयवाले कितने ही साधुजन नृत्य, गान, वादन आदि में मग्न हो जाते। कुछ धनिक लोग दीन, अन्ध और दरिद्रों को धन देकर सन्तुष्ट करने लग जाते थे।

उस समय जवानी के मद में चूर मैं भी अपने मित्रों के साथ तमाशा देखने की गरज से वहीं जा डटा। मैं अज्ञान से अन्धा हो रहा था। मेरे हृदय में शिव की भक्ति तो थी नहीं; मैं केवल उस उत्सव में विघ्न डालकर आनन्द लेना चाहता था। अन्त में मैंने जीभ लपलपाता हुआ एक दीर्घकाय भयङ्कर जलसर्प पकड़ कर उन लोगों के बीच में फेंक दिया। उसे देखते ही समूची मण्डली तितर बितर हो गयी और सब आनन्द-रसमग्न भक्त डर के मारे इधर उधर भाग गये। केवल एक सुप्रिय नामक तपस्वी समाधि लगाये बैठे रहे। वे उस समय भी भयरहित, सीधे और दृढ़ आसन से बैठे थे। उनकी ग्रीवा तथा देह बिलकुल स्थिर और सीधी थी। उनकी दृष्टि किसी की ओर न जाकर केवल नासिका पर स्थिर थी। उनकी जीभ निश्चलरूप से तालु के मध्य भाग में जमी हुई वायु के आवागमन को रोके हुई थी। वे अपने हृदय के अष्टदल कमल की कर्णिका में संस्थित सूर्यमण्डल के मध्य में द्वादश आदित्य के समान प्रभाशाली और अवर्णनीय आकारवाले अंगुष्ठमात्र

पुरुष का निश्चल मन से ध्यान कर रहे थे। वहाँ वे कमलासन पर विराजमान, अनिंद्य, अभेद्य, जरा-मरण से रहित, वेदनाथ महेश्वर के ध्यान में लीन थे। उस परमानन्द में उनकी आँखों से आँसू वह रहे थे। इन्द्रियों के सभी व्यापार बन्द हो गये थे, सारा शरीर रोमाञ्चित हो गया था। इस तरह वे महामुनि योगनिद्रा के वशीभूत हो गये थे कि कहाँ क्या हो रहा है, इसका उन्हें लेशमात्र भी ज्ञान नहीं रह गया था। और कहाँ तक कहा जाय, उन्हें अपने शरीर का भी ज्ञान नहीं रहा। ऐसी अवस्था में सर्प के फेंके जाने के विषय में भी कुछ प्रतीत होना उनके लिये असम्भव ही था।

सर्प को और कोई तो मिला नहीं, यही मुनि मिले। उसने इनके शरीर को अच्छी तरह जकड़ लिया। इसी बीच में सर्वशास्त्रपारङ्गत परम तपस्वी श्रीवर्धन नामक उनके शिष्य आ गये। अपने पूज्य गुरु के शरीर को सर्प से जकड़ा हुआ और मुझे उनके समीप ही खड़ा देख कर उन्हें बड़ा क्रोध आया। उनकी आँख लाल हो गयी। उनके ओंठ फड़कने लगे और रोष के मारे आँखों में आँसू भर आये। बस, वे बड़े परुष स्वर में कहने लगे कि यदि मैंने तीव्र तप किया हो, सच्चे हृदय से गुरु की शुश्रूषा की हो और निर्विकल्प चित्त से भगवान् महेश्वर का ध्यान किया हो तो यह ब्राह्मणाधम इसी समय सर्पयोनि को प्राप्त हो जाय। उन महातपस्वी का वचन भला अन्यथा कैसे हो सकता था। शाप देते ही मैं मनुष्य से सर्प हो गया।

कुछ देर बाद सुप्रभ मुनि का ध्यान टूटा। उन्होंने अपने शरीर में लपटे हुये एक भयंकर सर्प को और पास ही सर्प के आकार में मुझे तथा अपने आस-पास भयभीत जनसमुदाय को देखा। ऐसी गम्भीर स्थिति को देखकर तुरन्त सब बातें उनको समझ में आगयीं। वे मेरी ओर कृपापूर्ण दृष्टि से देखते हुए श्रीवर्धन से कहने लगे कि हे शिष्य! तुमने इस दीन ब्राह्मण को शाप देकर तपस्विजन के योग्य कार्य नहीं किया है। मान और अपमान को जो * समान समझता, जो पत्थर और सोने में भेद नहीं रखता, शत्रु और मित्र को जो एक सा मानता है, वही तपस्वी सिद्धिपद पा सकता है। हे वत्स! तुमने बिना समझे-बूझे इसको शाप दे दिया है। इस लिये इसका अपराध क्षमा करके इसे शाप से मुक्त कर दो।

श्रीवर्धन ने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक कहा कि हे पूज्य गुरो! अज्ञान से अथवा ज्ञान से मेरे मुख से जो कुछ निकल गया वह अन्यथा नहीं हो सकता। इसके लिये आप मुझे क्षमा करें। हे देव! हँसी में भी मेरे मुख से निकले हुए वचन झूठे नहीं हुए हैं तो शापके निमित्त कहे गये वाक्य कैसे झूठे हो सकते हैं। सूर्यदेव पूर्व दिशा को त्याग कर पश्चिम दिशा में कदाचित् उदित हो जायँ तो आश्चर्य नहीं, अगाध और अनन्त

---

* समो मानेऽपमाने च समलोष्ठाश्मकाञ्चनः।
तपस्वी सिद्धिमाप्नोति सुहृच्छत्रुसमाकृतिः॥

महासागर सूखकर मरुस्थल बन जाय, सुमेरु पर्वत नष्ट हो तो भलेही हो जाय; पर मेरा बचन झूठ नहीं हो सकता। इस लिये हे गुरो! आप मेरी इस धृष्टता को क्षमा करके मुझे अनुगृहीत करें।

महर्षि सुप्रभ ने कहा कि मैं अच्छी प्रकार जानता हूँ कि तुम्हारे वचन मिथ्या नहीं हो सकते। तुम्हें इस प्रकार उपदेश देना इस समय के लिए नहीं, बल्कि इस लिए है कि भविष्य में कभी तुम्हें ऐसा करने का साहस न हो। गुरु का यह कर्त्तव्य है कि वह वयस्थ शिष्य पर भी सदा शासन करता रहे। तुम तो अभी बालक हो, तुम्हें उपदेश देना तो मेरा परम कर्तव्य है। इस लिये मैं तुमको उपदेश दे रहा हूँ। * क्षमा से सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। तपस्वियों के लिए तो क्षमा से बढ़कर कोई शस्त्र है ही नहीं। पापी के प्रति अपने मन में पापबुद्धि न लानी चाहिये। उसका पाप उसी को खा जायगा। उपकार करनेवाले के प्रति जो सज्जनता प्रकट करता है, उसमें कोई विशेषता नहीं, जो मनुष्य अपकार करनेवाले के साथ भी उपकार करे वही साधु कहा जाता है।

---

* क्षमैका सिद्धिदा प्रोक्ता यतीनां च विशेषतः।
तस्मात् क्षमां पुरस्कृत्य वर्तितव्यं तपस्विभिः ॥ १७८ ॥
न पापं प्रति पापः स्याद् बुद्धिरेषा सनातनी।
आत्मनैव हतः पापो यः पापं तु समाचरेत् ॥ १७९ ॥

इस प्रकार अपने शिष्य को अनेक प्रकार के उपदेश देकर वे ऋषि मुझसे कहने लगे—हे भाई ! तुम्हारी यह दशा देखकर मुझे दारुण दुःख है। परन्तु अब कोई उपाय नहीं है। मेरे शिष्य का कथन त्रिकाल में भी अन्यथा नहीं हो सकता। अतः तुमको सर्पयोनि से मुक्त होने के लिए कुछ समय की प्रतीक्षा करनी ही पड़ेगी।

तब मैंने बड़ी नम्रता के साथ पूछा कि हे महाराज ! मैं बड़ा अज्ञानी और दीन हूँ। मेरे ऊपर कृपा कर बताइए कि मेरे शाप का अन्त कब होगा।

महर्षि सुव्रतने कहा कि जो व्यक्ति † शिवालय में एक क्षण नृत्य, गीत आदि करता उसके पुण्य का पारावार नहीं और जो इस उत्सव में एक क्षण भी विघ्न करता उसके पाप का ठिकाना नहीं रहता। इस लिये हे दुर्बुद्धे ! तुमने इस महोत्सव में विघ्न डालकर घोर पाप किया है, अब केवल बातों से काम नहीं

दग्धः सः दहते भूयो हतमेव निहन्ति च।
सम्यग्ज्ञानपरित्यक्तो यः पापे पापमाचरेत् ॥ १८० ॥
उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः।
अपकारिषु यः साधुः सः कीर्त्यते जनैः ॥ १८१ ॥
(स्कन्दपु० नागरखण्ड २९ अ०)

† मुहूर्तमपि गीतादि यः करोति शिवालये।
न तस्य शक्यते कर्तुं संख्या धर्मस्य भद्रक ॥ ८७ ॥

चलेगा । मैं जो उपाय बताता हूँ, उसके करने से ही इस घोर पातक से छुटकारा मिल सकता है, वह उपाय है, *शिव षडक्षर मंत्र। शिवजी के 'ॐ नमः शिवाय' इस षडक्षर मन्त्र के जप करने से ब्रह्महत्या-जनित पापसे भी मुक्ति मिल जाती है। षडक्षर मन्त्र का यदि दस बार जप किया जाय, तो एक दिन में सब पाप दूर हो जाते हैं। बीस बार के जप करने से साल भर के पाप नष्ट हो जाते हैं। इसलिये यदि तुम जल में बैठकर इसी मन्त्र का जप करो तो धीरे धीरे तुम्हारे सब पाप नष्ट हो जायँगे । कुछ दिनों के अनन्तर एक वत्सनामक ब्राह्मण आयेंगे । उनके डण्डे की चोट खाते ही तुम्हें इस योनि से मुक्ति मिल जायगी।

महर्षि के उपदेश से मैं तभी से इसी जलाशय में बैठा भक्ति-युक्त चित्त से षडक्षर मन्त्र का जप किया करता था। आज आपके प्रसाद से मुझे सर्पयोनि से छुटकारा मिला है। देखिये, मेरे ले जाने को यह देवप्रेषित विमान आ रहा है। अब मैं इसी पर बैठ कर परम धाम को चला जाऊँगा। आपने मेरा बड़ा उपकार किया है। मुझे बताइये कि इस ऋण से मुक्त होने के लिए मैं आपकी क्या सेवा करूँ?

---

* शैवं षडक्षरं मन्त्रं यो जपेच्छ्रद्धयान्वितः ।
अपि ब्रह्मवधात्पापं जातं तस्य प्रणश्यति ॥ ९० ॥
दशभिर्दिनजं पापं विनश्येत् वत्सरोद्भवम् ।
षडक्षरस्य जाप्येन पापं क्षालयते नरः ॥ ९१ ॥

वत्स ने कहा कि यदि आप मेरा कुछ उपकार करना चाहते हैं तो मुझे ऐसा कोई उपाय बताइये। जिससे मेरा प्रियाविरह-जन्य दुःख दूर हो जाय और शत्रु, व्याधि, दरिद्रता आदि से भी कभी दुःख न उठाना पड़े।

उस दिव्य पुरुष ने कहा कि हे मुने! आपने बड़ा भारी प्रश्न कर दिया। इतनी शीघ्रता में इसका पूरा उत्तर देना तो असम्भव है, तथापि संक्षेप में मैं कुछ उपाय बताये देता हूँ। शिवजी का षडक्षर मन्त्र प्राणियों के सब अशुभों का हरण करता है। आप उस मन्त्र का यथाशक्ति दिन रात जप कीजिएगा। उसके पुण्य से आपकी सभी कामनाएँ पूरी होंगी और आप सब पातकों से मुक्त होकर स्वर्ग, मोक्ष आदि जो कुछ चाहियेगा वह सब अनायास ही मिल जायगा। शास्त्रों में जितने प्रकार के दान कहे गये हैं, उनके करने से जितना पुण्य प्राप्त होता है, उतना ही पुण्य इस मन्त्र के जप करनेवालों को भी मिलता है। अखिल भूमण्डल के तीर्थों में भक्तिपूर्वक स्नान करने का जो फल होता है, वही फल इस षडक्षर मन्त्र के जप करने का भी होता है। एक सहस्र चान्द्रायण व्रत का और इस मन्त्र के जप करने का फल एक ही तरह का होता है। सौ वर्ष तक वर्षा ऋतु में खुले मैदान में समय बिताने का, जाड़े में जल में निवास करने का तथा गर्मी में पञ्चाग्नि तापने का जो पुण्य होता है, वही पुण्य पवित्रतापूर्वक श्रद्धा-समेत रात दिन षडक्षर मन्त्रके जप करने से भी होता है। प्रतिवर्ष पितृपक्ष में गयाश्राद्ध करने का जो फल होता है, वही फल षड-

क्षर मन्त्र के जप से भी प्राप्त होता है। कार्तिकी पूर्णिमा को एक सहस्र गोदान करने का जितना पुण्य होता है, उतना ही पुण्य इस मन्त्र के जप करने से भी होता है। सर्वसङ्ग का परित्याग कर ब्रह्मज्ञान प्राप्त करनेवाले योगी को जो पद मिलता है, वही पद षडक्षर मंत्र का जप करनेवाले को भी मिलता है। इस लिये हे मुने! आप षडक्षर मंत्र का जप कीजिए। इससे आपकी सब कामनाएँ पूर्ण हो जायँगी और प्रियाविरहसमुत्पन्न दुःख भी दूर हो जायगा। मैंने आपको यह परम गोप्य मन्त्र बता दिया है।

परन्तु हे द्विजवर! यह मन्त्र तभी सिद्ध और फलदायक होगा, जब आप पूर्णरूप से हिंसा का परित्याग कर देंगे। सब वेदों में अहिंसा ही परम धर्म बताया गया है। ब्राह्मण के लिए अहिंसाव्रत का पालन करना परमावश्यक है। अहिंसा को न मान कर जो मनुष्य जीवों का वध करता है, उसे महाप्रलय पर्यन्त घोर नरक में निवास करना पड़ता है। चर और अचर प्राणियों को जो अभय देता है, वह इस लोक में अनेक तरह के सुख भोग कर स्वर्ग को जाता है।

उस दिव्य पुरुष का वचन सुनकर वत्स ने कहा कि मैंने वृद्धों के मुख से सुना है कि हिंसाजन्य पाप सबको नहीं लगता। राजा लोग वन में असंख्य जीवों को मारते हैं; किन्तु उनको इसका पाप नहीं लगता। वैद्यों ने मांस का भक्षण परम हितकर बताया है, उसके सेवन से शरीर पुष्ट होता और आयुष्य की वृद्धि होता है। हे महामते! मुझे इस विषय में बड़ा संदेह है।

आप इसको दूर कर दीजिए। आप जो कहेंगे, उसे मैं अवश्य मान लूँगा।

उस दिव्य पुरुष ने उत्तर दिया कि यह मांसलोलुप महापापियों और दुर्जनों की कपोलकल्पना है। ऐसे निर्दयी पापी लोग शोचनीय हैं। मांस का भक्षण करना तो परम दोषावह है। मांस से न तो आयु की वृद्धि होती और न बल ही बढ़ता है। इसके भक्षण से आरोग्यलाभ भी असम्भव है। मांस के खानेवाले भी अनेक रोगों से पीड़ित दुर्बल तथा अल्पायु दिखायी देते हैं। इसी प्रकार मांस का परित्याग करनेवाले भी मनुष्य नीरोग और मोटे-ताजे रहकर पृथ्वी में आनन्द लेते हुए दीखते हैं, उनकी आयु भी बड़ी होती है। अत: मांस के भक्षण से कुछ लाभ नहीं। हाँ, हानि अवश्य होती है।

मांस का भक्षण करनेवाला मनुष्य घोर नरक में जाता है। घास, लकड़ी आदि स्थावर पदार्थ से तो मांस मिलता नहीं, प्राणी के शरीर काटने से ही मिलता है। जो कष्ट अपने अङ्ग काटने से अपनी आत्मा को होता है, वही कष्ट दूसरे की आत्मा को उसके अंगों के काटने से भी होता है। ऐसा समझ कर जीवों की हत्या नहीं ही करनी चाहिये। केवल उनके सौंदर्य और उनमें दीखती हुई जगदीश्वर की कारीगरी को देखना और सराहना उचित है। हिंसा करने का पाप केवल एक व्यक्ति को नहीं होता; किन्तु आठ व्यक्तियों को होता है। जैसे—जीव को मारनेवाला, अनु-

मोदन करनेवाला, उसका मांस काटनेवाला, खरीदनेवाला, पकाकर तैयार करनेवाला, समीप लानेवाला और भक्षण करनेवाला, ये आठ प्रकार के घातकी होते हैं। ये आठों उस हिंसाजनित पाप के भागी होते हैं। (१) और योगदर्शन में भी इसी तरह कहा है कि हिंसा करनेवाला और अनुमोदन (समर्थन) करनेवाला आदि सभी पाप के भागी होते हैं। इस लिये किसी से द्रोह नहीं करना चाहिए। जो व्यक्ति मनसा, वाचा और कर्मणा हिंसा नहीं करता, वह जरा और मरण से रहित परम पद को प्राप्त होता है। जो केवल शाक, मूल और फलों का खानेवाला हो और ब्रह्मचर्य का पूर्णरूप से पालन करता हो, किन्तु हिंसा से पृथक् न हो तो उसे किसी प्रकार का फल नहीं मिलता। सैकड़ों वर्ष घोर तप करनेवाले हिंसक मनुष्य से अहिंसाधर्म का पालन करनेवाला दयालु पुरुष कहीं अधिक अच्छा है। दयावान् पुरुष जिस किसी वस्तु की इच्छा करता, वह उसे अवश्य मिल जाती है। सब प्राणियों को अभय देनेवाला मनुष्य स्वर्गलोक में सैकड़ों दिव्याङ्गनाओं के साथ विमानों पर भ्रमण करता हुआ देवों के समान सुख भोगता है।

---

(१) वितर्कहिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभ–क्रोध–मोह–मोह-पूर्वकमृदुमध्याधिमात्रा दुःखज्ञानानन्य फला इति प्रतिपक्ष भवनम् ॥३४॥
योगदर्शन।

इस तरह अहिंसामय उपदेश देकर वह दिव्य पुरुष उत्तम विमान पर आरूढ़ हो स्वर्गलोक को चला गया। उसके चले जाने पर मेरे मन में निष्कारण इतने सर्पों को मारने का बड़ा पश्चात्ताप हुआ और मैं अनेक प्रकार से विलाप करने लगा। अन्त में मैंने निश्चय किया कि अब मैं हिंसा का परित्याग कर शिवदीक्षा लेकर महेश्वर की पूजा करूँगा। संसार के जितने भी सुख हैं, वे तप से बहुत शीघ्र मिल जाते हैं।

उसी समय मैंने भक्तियुक्त चित्त से शिवजी की दीक्षा ले ली और मौन धारण कर दिन रात का समय एक वृक्ष के नीचे बिताता हुआ सब शरीर में भस्म रमाए षडक्षर मन्त्र का जप करता हुआ विचरने लगा। अन्त में सिद्धेश्वर महादेव की शरण में पहुँच अहर्निशि उनकी आराधना और षडक्षर मन्त्र का जप करने लगा।

इस तप के ही प्रभाव से मेरा यौवन चिरकाल के लिए स्थायी हो गया है। मुझे ऐसी सिद्धि प्राप्त हो गई है कि जिससे मैं एक स्थान पर बैठे हुए ही दूसरे लोकों का वृत्तान्त जान सकता हूँ। उसी तप के प्रभाव से मेरे में आकाशमार्ग से आने-जाने की शक्ति भी आ गई है।

इस प्रकार सूतजी के प्रश्नों का उत्तर देकर वत्सजी लोक लोकान्तर में भ्रमण करते हुए तथा जीवन का अनुत्तम आनन्द लेते हुए अन्त में शिवलोक को चले गए।

षडक्षर मन्त्र का माहात्म्य साधारण नहीं है। इस मन्त्र के

जप करनेवाले को तो सब सिद्धियाँ प्राप्त हो ही जाती हैं, इसके माहात्म्य के श्रवण करनेवाले को भी एक जन्म में किए गए सब पापों से मुक्ति मिल जाती है । स्कन्दपुराण में लिखा है—

भुक्तिदं मुक्तिदं पुंसां सर्वापत्तिनिवारणम् ।
षडक्षरस्य माहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २२५ ॥
यश्चैतत् शृणुयान्नित्यं सम्यक् श्रद्धासमन्वितः ।
आजन्ममरणात्पापात् सोऽपि मुच्येत मानवः ॥२५६॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं शत्रुपक्षक्षयावहम् ।
पठतां शृण्वतां नित्यं सर्वकामाभयप्रदम् ॥ २५७ ॥

(नागरखण्ड २१ अ०

छप्पनवाँ रत्न ।

महामुनि व्यासजी ।

पुराण और इतिहास के पढ़नेवाले सभी मनुष्य कविवर व्यासजी से अच्छी तरह परिचित हैं । इनको महाभारत-रचना अनुपम है । ये साक्षात् विष्णु भगवान् के अवतार कहे जाते हैं, इनके अनेक नाम हैं । ये द्वीप में उत्पन्न होने के कारण "द्वैपायन"

तथा वेद की शाखाओं के विभाग करने एवं पुराण रचने के कारण "व्यास" (१) भी कहलाते हैं।

एक बार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष देनेवाले तीर्थराज प्रयाग, नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, हरद्वार, अवन्तिका, अयोध्या, मथुरा, अमरावती, सरस्वती, सिन्धु, गंगासागर आदि तीर्थों में भ्रमण करते हुए श्रीव्यासजी उस अविमुक्त क्षेत्र * में पहुँचे, जहाँ जगत्पिता भगवान् विश्वेश्वर तथा जगन्माता भगवती श्रीअन्नपूर्णा देवी विराजमान हैं। यहाँ आकर उन्होंने समस्त देवी-देवताओं के दर्शन किये और शास्त्रविधि से समस्त वापी-कूप-सरोवर तथा कुण्डों में यथाविधि स्नान-दान करते हुए, मणिकर्णिका-घाट पर विश्राम किया। तदनन्तर विनायक आदि देवगणों को सन्तुष्ट करके, आलस्यरहित हो पितृ-तीर्थों में श्राद्ध-तर्पण किया। इस प्रकार काशी की पंचक्रोशयात्रा करके पुण्यात्मा व्यास जी ने "व्यासेश्वर" नामक ज्योतिर्लिङ्ग की स्थापना की। जिनके दर्शन-पूजन से मनुष्य सब विद्याओं में बृहस्पति (२) के समान विद्वान् हो जाते हैं।

---

(१) द्वीपे जातो यतो बालस्तेन द्वैपायनोऽभवत्।
वेदशाखाविभजनाद्वेदव्यासः प्रकीर्त्तितः॥ (शि०पु० ४४ अ०४४ श्लो०)

* क्षीयते पातकं यस्मात् तेनेदं क्षेत्रमुच्यते।

(२) स्थापयामास पुण्यात्मा लिंगं व्यासेश्वराभिधम्।
यद्दर्शनाद्भवेद्विप्रा नरो विद्यासु वाक्पतिः॥ (शि० पु० ४४ अ० ५७)

एक वार व्यासमुनि अपने शिष्यों को पढ़ाकर विश्राम कर रहे थे। इसी समय एका-एक उनके मन में ग्रन्थ रचने की इच्छा उत्पन्न हो गयी। वे सोचने लगे कि किस देवी या देवता के आराधन से मुझमें ग्रन्थ रचने की शक्ति होगी। सोचते-सोचते सायं-सन्ध्या का समय आ पहुँचा। सायंकालीन सन्ध्योपासन के पश्चात् मुनिवर व्यासजी समाधिस्थ होकर अपने इष्ट-देव शंकरजी के ध्यान में लग गये। इस तरह ध्यान करते २ कुछ समय बीता। थोड़े दिनों बाद एक जर्जरकाय जटाधारी तपस्वी उनके सामने आये। व्यासजी ने नेत्र खोल कर देखा और सामने आये हुए वृद्ध एवं ज्ञानतरुण महात्मा से पूछा:—

"हे महात्मन्! किस शिवलिंग के आराधन से हमारी मनोकामना सिद्ध होगी और संसार में ग्रन्थरचना की शक्ति का प्रादुर्भाव कैसे होगा? क्योंकि ऋषियों द्वारा मैंने शिवजी के अनेक नाम सुने हैं। जिनमें (१) ओंकारनाथ, (२) कृत्तिवासेश्वर, (३) केदारेश्वर (४) कामेश (५) चन्द्रेश (६) कलशेश्वर (७) जाम्बुकेश (८) जैगीषेश्वर (९) दशाश्वमेधेश्वर (१०) द्रुमचण्डकेश (११) गारुडेश (१२) गोकर्णेश (१३) गणेश्वर (१४) धर्मेश (१५) प्रसन्नवदनेश (१६) तारकेश्वर (१७) मरुतेश (१८) नन्दिकेश (१९) निवासेश (२०) पत्रीश (२१) पशुपति (२२) हाटकेश्वर, (२३) तिलभाण्डेश (२४) भारभूतेश्वर (२५) महालक्ष्मीश्वर (२६) मुक्तिनाथ (२७) अमृ-

तेश (२८) भुवनेश्वर (२६) विश्वेश्वर (३०) सिद्धेश्वर (३१) अजेश्वर (३२) पार्वतीश्वर (३३) हिरण्यगर्भेश (३४) रामेश्वर (३५) स्थानेश्वर (२६) रत्नेश (३७) कोटि-रुद्रेश्वर (३८) कमलेश्वर (३६) वीरेश्वर (४०) मध्यमेश्वर इत्यादि (१) अनेक शिवलिङ्ग विख्यात हैं।

उस महात्मा ने कहा कि यों तो सभी शिवलिंग समान हैं और सब की आराधना से आशुतोष भगवान् शीघ्र प्रसन्न होते हैं; परन्तु आप * "मध्यमेश्वर" (२) महादेव का ध्यान-पूजन करें तो सर्वोत्तम होगा। काशीखण्ड में मध्यमेश्वर नामक शिवलिंग का माहात्म्य अवर्णनीय कहा गया है, जिनका दर्शन करने के लिये समस्त देवता प्रतिपर्व में वहाँ आते हैं, जिनकी सेवा से कितने ही देवी-देवता और यक्ष-गन्धर्व सिद्ध हो गये हैं। गन्धर्वराज 'तुम्बुरु' और देवर्षि 'नारद' ये महादेव की आरा-

---

(१) किं वा हिरण्यगर्भेशं किं वा श्रीमध्यमेश्वरम्।
इत्यादि कोटिलिंगानां मध्येऽहं किमुपाश्रये॥
(शि० पु० ४४० अ० ७२)

* मध्यमेश्वर शिवलिंग, पावनपुरी काशी (बनारस) Benares में कंपनीबाग से उत्तर राजा शिवप्रसाद C.S.I. की बारादरी के निकट है।

(२) अतः सेव्यो महादेवो मध्यमेश्वरसंज्ञकः।
अस्याऽऽराधनतो विप्रा बहवः सिद्धिमागताः॥
[शि० पु० ४४ अ० ७९ श्लो०]

धना से ही संगीतशास्त्र में प्रवीण हुए हैं। इन्हीं की आराधना से ब्रह्मा सृष्टि, विष्णु भगवान् पालन और रुद्रजी प्रलयकाल में इस संसार का संहार करते हैं। इन्हीं की कृपा से शेषनाग समस्त पृथ्वी को अपने ऊपर लिये हुए हैं। कहाँ तक कहा जाय !.सूर्य्य, चन्द्रमा, अग्नि और वायु सभी चराचर देव-दानव एवं मनुष्य अपने २ अधिकार पर स्थिर रहते हुए सिद्धि प्राप्त करते रहते हैं।

उस महात्मा के ऐसे वचन सुनकर व्यासजी ध्यानमग्न हो गये और फिर नेत्र खोलने पर उस महात्मा को नहीं देखा तो अन्तर्धान हुआ जानकर उनके हृदय में शिवलिंग की आराधना का दृढ़ निश्चय हो गया।

फिर क्या था, दूसरे ही दिन से नित्य नियमपूर्वक फलाहार करते हुए श्रीव्यासजी मध्यमेश्वर शिवलिंग की आराधना करने लगे। कुछ दिनों बाद एक दिन व्यासजी पूजा के बाद भगवान् की स्तुति कर रहे थे कि जगत्पिता परमेश्वर शंकरजी बालयोगी के वेष में प्रत्यक्ष हो गये और श्रीव्यासजी इस प्रकार उनकी स्तुति करने लगे—

(अभिलाषाष्टकम्)

वेदव्यास उवाच-

देवदेव महाभाग शरणागतवत्सल !
वाङ्मनःकर्मदुष्प्राप योगिनामप्यगोचर ॥१॥

महिमानं न ते वेदा विदामासुरुमापते !
त्वमेव जगतः कर्त्ता धर्त्ता हर्त्ता तथैव च ॥२॥
त्वमाद्यः सर्वदेवानां सच्चिदानन्द ईश्वरः ।
नामगोत्रे न वा ते स्तः सर्वज्ञोऽसि सदाशिव ॥३॥
त्वमेव परमं ब्रह्म मायापाशनिवर्त्तकः ।
गुणत्रयैर्न लिप्तस्त्वं पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥४॥
न ते जन्म न वा शीलं न देशो न कुलं च ते ।
इत्थंभूतोऽपीश्वरस्त्वं त्रिलोक्याः काममावहेः ॥५॥
न ब्रह्मा न च लक्ष्मीशो न च सेन्द्रा दिवौकसः ।
न योगीन्द्रा विदुस्तत्त्वं यस्य तं त्वामुपास्महे ॥६॥
त्वत्तः सर्वं त्वं हि सर्वं गौरीशस्त्वं पुरान्तकः ।
त्वं बालस्त्वं युवा वृद्धस्तं त्वां हृदि युनज्म्यहम् ॥७॥
नमस्तस्मै महेशाय भक्तध्येयाय शाम्भवे ।
पुराणपुरुषायाद्धा शंकराय परात्मने ॥८॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्य व्यासस्यामलचेतसः ।
शुचिस्मित्वा महादेवो बालरूपधरोऽब्रवीत् ॥६॥

वालशिव उवाच—

त्वया ब्रह्मविदां श्रेष्ठ योऽभिलाषो कृतो हृदि ।
अचिरेणैव कालेन स भविष्यत्यसंशयः ॥१०॥
अभिलाषाष्टकं पुण्यं स्तोत्रमेतत्त्वयेरितम् ।
वर्षं त्रिकालं पठनात्कामदं शम्भुसद्मनि ॥११॥
प्रातरुत्थाय सुस्नातो लिङ्गमभ्यर्च्य शाङ्करम् ।
वर्षं पठन्निदं स्तोत्रं मूर्खोऽपि स्याद्बृहस्पतिः ॥१२॥

इति श्रीशिवपुराणान्तर्गतं व्यासकृतं अभिलाषाष्टकं स्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

महामुनि श्रीव्यासजी के स्तुति करने पर भगवान् शंकर प्रसन्न हुए और मनोवांछित वरदान दे कर अन्तर्धान हो गये। तब से मध्यमेश्वर महादेव की ख्याति और भी बढ़ गयी। जो मनुष्य उनकी पूजा और नित्य दर्शन करता है, वह निश्चयही यशस्वी कवि और श्रीव्यासजी के समान पुराण इतिहास का प्रसिद्ध लेखक हो जाता है। उन्हीं की कृपा से व्यासजी अमर हो गये हैं।

एवं लब्धवरो व्यासो महेशान्मध्यमेश्वरात् ।
अष्टादश पुराणानि प्रणिनाय स्वलीलया ॥११६॥

(शि० पु० ४४ अ० ११६ श्लोक)

सत्तावनवाँ रत्न

रुद्रावतार महर्षि दुर्वासाजी ।

महर्षि दुर्वासा अत्रिमुनि के पुत्र और शिवजी के अंश से उत्पन्न हुए थे। ये फलों का विशेष कर दुर्वा का असन (आहार) करते थे, इसी लिये इनका नाम "दुर्वासा" पड़ा है। इनका क्रोध भी सुखद है, इसके अनेक प्रमाण पुराणों में मिलते हैं। जैसे—

एक समय महर्षि दुर्वासा समस्त भूमण्डल का भ्रमण करते हुए पितृलोक में पहुँचे। वे सर्वाङ्ग में भस्म रमाये एवं रुद्राक्ष धारण किये हुए थे। हृदय में उमा-पार्वती का ध्यान और मुख से—"जय पार्वती हर" का उच्चारण करते हुए कमण्डलु तथा त्रिशूल लिये दुर्वासा मुनि ने अपने पितरों के दर्शन किये। उन्हें दण्डवत्-प्रणाम करके कुछ बातें कर ही रहे थे कि इसी समय उनके कानों में करुण-क्रन्दन सुनाई पड़ा। वे पापियों के हाहाकारमय भीषण रुदन सुनकर कुम्भीपाक, रौरव नरक आदि स्थाना को देखने के लिये दौड़ पड़े। वहाँ पहुँच कर, मुनि ने वहाँ के अधिकारी से पूछा—हे पितृनाथ! ये इतनी यातना क्यों सह रहे हैं?" उन्होंने उत्तर दिया—"हे मुने! यह कुम्भीपाक नामक नरक है। यहाँ वे ही लोग आकर कष्ट भोगते हैं, जो शिव, विष्णु, देवी,

सूर्य्य, तथा गणेश के निन्दक हैं और जो वेद-पुराण की निन्दा करते हैं।"

यह सुनकर दुर्वासा ऋषि दुःखित हुए और कौतुकवश वहाँ वालों के दुःख देखने के लिये गये। कुण्ड के समीप जाकर सिर नीचे करके ज्यों ही वे देखने लगे त्यों ही वह कुण्ड स्वर्ग के समान सुन्दर हो गया। वहाँ के पापी जीव एकाएक प्रसन्न हो उठे और दुःखों से मुक्त होकर गद्गदस्वर से मधुर भाषण करने लगे। अचानक उनकी यह दशा हो गयी मानों जागृति अवस्था में आकर स्वप्न को भूल गये हों। उस समय आकाश से पुष्पवृष्टि होने लगी और त्रिविध समीर चलने लग गये। बसन्त ऋतु के समान उस सुखदायी समय ने यमदूतों को भी विस्मय में डाल दिया। तब चकित होकर यमदूतों ने धर्मराज के निकट जाकर इस परिवर्तन की सूचना दी और कहा—"हे महाभाग! बड़े आश्चर्य की बात है कि सब पापियों को इस समय अपार आनन्द हो गया है, किसी को किसी प्रकार की यम-यातना रह ही नहीं गई। हे विभो! यह क्या बात है?" यह सुनते ही धर्मराज स्वयं वहाँ गये और वैसा देखकर वे भी बहुत चकित हुए। उन्होंने सब देवताओं को बुलाकर इसका कारण पूछा, परन्तु किसी को इसका मूल कारण नहीं मालूम हो सका। जब किसी प्रकार पता न चला, तब ब्रह्मा और विष्णु की सहायता से धर्मराज स्वयम्भु भगवान् शंकर के निकट गये। उस समय करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर

शिवजी को * पार्वती के साथ विराजमान देखकर वे लोग स्तुति करके बोले—

'हे देवदेव! कुम्भीपाक का कुण्ड एकाएक स्वर्ग के समान हो गया, इसका क्या कारण है? हम में से किसी को मालूम नहीं होता। अतः आपकी सेवा में आये हैं। हम लोगों की यही जिज्ञासा है।" सर्वान्तर्यामी भगवान् ने गम्भीर स्वर से हँसते हुए कहा—"हे देवगण! इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है, यह विभूति (भस्म) का माहात्म्य है। जिस समय हमारा भक्त दुर्वासा कुम्भीपाक नरक को देखने गया था, उस समय उसके ललाट से कुछ भस्म के कण उस कुण्ड में गिर पड़े थे। इसी कारण नरक से वह स्वर्ग हो गया है और अब वह स्वर्गीय "पितृतीर्थ" के नाम से प्रसिद्ध होवेगा।"

भगवान् शंकर की बात सुनकर धर्मराज को तृप्ति हुई और वहाँ से अपनी पुरी में आकर यमदूतों को सावधान कर दिया कि अब वह कुण्ड "पितृतीर्थ" हो गया है। अत एव कुम्भीपाक के लिये दूसरा कुण्ड निर्माण करना होगा।

उसी समय देवताओं ने उस कुण्ड के समीप शिवलिङ्ग तथा देवी पार्वती की स्थापना की और वहाँ के पापियों को मुक्त कर दिया। तभी से पितृलोक में उस मूर्ति के दर्शन-पूजन

---

* पार्वत्या सहितं देवं कोटिकन्दर्पसुन्दरम्।

(दे० भा० १२ स्कं० १५ अ०)

करके पितृलोग शिवधाम (मोक्ष) प्राप्त करने लगे। देवी भागवत में लिखा है:—

"तनुजातमिदं सर्वं भस्मनो महिमा स्वयम् ।
इतः परं तु तत्तीर्थं पितृलोकनिवासिनाम् ॥
(देवी० भा०)

अट्ठावनवाँ रत्न । २३-३-३१

शिवभक्त सुपर्ण (जाबालि) मुनि ।

विन्ध्याचल पर्वत के दक्षिण भाग में I अमरकण्टक पहाड़ एक ऐसा अद्भुत स्थान है—जहाँ से चारों दिशाओं में नदियाँ निकली हैं । उसी भाग से मनुष्यों को चारों पदार्थ देनेवाली विमलसलिला भगवती नर्मदाजी की भी निर्मल धारा निकली है। यह प्रान्त बड़ा ही पवित्र एवं सुहावना है। प्राचीन समय से ही यह पुण्यभूमि मुनिजनों और देवताओं के मन को भी हरनेवाली कही गई है। कहा जाता है कि इसी

I अमरकंटक बिलासपुर C. P. से ५६ मील और कटनी से १३५ मील पीडरा रोड Pendra Road B. N. रेलवे स्टेशन से १५ मील दूर पहाड़ पर है ।

पवित्र धाम में ब्रह्माजी ने कभी 'श्रौत्रामणि' नामक यज्ञ किया और राजर्षि दधीचि ने शिवजी को प्रसन्न करने के निमित्त यहीं पर महायज्ञ ठाना था। सिद्धेश्वर और चतुष्केश्वर नामक दो ज्योतिर्लिङ्ग भी यहाँ ही स्थापित हैं—जिनके भजन-पूजन से शीघ्र ही सिद्धि प्राप्ति होती है।

प्राचीन काल में ब्रह्माजी के 'सुपर्ण' नामक एक पुत्र महाज्ञानी एवं जितेन्द्रिय हुए थे। उनकी 'पुरुहूता' नाम की भार्या थी सुपर्ण मुनि अमरकण्टक में रह कर कन्दमूल और फलों के आहार तथा मृगचर्म की शय्या एवं केला के छाल या भोजपत्र का वस्त्र धारण कर सन्तोषपूर्वक त्रिकाल सन्ध्या-हवनादि कृत्य करनेवाले, वेदों के पढ़ने में तत्पर तथा स्मृति और शास्त्र-पुराणों में कहे हुए मोक्ष के उपायों का विचार किया करते थे। यह सब कुछ करते हुए भी सुपर्ण मुनि शुष्क ज्ञानवादी थे। वे देवार्चन तथा किसी देव में श्रद्धा नहीं रखते थे। केवल ज्ञान को मानने के कारण बाहरी शौच-आडम्बर एवं हवा पीकर, पत्ती खा-खाकर समय काटना ही उनकी तपस्या के मूलाधार थे। स्त्री के रहते भी मिथ्या आडम्बर के वशीभूत होकर (ऋतौ भार्यामुपेयात् के अनुसार) ऋतुकाल में भी वे अपनी स्त्री का सत्कार नहीं करते थे।

एक बार पुरुहूता ने अपने पतिदेव से कहाः—"स्वामिन्! इस ऋतुकाल में आप मुझको काम-सुख अर्पण करें। जिससे वंशपरम्परा को चलानेवाला, पिण्डप्रदाता, हम लोगों की वृद्धा-

वस्था का एक मात्र सहायक, और उभय लोक में आनन्द बढ़ानेवाला पुत्र उत्पन्न हो।"

भार्या का वचन सुनकर मुनि बोले—"हे प्रिये ! बात तो तुमने अच्छी कही; किन्तु आज अमावास्या है। हे भद्रे ! इस तिथि-योग में दम्पति-संयोग होना ठीक नहीं है * देखो, मैंने देवताओं के हजार वर्ष तक दुष्कर तप किया था; परन्तु कुछ फल नहीं हुआ। मेरे देखते २ क्षणमात्र में शिवाराधन तथा रेवा (नर्मदा) के स्नानमात्र से एक निषाद स्वर्ग को चला गया। अतः मेरे तप को धिक्कार है !"

इसी बीच में उसी निषाद की स्त्री बोल उठी—"हे विप्रर्षे ! विषाद को छोड़ो, मैं सत्य कहती हूँ। पहले हम दोनों पति-पत्नी परस्पर शापयुक्त हो गये थे। तदुपरान्त इस तीर्थ एवं शिवपूजा के माहात्म्य से पापरूपी जाल से छूट गये। तुम्हारे बराबर अहंकार से मूढ़ बुद्धिवाला दूसरा कोई तापस नहीं है, क्योंकि तुमने स्नान, जप, होम, स्वाध्याय और शिव का पूजन कुछ भी नहीं किया है। वायुमात्र पीकर तप करते हुये तुम निष्फल क्लेश उठाये। तुम्हारा तप और ध्यान निष्फल है तो फिर स्वर्गप्राप्ति कैसे हो सकती है ?" तब जाबालि बोले—"हे वरारोहे ! निषादी के रूपको धारण किये तुम पार्वती,

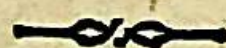
---

* ऋतुकाल में भी अमावस्या को स्त्रीगमन न करना चाहिए क्योंकि पितरों के वास्ते अनिष्टकर है।

सरस्वती गङ्गा या कौन हो ? क्या तुम हमारी परीक्षा लेने आई हो, सो अनुग्रह करके कहो।" निषादी बोली—"हे मुनिपुङ्गव! नैमिषारण्य में मेरा पति निषाद था। सब शास्त्रों का निश्चय है कि सब धर्मों को छोड़कर जो एकमात्र शिवजी को भजता है, वह सब सम्बन्धों से छूट जाता है। क्योंकि शिव गुरु हैं, शिव देव हैं और शिव ही प्राणियों के बन्धु हैं। * इससे हे मुनिश्रेष्ठ! तुम शिवजी के आराधन में तत्पर होओ और उन्हीं के वास्ते होम जप आदि कर्म बराबर किया करो।" उसके कथनानुसार जाबालि भी अपने तप को छोड़कर शिवजी के आराधन में लग गये और थोड़े ही काल में ब्रह्मलोक को प्राप्त हुए।

"त्यक्त्वा स्वकल्पं जाबालिः शिवाराधनतत्परः।
अचिरेणैव कालेन शिवलोकमुपागतः" ॥ ३३ ॥

(स्कन्द पु० रे० खं० ३२ अ०)



---

* विहाय सकलान्धर्मान्सकलागमनिश्चयान्।
शिवमेकं भजेद्यस्तु मुच्यते सर्वबन्धनात् ॥ ३ ॥ (ब्र० खं०)

उनसठवाँ रत्न।

शिवभक्त 'कलहंसजी'।

मत्स्या और तापी नदी के संगम पर देवताओं से सेवित एक तीर्थ है। जहाँ ऋषियों का एक रमणीय आश्रम भी है। वहीं पर 'कलहंस' नामक एक प्रसिद्ध देवर्षि रहते थे। वे सदा कन्द-मूल-फल तथा दूध पीकर ही अपना जीवन निर्वाह करते हुए आशुतोष भगवान् शंकर के ध्यान में लगे रहते थे। इस प्रकार एक पाँव पर खड़े २ योगसाधन द्वारा शिवाराधन करते हुए जब साढ़े दस हजार वर्ष बीत गये, तो उनकी इस घोर तपस्या से इन्द्रदेव घबड़ा गये कि कहीं यह अपने तपोबल से हमारी 'अमरावतीपुरी' न ले लेवे। इस अभिप्राय से उन्होंने महर्षि कलहंस की परीक्षा करने की ठानी।

एक दिन इन्द्र ब्राह्मण का वेष धारण कर कलहंस के आश्रम में आये और पूछा—'महात्मन् ! आप किस लिये इतनी घोर तपस्या कर रहे हैं ?' उन्होंने अपने योगबल से इन्द्र को पहचान कर कहा—"हे सुरराज ! आप व्याकुल न हों, मैं आपके पद के लिये यह तप नहीं कर रहा हूँ। मैं देवताओं के भी देवता भक्त-वत्सल भगवान् शिव की आराधना करता हूँ। आप निश्चिन्त रहें, अपनी पुरी में जाकर राज्य करें।" यह सुनकर इन्द्र कुछ सहम तो गये; परन्तु फिर बोले—'तपस्विन् ! मैं आप पर प्रसन्न हूँ, मुझसे कुछ वर माँगकर तपस्या से

तटस्थ हो जाइये ।' तपस्वी ने कहा—'हे महाभाग ! आपसे मुझे कुछ वर नहीं लेना है, न आपके राज्य से ही कुछ मतलब है । आप यथेष्ट विचरिये । मैं जिनकी आराधना कर रहा हूँ, उनके अतिरिक्त अन्य किसी से कुछ * नहीं माँगूँगा । आप व्यर्थ कष्ट न उठावें । अन्त में उन्हें "मनोरथ-सिद्धि" का वरदान देकर इन्द्र अपने लोक को चले गये ।

कुछ ही दिनों बाद भगवान् शंकर ने अपने में कलहंस की दृढ़ भक्ति† जानकर साक्षात् दर्शन दिया । महादेवजी के कोटि-कन्दर्प-सुन्दर स्वरूप को देखकर देवर्षि साष्टांग प्रणाम करके इस प्रकार स्तुति करने लगेः—

"हाटकाय नमस्तुभ्यमुमानाथ ! नमोऽस्तु ते ।
ब्रह्मविष्णुमहेशाय सर्वज्ञाय नमो नमः ॥ १ ॥
त्वया व्याप्तमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
सद्यो जातस्तथाघोरस्तत्पुरुषाय नमो नमः ॥ २ ॥
उमाकान्तार्द्धदेहाय श्रीकंठोरगभूषण ।
आदिमध्यान्तरूपाय कलिकाल ! नमोऽस्तु ते ॥ ३ ॥
अनन्तगुणरूपाय नागयज्ञोपवीतिने ।
नमः शिवाय शान्ताय शूलहस्त ! नमोऽस्तु ते ॥४॥

* विनाऽहं त्र्यम्बकं याचे नान्यादेवादहं वरम् । (रेवाखण्ड १४ अ०)

†—ज्ञात्वा तस्य परां भक्तिं देवदेवो महेश्वरः । (रेवाखण्ड)

जिह्वाचापल्यभावेन खेदितोऽसि मया प्रभो !
ब्रह्मविष्ण्वादिभिर्देवैर्यस्यान्तो नैव लभ्यते ॥ ५ ॥
भवसागरमग्नानां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत् ।
अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि शूलपाणे ! क्षमस्व नः ॥६॥

भगवान् शिवजी ने कलहंस की स्तुति सुनकर कहा—'हे महाप्राज्ञ ! हे अनघ ! तुम्हारी स्तुति से मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगो ।' कलहंस बोले:—"हे देवदेव ! जो आप प्रसन्न हों और मुझे वर देने की इच्छा करते हों तो हे सुरेश्वर ! हे प्रभो ! आप "कलहंसेश्वर" नाम से यहां विराजिये और हे महादेव ! यहाँ किये हुए होम, दान, जप-तप आपके प्रसाद से अक्षय होवें । हे शिवजी ! जो मनुष्य पर-वश या अपने वश हो करके यहाँ शरीर का परित्याग करे, वह इस तीर्थ के प्रभाव से आपके धाम को प्राप्त होवे ।" महादेवजी बोले—'हे विप्र ! तुम जिस २ काम की इच्छा करोगे, हमारे अनुग्रह से सब सिद्ध होगा—इसमें कोई सन्देह नहीं है ।' यह कहकर महादेवजी कैलास को चले गये । तभी से यह शिवधामदायक कलहंस-तीर्थ कहलाता है ।

एतत्ते कथितं राजन् ! कलहंसस्य कीर्त्तनम् ।
पठनाच्छ्रवणाद्वापि न सीदन्ति कलौ जनाः ॥

(रेवाखण्ड १४ अ०)

साठवाँ रत्न।

शिवभक्त 'तण्डी' ऋषि।

सत्ययुग में तण्डी नाम के एक ऋषि थे। उन्होंने दस हजार वर्ष तक समाधि लगाकर परम दयालु महादेवजी की आराधना की थी। एक बार अविनाशी परमात्मा में तल्लीन होते हुए, परम श्रद्धा के साथ वे मनही मन सोच रहे थे कि जिन परमात्मा को सांख्यवेत्ता लोग पर, प्रधान, पुरुष, अधिष्ठाता तथा ईश्वर कहकर गान करते और योगीलोग सदा जिसका चिन्तन करते हैं, ज्ञानी लोग जिनको जगत् की उत्पत्ति और विनाश का कारण समझते हैं, देवता, असुर तथा मुनि-गण जिनसे श्रेष्ठ और किसी को नहीं मानते (परं यस्मान्न विद्यते) उन अजन्मा, ईशान, आदि-अन्तरहित, आनन्दमय परम पवित्र भगवान् की मैं शरण जाता हूँ। तण्डीऋषि इस प्रकार विचार ही रहे थे कि इतने में शंकर भगवान् ने दर्शन दिया।

"तावद्देव गिरेः शृङ्गे व्याघ्रचर्मोपरि स्थितम्।
ददर्श पञ्चनयनं नीलकण्ठं त्रिलोचनम्॥"

उस अविकारी, उपमारहित, अचिन्त्य, शाश्वत, ध्रुव, देश और काल से असीम, ब्रह्मरूप, गुणातीत, निर्गुण, परमानन्द-स्वरूप, अक्षर, मोक्षस्वरूप, मनु, इन्द्र, अग्नि, पवन, विश्व और ब्रह्मा के गतिरूप, अग्राही, अचल, शुद्ध बुद्धि से ग्रहण

करने योग्य, असंख्य ज्ञानियों को भी दुष्प्राप्य, समस्त विश्व के कारणरूप ईश्वर के दर्शन पाने पर "तण्डीऋषि" इस प्रकार स्तुति करने लगेः—

"हे सर्वश्रेष्ठ देव ! आप पवित्र से भी पवित्र हैं—गतिवालों की भी गति हैं। हे परम कल्याणकारी ! हे परम सत्य !! आपको नमस्कार है। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, विश्वेदेव और महर्षि भी आपके स्वरूप को यथार्थ रीति से नहीं जान सकते। फिर मैं कैसे जान सकता हूँ ? आपही मोक्ष के द्वार को खोलते और बन्द करते हैं। * आपही ब्रह्मा, विष्णु, शिव स्वामिकार्त्तिकेय, इन्द्र, सविता, यम, वरुण, चन्द्र, धाता, विधाता और धन के अधिपति कुबेर हैं। हे भगवन् ! आज हम कृतार्थ हो गये हैं। आज हमें सत्पुरुषों की गति मिली है--जिसे पाने के लिये ज्ञानी लोग भी इच्छा करते-रहते हैं। जिन सनातन देव का साक्षात्कार केवल ज्ञानी को ही होता है, जिनको मैं अपने अज्ञान के कारण बहुत समय तक न जान सका था, अनेक जन्मों के अनन्तर मैंने उनकी साक्षात् भक्ति पायी है। भक्तों पर शीघ्र ही अनुग्रह करनेवाले, हृदयाकाश में विराजमान ब्रह्म आप ही हैं। आप सब के हृदय में वास करनेवाले परमात्मास्वरूप हैं। जो श्रद्धालु पुरुष भक्तियोग का आश्रय लेकर

---

* ब्रह्मा भवश्च विष्णुश्च स्कन्देन्द्रौ सविता यमः ।
बूरुणेन्दू मनुर्धाता विधाता त्वं धनेश्वरः ॥ २२ ॥

(म० भा० अनु० प०)

आपकी शरण जाता है, उसके सामने प्रत्यक्ष होकर आप दर्शन देते और तपस्वियों को जो स्थान (परम धाम) मिलता है, वह विमल धाम आप स्वयं हैं।

इस प्रकार स्तुति करने पर परम दयालु शिवजी ने प्रसन्न होकर कहा--"हे प्रियभक्त ! तुम अक्षय, अविकारी, दुःख-रहित, तेजस्वी और दिव्य ज्ञानवाले होओ। तुम्हारा पुत्र यजुर्वेद की तण्डिशाखा के कल्पसूत्र की रचना करनेवाला होगा। हे वत्स ! बोलो, तुम्हारी और क्या इच्छा है ?"

तण्डि ऋषि ने हाथ जोड़कर कहाः—"त्वयि भक्तिर्दृढास्तु मे।" हे भगवन् ! आपमें मेरी दृढ़ भक्ति हो—यही एक मात्र मेरी अभिलाषा है।" इसके पश्चात् देवताओं और ऋषियों से वन्दित भगवान् शंकरजी मुनि की कामना पूरी करके वहीं अन्तर्धान हो गये।



एकसठवाँ रत्न।

एक शिवभक्त ब्राह्मण और उनके चार पुत्रों का शिवार्चन।

* शिवजी को बहुत प्रिय अवन्ती नाम की एक नगरी

---

* उज्जैन Ujjain G.I.P. B.B. & C.I. रेलवे स्टेशन है उसीको अवन्तिका, महाकालवन तथा महाकाल शिव भी कहते हैं।

है। यह स्थान किस प्रकार शिवजी को परम प्रिय हो गया और पतितों को सद्गति देनेवाले परम पवित्र तीर्थ के रूप में परिणत हो गया, उसकी कथा यों है:—

यहाँ एक परम सदाचारी ब्राह्मण रहते थे। वे सदा अग्निहोत्र में तत्पर होकर शिवजी की अनन्य उपासना में लीन रहते थे। वे नित्य शिवजी की पार्थिवपूजा करते और सदा वेदों को पढ़ने-पढ़ाने में अपना समय बिताते हुए ज्ञान-परायण थे। इनके चार पुत्र भी थे। जो सदा इनकी आज्ञा का पालन करने में तत्पर और अपने पिता के अनुयायी थे। वे भी अपने पिता की आज्ञा के अनुसार शिवजी की पूजा, वेदाध्ययन और सत्कर्मों में तत्पर रहते थे। इन लोगों के प्रभाव से उस नगरी की सुख-शान्ति उसी प्रकार दिन २ बढ़ती जाती थी, जिस प्रकार शुक्लपक्ष में चन्द्रमा की कला दिन २ बढ़ती जाती है। उनके पुण्य से सारी पृथ्वी सुख और शान्ति से परिपूर्ण हो रही थी। इसी नगरी के समीप 'रत्नमाल' नाम का एक पहाड़ था। इस पहाड़ पर महापापी और महाबलवान् राक्षसों का एक राजा रहता था। ब्रह्माजी के वरदान के बल से वह सारे संसार को तुच्छ समझता और देवताओं को पराजित करके वैदिकधर्म को समूल नष्ट करने पर तुला हुआ था। उस अवन्ती नगरी और वहाँ के धर्मपरायण ब्राह्मणों का पुण्य प्रताप भी उसे मालूम हुआ। वह भला इसे कैसे सह सकता था? एक दिन दैत्यों की सेना लेकर वह उस नगरी पर चढ़ आया और हुक्म दिया कि ये ब्राह्मण

और यहाँ रहनेवाले उनके अनुयायी शिव की पूजा तथा वैदिक धर्म को छोड़कर मेरी अधीनता स्वीकार करें नहीं तो मैं इन लोगों का सत्यानाश कर डालूंगा; किन्तु सर्वशक्तिमान् शिव में श्रद्धा और विश्वास रखनेवाले ये ब्राह्मण कब अपने पथ से विचलित होनेवाले थे! इन्हें कुछ भी भय न हुआ। इनको धैर्य के साथ शिवजी की आराधना तथा अपने धर्म-पालन करने में पहले जैसाही तत्पर देखकर दैत्यों ने सम्पूर्ण नगरी को घेर लिया और एक-एक करके लोगों को सताने तथा वध करने लगे। इससे सम्पूर्ण नगर में हा-हाकार मच गया। सब भागकर उन ब्राह्मणों की शरण में आये और बोले कि "हे विप्रों! अब हम क्या करें। हम लोगों का सत्यानाश हो रहा है। अब बचने का कोई उपाय नहीं सूझता।" सदाशिव में अटल विश्वास रखनेवाले उस वेदप्रिय ब्राह्मण के लड़कों ने कहा—'सुनो, हमको इन दुष्टों का कुछ भी भय नहीं है। सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ और सर्वव्यापक शिवजी के आश्रितों का कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता हमको चाहिये कि शिव की शरण लें। इनको छोड़कर कोई हमारी रक्षा करनेवाला नहीं है। इस प्रकार सब को धैर्य देकर और स्वयं शान्त होकर, वे पुनः पार्थिव शिव की पूजा करते हुए ध्यानमग्न हो गये। इतने में दैत्यगण वहाँ आ पहुँचे और ब्राह्मणों को शिवध्यान में मग्न देखकर उनको मार डालने की धमकी देने लगे। ज्योंहीं वे उनको मारने के लिये उद्यत हुए, त्योंही वह पार्थिव शिवलिंग भयंकर शब्द करता हुआ फट

गया और उस गढ़े से भक्त-भयहारी, सज्जनों के रक्षक, दुष्टों का वध करनेवाले शिवजी महाकाल के रूप में प्रकट हो गये और कहने लगेः—

"हे दुष्ट दैत्यों ! मैं तुम लोगों का नाश करने के लिये ही इस महाकालरूप से प्रकट हुआ हूँ। अब तुम इन ब्राह्मणों के समीप से दूर भाग जाओ।" ऐसा कहकर * महाकाल शिव ने उसी क्षण हुँकारमात्र से सेनासहित उन दुष्टों को भस्म कर दिया। जिस प्रकार सूर्योदय होते ही अन्धकार विलीन हो जाता है, उसी प्रकार शिव के प्रगट होते ही उस दुष्टसेना का विनाश हो गया। उस समय स्वर्ग से फूलों की वर्षा हुई। ब्राह्मण हाथ जोड़कर संसार के कल्याणकारी शंकर भगवान् को अत्यन्त भक्ति से प्रणाम करके स्तुति करने लगे। महाकाल महेश्वर ने ब्राह्मणों के धैर्य पर प्रसन्न होकर उनको वर माँगने की आज्ञा दी। इस पर सब ब्राह्मण हाथ जोड़े, मस्तक झुकाये परम भक्ति से प्रणाम करते हुए बोलेः—

"हे महाकाल ! हे देव ! हे दुष्टों को दंड देनेवाले प्रभु शिवजी ! हे संसार-समुद्र से पार करनेवाले शंकर !! आप संसार की रक्षा के लिये यहाँ ही निवास कीजिये और अपने दर्शन करनेवालों का सदा उद्धार करते रहिये।"

शिवजी ने ब्राह्मणों की इस प्रार्थना पर भक्तों की रक्षा के

---

* महाकाल शिव उज्जैन में हैं।

लिये उसी गढ़े में निवास करने लगे। तब से शिवजी ज्योतिर्लिङ्ग के रूप में आज तक वहीं विराजमान हैं । संसार में वही पुरुष धन्य है, जिसने भगवान् शिवजी के चरणों में सब प्रकार से अपने को अर्पण कर दिया है। क्योंकिः—

"सा जिह्वा या शिवं स्तौति तन्मनो ध्यायते शिवम् ।
तौ कर्णौ तत्कथालोलौ तौ हस्तौ तस्य पूजकौ ॥७॥"

(ब्रह्मखण्ड)

बासठवाँ रत्न ।

द्विजोत्तम सुमेधा और 'सोमवती'।

* विदर्भ देश में 'वेदमित्र' और 'सारस्वत' नामक दो विद्वान् ब्राह्मण रहते थे। इन दोनों में घनिष्ठ मित्रता थी। उनकी आदर्श मैत्री जीवन भर निबह गयी। कुछ दिनों बाद इन दोनों के एक २ सुन्दर और सुशील पुत्र उत्पन्न हुए। (वेदमित्र के 'सुमेधा' और सारस्वत के सोमवान् नामक पुत्र हुए थे) ये दोनों बालक एकही तरह के और एकही वेषधारी हुए। उनको देखनेवाले चकित हो जाते, ऐसा जान पड़ता था मानों एकही माता के सहोदर भाई हैं और दर्शक गण मनही मन विधाता की रचना पर मुग्ध हो जाते थे।

* यह विदर्भनगर आज कल नागपुर के अन्तर्गत कुण्डिनगर के नाम से विख्यात है।

इन दोनों बालकों में भी पारस्परिक प्रेम वैसाही हुआ, जैसे इनके पिताओं में था। इनके सभी संस्कार एक ही साथ होते चले गये। थोड़े ही दिनों में ये दोनों द्विजबालक साङ्गोपाङ्ग श्रुति-शास्त्र-पुराण में निपुण हो गये। जैसे २ इनकी बुद्धि विमल होती गयी, तैसे २ शरीर भी सुसंगठित एवं सुडौल होता गया। प्राणायाम एवं व्यायामसम्बन्धी क्रियाओं में भी वे निपुण होते गये।

इस प्रकार इन दोनों बालकों ने अपने अद्भुत गुणों से माता पिता को बड़ा आनन्दित किया। एक बार उन दोनों ब्राह्मणों ने अपने-अपने पुत्रों को बुलाकर प्रेम-पूर्वक कहा— "हे तात! तुम दोनों के विवाह का समय उपस्थित है। अतएव धनोपार्जन की इच्छा से जाकर विदर्भदेश के राजा को तुम लोग अपने गुणों द्वारा मुग्ध करो।" पिता की आज्ञा से वे दोनों विद्वान् युवक महाराज विदर्भ की राजधानी में पहुँचे। महाराज ने उन विद्वान् द्विजकुमारों की विद्वत्ता को जानने के लिये हँसते हुए कहा:—

"हे विद्वन्! निषधदेश की राजमहिषी (रानी) बड़ी पतिव्रता हैं। वे प्रति सोमवार को पार्वतीसहित महादेवजी का पूजन करतीं तथा सोमव्रत रहा करती हैं। इस कारण तुम दोनों में से एक स्त्री का वेष और दूसरा पुरुष (उसके पति) का वेष धारण कर उसके घर जाओ और भोजन करके मेरे पास चले आओ।" द्विजकुमारों ने कहा—"माता, पिता, गुरु तथा राजकुल

में छल-कपट * करनेवाले मनुष्य शीघ्र ही विनष्ट हो जाते हैं। अतएव ब्राह्मणकुल में उत्पन्न हम लोग छल-कपट नहीं करना चाहते, न कर सकते हैं।" राजा बोले-"आप लोग विद्वान् हैं, "आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया" का स्मरण करके गुरु, पिता, माता एवं राजा की अवहेलना करनी उचित नहीं—विशेष कर राजाज्ञा का भंग करना तो प्रत्यक्ष दण्ड का कारण होता है। राजा की आज्ञा का किसी प्रकार प्रत्युत्तर नहीं होता, उसका उत्तर तो कार्य द्वारा ही दिया जा सकता है। राजा की ऐसी गम्भीर एवं नीतियुक्त बातें सुनकर अथवा दण्डभय से दोनों ने "वहुत अच्छा" कहकर वैसा ही किया।"

सारस्वत के पुत्र सोमवान् ने स्त्री का और वेदमित्र के पुत्र सुमेधा ने पुरुष (पति) का वेष बनाया। सुन्दर स्वच्छ वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर वे दोनों (कृत्रिम दम्पति) सोमवार के दिन निषधराज में पहुँचे और अन्तःपुर में जाकर रानी द्वारा सविधि पूजित हुए। अपने पातिव्रत के प्रताप से उन दोनों को कृत्रिम दम्पति जानती हुई भी महारानी ने उनमें शिव-पार्वती का ध्यान-आवाहन करके विधिवत् पूजन किया। अन्त में अनेक प्रकार के स्वादिष्ट भोजन कराकर, गो-भूमि-हिरण्य के दान से उन्हें सन्तुष्ट करके विदा किया।

---

* नृपे गुरौ नटे धूर्त्ते कुट्टन्यां च बहुश्रुते।
माया तत्र न कर्त्तव्या यतः सा तैर्विनिर्मिता॥

रानी ने जिस ब्राह्मण को पार्वती (स्त्री) की बुद्धिसे पूजा था, वह स्त्री बन गया। पुरुष ने पूछा—'सखे! तुम वास्तव में तो स्त्री हो नहीं। फिर स्त्री की भाँति हावभाव या कटाक्ष क्यों करते हो? तुम तो एक विद्वान् पुरुष हो और हम तथा तुम आपस में एक दूसरे के मित्र हैं।' यह वचन सुनकर वह अपने पिता के पास गया और सब वृत्तान्त कह सुनाया। उसके पिता भी इस वृत्तान्त से व्यग्र हो उठे और दोनों बालकों को साथ लेकर विदर्भ-नरेश के पास गये। सारस्वत ब्राह्मण ने राजा से कहा—"महाराज! आपकी आज्ञा से छल-कपट द्वारा वेष बदल कर अनुचित कर्म करने के लिए ये दोनों गये थे. सो मेरे पुत्र की यह दशा देखिये? यह स्त्री हो गया है, अब क्या किया जाय? आपने मेरी सन्तान नष्ट कर दी। आज से मेरे पितर निराश हो गये होंगे। भला यह कौन सा पाण्डित्य है?" ब्राह्मण का वचन सुनकर राजा बड़े विस्मित हुए और रानी के प्रभाव की मनही मन प्रशंसा करने लगे। अन्त में राजा ने बहुत से ऋषि-मुनियों को बुलाकर यह घटना सुनायी और द्विजकुमार को पहिले की तरह हो जाने का उपाय पूछा। ऋषियों ने कहा—"हे राजन्! इसमें आप अवश्य दोष के भागी हैं। अतः आपको ही इसका उपाय भी करना चाहिये। क्योंकि आपके राज्य में और आपकी ही करनी से ऐसा हुआ है। इसलिये आप भगवान् शंकर की आराधना करें; क्योंकि पार्वती और शिव की ही प्रेरणा से ऐसा हुआ है। इसे दूसरा कोई नहीं हटा सकता।

संसार में अघटन-घटना-पटीयसी भगवान् शंकर की माया ही सर्वत्र काम कर रही है। कठिन से कठिन काम भी प्रभु की कृपा से आसान हो जाते हैं। केवल उनकी भृकुटि-विलास से ही संसार का प्रलय तक हो जाता है। यह कौन सी आश्चर्य की बात है ? आप उनकी ही आराधना करें। इसी से द्विजकुमार पुरुष के रूप में परिणत होकर अपने पिता को आनन्दित करेगा।"

इस प्रकार भरद्वाज मुनि के सदुपदेश से राजा शिवालय में जाकर शिव-पार्वती की आराधना करने लगे। संयम-नियम से निराहार रहकर भगवती पार्वती के ध्यान में मग्न रहते हुए जब तीन रात्रि बीत गई, तब राजा ने पार्वती की स्तुति करना प्रारम्भ किया। स्तुति से प्रसन्न होकर देवी ने राजा को दर्शन दिया और कहा कि जाओ, तुम्हारा मनोरथ शीघ्र ही सिद्ध हो जायगा। परन्तु तुम चाहते क्या हो ? सो वर माँगो। राजा ने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक कहा—'हे माता ! आपके अनुग्रह से यह द्विजपुत्र स्त्रीत्व से छूट जाय और फिर पुरुषत्व प्राप्त करे।" देवी ने कहा—"हे राजन् ! मेरे भक्तों द्वारा जो काम हो जाता है, वह दस लाख वर्षों तक अमिट रहता है. वह अन्यथा किसी प्रकार नहीं हो सकता।" राजा बोले—हे जगज्जननी ! इस ब्राह्मण के यही एक पुत्र है, यह बिना पुत्र पाये जीवित नहीं रहेगा; अतः मैं ब्रह्महत्या का भागी बनूँगा। इसलिये मुझ पर ऐसी दया कीजिये। जिससे इस महापातक से

यह जन पृथक् रहे।" पार्वतीजी बोलीं —"मेरे अनुग्रह से उस ब्राह्मण के एक दूसरा पुत्र होगा। 'सोमवती' नाम की कन्या इस सुमेधा ब्राह्मण की स्त्री होकर सुखोपभोग करेगी। उसी के गर्भ से एक तेजस्वी और इस द्विजनन्दन से भी सुन्दर तथा सुशील पुत्र उत्पन्न होगा।" यह कहकर भगवती पार्वतीजी वहीं अन्तर्धान हो गयीं। राजा प्रसन्नचित्त होकर राजधानी को लाट गये और वे ब्राह्मणदेवता भी यथाकाल सुन्दर और यशस्वी पुत्र पाकर परम आनन्दित हुए।

भला, ऐसे शिवभक्तों की महिमा का वर्णन कौन कर सकता है? ऋषियों ने भी तो यही कहा है कि:—

"तेऽब्रुवन्नथ पार्वत्याः शिवस्य च समीहितम्।
तद्भक्तानां च माहात्म्यं कोऽन्यथाकर्तुमीश्वरः॥"

(ब्रह्मोत्तरखण्ड)

तिरसठवाँ रत्न।

इक्ष्वाकु-ब्राह्मण।

प्राचीन काल में 'इक्ष्वाकु' नामक एक ब्राह्मण बड़ा विद्वान् तथा निखिल-कला-निपुण हुआ था। धनाढ्य होते हुए भी वह न यज्ञ करता, न दान देता, न देवो-देवताओं का पूजन करता न अतिथि-सेवा ही करता था। केवल धनोपार्जन करके अच्छे

अच्छे भोग्य पदार्थों द्वारा अपना शरीर पालन करता और सुन्दर वस्त्राभूषणों से अपने अंगों को सजाता था। इस तरह उस स्वार्थी ब्राह्मण की एक लक्ष वर्ष आयु बीती। एक समय उसने कथा सुनी—

"जो कोई अपने इकट्ठे किये हुए धनों में से कुछ भी दान नहीं करता, स्वयं उसका उपभोग करता रहता है, उसका भोग विलास करना सब व्यर्थ एवं निस्सार हो जाता है। उस प्राणी को क्रमशः उतने वर्ष तक नरक भोगना पड़ता है। उसके बाद मृत्युलोक में जन्म लेकर वह दरिद्री, रोगी, बन्धुरहित, दुष्टा स्त्रीवाला और बहुत संतान-वाला होता है। वह भिक्षा माँगे हुए अन्नों से अपना निर्वाह करता अथवा मार्ग में पड़े हुए अन्नों को बीन २ कर अपना जीवनयापन करता है। जीते-जी युवा होते ही अंग-भंग, नेत्रों से हीन तथा कानों से रहित होकर नाना प्रकार का कष्ट भोगता है।

ऐसी कथा सुनकर इक्ष्वाकु ब्राह्मण अत्यन्त दुःखित हुए। अपने कर्मों का स्मरण करके मन में पश्चात्ताप, सन्ताप और शोक-मोहादि करते करते उनकी अकाल मृत्यु हो गयी। इसके बाद वे यमपुरी में पहुँचे। वहाँ उन्होंने प्रेतनाथ यमदेव द्वारा इस प्रकार अपना कर्म-विपाक सुना:—

"अपने पाप-कर्मों में लिप्त होकर तुमने कुछ भी पुण्य नहीं

किया । केवल पाप ही से पाप का घड़ा भरा । *पापकर्म करनेवाले मनुष्य अपने अशुभ कर्मों से पापी बन जाते हैं । वे रजोगुणी तथा तमोगुणी होते और शिव को नहीं पाते। इससे तुमको यहाँ रौरव नरक भोगना पड़ेगा । अब तुम्हारी थोड़ी-सी आयु शेष है । इससे तुम अपने पहले शरीर में चले जाओ और अब से अपने कल्याण के निमित्त साङ्गोपाङ्ग यज्ञ-व्रतादि करो। द्विजों को पढ़ाओ, ब्राह्मणों को भोजन कराओ, भस्म और रुद्राक्षमाला धारण करके देवदेव महादेव तथा आदि-शक्ति सती पार्वती का पूजन-भजन करो। ऐसा करने से तुम कभी इस (यम) लोक में न आओगे और अन्त में मुक्त हो जाओगे। यदि ऐसा न करोगे तो तुम्हें बारम्बार यमयातना की चक्की में पिसना पड़ेगा।"

यमराज के ऐसे युक्तिसंगत वचन सुनकर वह ब्राह्मण अपने पूर्व शरीर में चला गया और जब तक जिया बराबर शिवजी का पूजन करता रहा। जब वह वृद्ध हो चला और उसकी सभी इन्द्रियाँ शिथिल हो चलीं, तब वह एक दिन शिवभक्त जाबालि ऋषि के दर्शन की अभिलाषा से मन्दराचल पर्वत पर गया। वहाँ पर जाबालि ऋषि तप करते हुए वेदाध्यापन और स्मृति-शास्त्र-पुराणों का मनन किया करते थे। इक्ष्वाकु

---

* अशुभैः पापकर्माणो ये नराः कलुषीकृताः ।
ईशानं न प्रपद्यन्ते तमोराजसवृत्तयः ॥ (६२ अनु०)

ब्राह्मण ने मन्द्राचल पर्वत पर जाकर उस अनुपम आश्रम की इस प्रकार शोभा देखीः—

(आश्रम-वर्णन)

"मन्द्राचल के विशाल शिखर पर—जहाँ ऊँचे २ सुर-सदन बने हुए थे, जो यक्ष, गन्धर्व तथा किन्नरों के मधुर गान से गूँज रहे थे। सिद्ध महात्माओं तथा मुनियों की शान्त चित्त-वृत्ति से जहाँ सुखद शान्ति का साम्राज्य छाया हुआ था। जिस आश्रम में श्रुति-स्मृति-रूपिणी धेनु स्वच्छन्द विचर रही थी, आश्रम के आस-पास मनोहर नगर बसे हुए थे, वापी, कूप, तड़ाग तथा उपवनों से सुशोभित एक ऊँचे मन्दिर में चारों वेद स्थापित थे, जिनकी सुन्दर वेदी देखते ही बनती थी, उसी के निकट निर्मल चित्तवाले जावालि मुनि भगवान् शिवजी का ध्यान कर रहे थे। एक देदीप्यमान सिंहासन पर कपूर के समान श्वेत एवं गोदुग्ध के समान शुद्ध कान्तिवाले योगिराज शंकरजी विराजमान थे। चन्द्रशेखर भगवान् अपने तीनों नेत्रों को खोले. पाँचों मुख से मन्द २ हँसते, सुर-मुनियों के मनको मोहते, मुण्डों की माला धारण किये, नाग का यज्ञोपवीत पहने, चम्पा के समान पीले रंग के से शोभित हो रहे थे। सुन्दर रत्नों के कुण्डल धारण किये तथा जटाजूट से सुशोभित वे गंगा-धर शिव ऐसे विराजमान थे कि जिनके वाम भाग में नाना प्रकार के भूषणों से विभूषित चन्दनादि लेपों से सुगन्धित गिरजा विराजती थीं और उनके मुखारविन्द को योगिराज शिवजी देख

रहे थे। मुग्ध एवं सुन्दर मुखवाली वह देवी भी हाथों में सुवर्ण का कमल धारण किये प्रसन्न हो रही थी। ओंकार के पंखे से देवदेव को पवन करती हुई पार्वतीजी शिवजी के गले में पुष्पों की माला पहनाती हुई पूजा कर रही थी। ज्ञप्ति, और विरक्ति ये दोनों स्त्रियाँ योगाभ्यास को चामर बनाये उपस्थित थीं और यम नियम आदि उनके किङ्कर बने हुए उनकी सेवा में उपस्थित थे। प्राणायाम आगे खड़े थे, प्रत्याहार भी सुन्दर वर्ण धारण किये उपस्थित थे, कुवेर उनके ध्यान में मग्न थे। सत्य सेनापति थे, ब्रह्मा से लेकर कीट पतंग तक सब पशुरूप थे और उनके पति शिवजी थे। जो लोग धर्म्म और अधर्म्म आदि माया के पाश से बँधे हुए हैं, उनको छुड़ाने के लिये वही काशिकापुरी तीर्थ है ऐसे उमानाथ का स्मरण (ध्यान) प्राणिमात्र को करना चाहिये; क्योंकि उनकी सेवा करने से अमित भोगों को भोगकर प्राणी शिव-लोक में जाता है।* यम, विष्णु,

---

* इष्टान्भोगानवाप्याथ शिवलोके महीयते ।
ब्रह्मविष्णुमहेन्द्राद्यास्तत्पुरद्वारपालकाः ॥५७॥
लक्ष्मीसरस्वतीदेव्यौ देहल्याद्यर्च्चने क्षितेः ।
नियुक्ते देवदेवस्य देवाश्च सुरयोषितः ॥५८॥
दास्यो देवाः समस्ताश्च दासा यस्य महात्मनः ॥५९॥
(पद्म पु० पा० खं० अ० १०९)

इन्द्रादि देवता उनके पुर के द्वारपाल हैं। लक्ष्मी और सरस्वती उनकी देहली साफ़ करती हैं। अन्य देवताओं की स्त्रियां दासीकर्म्म में नियुक्त हैं। अर्थात् सब देवता उनके दास और देवियाँ उनकी दासियाँ हैं। ऐसे सुन्दर मन्दराचल पर स्थित जावालिआश्रम को इक्ष्वाकु ब्राह्मण ने देखा। कुछ देर बाद मुनिवर को प्रणाम करके ब्राह्मण ने कहा—"हे ऋषिराज! हम इस पर्वत के ऊँचे शिखर पर जाना चाहते हैं; किन्तु जा नहीं सकते, बताइये, हमारा कल्याण कैसे होगा?"

जावालि मुनि बोले—"हे विप्र! हमने दिव्य दृष्टि से तुम्हारा सब हाल जान लिया है। तुमने भी यह जान लिया होगा कि अब केवल दश दिन तुम्हारी आयु शेष है; पर तौ भी तुमने धर्म-पुण्य नहीं किया। अतः अनभ्यास के कारण इतने दिनों में न तो तुम तप कर सकते हो, न योगसाधन हो। सामर्थ्य न होने से देवताओं की पूजा-अर्च्चा भी नहीं कर सकते और न यज्ञ, व्रत, तडागादि खुदाना, देव-मन्दिर बनवाना ही हो सकता है। अब न तीर्थयात्रा कर सकते हो, न कोई प्रायश्चित्त ही करने का अवसर है। हे ब्राह्मण! अब तुम यहाँ ठहरो या चले जाओ।" यह सुनकर इक्ष्वाकु विप्र बोले—"जिस ब्राह्मण ने जन्म भर ब्राह्मण का ही धर्म्म-कर्म किया हो, वही हमारे पापों का परिहार कर सकता है। यह निश्चित है। इस प्रकार के सर्वगुण-सम्पन्न ब्राह्मण आप ही हैं। अतः बताइये कि किस श्रेष्ठ धर्म्म से हमारा पाप नष्ट होगा। अब

आप नरक-यातना से मेरी रक्षा कीजिये। मैं आपकी शरण आया हूँ। शरणागत का पालन करना सब धर्मों से बढ़-कर है।"

जाबालि ऋषि बोले—'हे द्विज! हम सत्य कहते हैं, तुम्हारे पापों का नाश थोड़े समय में नहीं हो सकता।' इक्ष्वाकु बोले-"हे मुने! शरण में आये हुए मुझ दीन की रक्षा करो। अब हमारा काल बीत जाना चाहता है" जाबालि बोले—"हे विप्र! वेदों का रहस्य, हमारे प्राणों से भी प्यारा, ब्रह्मादि देवताओं का किया हुआ, शिवलिंग-पूजन है। यह सब पापों को नष्ट करता है, मुक्ति का दाता है। इससे तुम शिवजी की पूजा करो; क्योंकि जिसकी जिह्वा से नित्य 'शिव-शिव' उच्चरित होता रहता है, शीघ्र ही उसके महापाप नष्ट हो जाते हैं। शिवको प्रदक्षिणा करके जो मनुष्य नमस्कार करता है, उसका वह नमस्कार समस्त भूमि की प्रदक्षिणा करने के समान फलदायक होता है। शिवजी के मन्दिर में जो कोई बाजा बजाता है, वह देवताओं के समान पूज्य होता है।

हे ब्राह्मण! अब तुम्हारी थोड़ी सी आयु शेष है। अतः शिवजी की पूजा करो। संक्षिप्त रीति से निम्नलिखित शिव-पूजन की विधि है।

तीनों काल में, वन में उत्पन्न पुष्पों से शंकरजी की प्रातः काल पूजा किया करो। बिल्वपत्र तथा अन्य सुगंधित कमल-कदम्ब-पुन्नाग-कनैल-तुलसीदल-मंदार-अकौवा- धतूर के पुष्प

और दूर्वा तथा अक्षत से शिवजी का पूजन करो तैल के पकाये हुए अन्न तथा चम्पा और केतकी के पुष्प से शिवजी का पूजन कदापि न करना। सदैव घृतपक्व अन्न शिवजी को निवेदन करो। भगवान् को सर्वश्रेष्ठ जानकर तुम शिवलिंग का पूजन * और निरन्तर उनका चिन्तवन किया करो। क्योंकि शंकर का स्मरण करनेवाले द्विज शंकर को प्राप्त होते हैं। जो भक्त अपने मनको सर्वथा परमेश्वर में लगाते और महादेवजी की ही भक्ति करते हैं, वे कभी संसार के वश में नहीं होते, ऐसा मेरा दृढ़ निश्चय है।

इस प्रकार जब जाबालि मुनि ने कहा तब से इक्ष्वाकु ब्राह्मण शिव-पूजन में आठ दिन तक बराबर लगे रहे। नवें दिन भी उन्होंने प्रातःकाल स्नान करके इसी प्रकार पूजन किया।

जब दसवें दिन उनकी मृत्यु हुई तब यमपुरी से यमदूत और शिवलोक से शिव के गण उन्हें ले जाने के लिए आये। दोनों दलों में बड़ा विवाद हुआ। अन्त में यह निर्णय हुआ कि शिवलिंग का अर्चन-पूजन करते हुए इसका प्राणान्त हुआ है, अतः यह शिवधाम में ही जायगा। इसके बाद सुन्दर पुष्प

---

* ईश्वरं संप्रपद्यन्ते द्विजा भावितभावनाः।
सर्वथा वर्त्तमानोऽपि यो भक्तः परमेश्वरे ॥६३॥
महादेवप्रपन्नानां न भयं विद्यते क्वचित्।
एवमेव महादेवं भक्ताय मानवा भुवि ॥६९॥
न ते संसारवशगा इति मे निश्चिता मतिः।

चन्दनादि से सजे विमान पर बैठाकर शिवगण उसे भगवान् श्रीशंकरजी की शरण में कैलासपर ले गये और वह मुक्त होकर परमानन्द को प्राप्त हुआ। जो इस कथा का नित्य नित्य पाठ करेगा, वह मनुष्य पाप बन्धनसे छुटकर शिवजी का भक्त होगा।

विमुक्तः पापबंधैश्च शिवभक्तो भविष्यति।
य इदं शृणुयान्नित्यं पुराणाख्यानमुत्तमम् ॥१०९॥

(पद्मपुराण० पातालखण्ड अ० १०९)

चौंसठवाँ रत्न।

अगस्त्यसोदर।

अगस्त्य मुनि के समान ही उनके एक सहोदर भाई भी बड़े तपस्वी, तेजस्वी और धर्म-कर्मनिष्ठ ऋषि थे। वे बहुतेरे मुनियों से सेवित * हिमालय पर्वत पर तप किया करते थे। असंख्य सिद्ध, चारण, गन्धर्व और किन्नर उस मनोहर भूमि में निवास करते हुए जीवन का आनन्द लूट रहे थे। उस वन में सिंह, व्याघ्र, वराह, गज, महिष आदि भयङ्कर हिंस्र जीव स्वच्छन्दतापूर्वक भ्रमण करते और कानन की रमणीयता को बढ़ाते थे।

---

* अगस्त्यचट्टी और रुद्रप्रयाग से उत्तर ११ मील मन्दाकिनीजी के उस पार २ मील दूर हिमालय पर "शिलेश्वर" शिव हैं।

योगियों के प्रभाव से उनका शाश्वतिक विरोधभाव दूर हो गया था। हंस, कोकिल, चक्रवाक आदि सुन्दर पक्षियों के कलरव से उसकी मनोहरता दूनी हो रही थी। सरोवर के निर्मल थल में समुत्पन्न नाना वर्ण के कमलों पर भ्रमरों के झुण्ड मँड़राते रहते और अपनी गुञ्जार से मुनियों के मन को भी आकर्षित करते थे। तमाल, ताल, हिंताल, चम्पक, अशोक, वट आदि वृक्षों की शीतल छाया में बैठे हुए असंख्य मुनि तप करते और इस असार संसार के बन्धनों से मुक्ति पाने का मार्ग खोजा करते थे।

अगस्त्य मुनि के सहोदर भाई भी उसी परम पवित्र कानन के एक रमणीय पत्रं अत्यन्त शान्त प्रान्त में पर्णकुटी बनाकर पवित्र मनुष्ययोनि में जन्म लेने का पूरा लाभ उठाते हुए सत्य का यथार्थ पालन करते थे। जो भाव उनके मन में आते, उन्हीं को वाणी द्वारा प्रकट करते और उन्हीं के अनुसार वे आचरण भी करते थे। इसका उन्हें पूरा ध्यान रहता था कि उनकी किसी कर्मेन्द्रिय या ज्ञानेन्द्रिय की प्रवृत्ति दुष्ट वासना की ओर न होने पाये। अहिंसा का तो उनका परम व्रत था। उनके शरीर से किसी का रोम भी दुःखित हो जाता तो वे कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत कर उसका प्रायश्चित्त करते थे। वे मन में किसी के प्रति दुर्भावना नहीं लाते थे। तितिक्षा और सन्तोष के तो अवतार ही थे। कुटी पर आये हुए अतिथियों का स्वागत और उनकी शुश्रूषा करने में वे अपनी सारी शक्ति लगा देते थे।

ब्राह्म मुहूर्त में निद्रा का परित्याग कर वे चिरकाल तक भगवान् के नाम का स्मरण करते और स्नान आदि प्रातः कृत्य विधिविहित रीति से समाप्त कर सन्ध्या-वन्दन एवं गायत्री की उपासना करते थे। इसके पश्चात् वेद का अध्ययन और अध्यापन कर पितरों की तृप्ति के लिए तर्पण-श्राद्धादि कर्म करते थे। होम और बलिवैश्वदेव कर के आये हुए अतिथियों की सेवा में लग जाते थे। इस प्रकार शास्त्रोक्त पञ्च महायज्ञों* के समाप्त किये बिना वे पानी भी नहीं पीते थे। अवशिष्ट समय में शास्त्रों का मनन करना और पुराणों का श्रवण करना ही उनके कालयापन करने का साधन था। इन्हीं सब सत्कर्मों में उनके सम्पूर्ण समय का सदुपयोग हुआ करता था।

उनके परम उपास्य देव शंकर थे। इस लिए वे दिन में तीन बार शिवजी की अर्चना करते थे। प्रति दिन वन से फल-मूल ले आते और वेदविहित विधि से भगवान् की पूजा करते थे। उन्होंने अपना शरीर भगवान् शम्भु को समर्पित कर दिया था। उन्हें ऐहलौकिक अथवा पारलौकिक किसी भी प्रकार के

---

* अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ ८० ॥
स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन् होमैर्देवान् यथाविधि ।
पितॄन् श्राद्धैश्च नॄनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा ॥ ८१ ॥
(मनुस्मृति अध्याय ३)

सुख की अभिलाषा नहीं थी। उनका एकमात्र ध्येय यही था कि किसी प्रकार इस संसार के बन्धनों से छुटकारा मिले।

इस प्रकार तप करते करते हजार वर्ष व्यतीत हो गये; पर भगवान् के सुखद दर्शन नहीं मिले। इससे उन्होंने और भी कठिन तप करना प्रारम्भ कर दिया। वे ग्रीष्मकाल में पञ्चाग्नि के बीच बायें पैर के अँगूठे पर बिना किसी के सहारे निश्चल भावसे खड़े होकर सूर्य की ओर ताकते और मौन धारण किये हुए अतिदारुण तप करने लगे। उनके तप के तेज से हिमाच्छन्न हिमालय पर्वत भी प्रज्वलित हो उठा।

इस तीव्र तप को देख कर दयानिधि भगवान् चन्द्रशेखर बहुत प्रसन्न हुए और नन्दी पर आरूढ़ होकर दशों दिशाओं को देदीप्यमान करते हुए उनके समीप आये। उनके दर्शन कर मुनि परमाह्लादित हुए और साष्टाङ्ग प्रणाम कर मधुर कण्ठ से अधोलिखित स्तोत्र से स्तुति करने लगे—

नमस्ते पार्वतीनाथ नीलकण्ठ महेश्वर।
शिव रुद्र महादेव नमस्ते शम्भवे विभो ॥१॥
श्रीकण्ठोमापते शूलिन् भगनेत्रहराव्यय।
गंगाधर विरूपाक्ष नमस्ते रुद्रमन्यवे ॥२॥
अन्तकारे कामशत्रो देवदेव जगत्पते।
स्वामिन् पशुपते शर्व नमस्ते शतधन्वने ॥३॥

दक्षयज्ञविनाशाय स्नायूनाम्पतये नमः।
निचेरवे नमस्तुभ्यं पुष्टानाम्पतये नमः ॥४॥
भूयो भूयो नमस्तुभ्यं महादेव कृपालय।
दुस्तराद्भवसिन्धोर्मां तारयस्व त्रिलोचन ॥५॥

इस स्तोत्र से भगवान् और भी प्रसन्न हुए और कहने लगे कि हे मुने! मैं तुम्हारा तपस्या से बहुत प्रसन्न हूँ। मुझे ज्ञात है कि तुम स्वर्गादि सुख को भी तुच्छ समझते हो और केवल मुक्ति की कामना से तप कर रहे हो। इस लिए मैं तुम्हें मोक्ष मिलने का एक उपाय बताता हूँ। गन्धमादन पर्वतपर कंकाल-तीर्थ के सन्निकट एक महातीर्थ है। उसमें स्नान करने से तुमको अवश्य मोक्ष मिल जायगा। इससे अधिक सरल उपाय और कोई नहीं हो सकता। वहीं * रामनाथ महादेव हैं। तुम उनकी आराधना करना और तीर्थ में स्नान करना। इस पुण्य से थोड़े ही दिनों में तुम्हारी अभीष्टसिद्धि हो जायगी।

भगवान् के आदेश के अनुसार वे उस पुनीत तीर्थ में गये। वहाँ तीन वर्ष तक नियमपूर्वक स्नान और विधिविहित रीति से शिवार्चन करते रहे। चौथे साल एक दिन समाधि लगाये भगवान् का ध्यान कर रहे थे, उसी समय उनके प्राण ब्रह्मरन्ध्र द्वारा निकल गये। इस पार्थिव कलेवर का परित्याग

* रामनाथ महादेव रामेश्वरम् Rameshwaram में हैं।

सुख की अभिलाषा नहीं थी। उनका एकमात्र ध्येय यही था कि किसी प्रकार इस संसार के बन्धनों से छुटकारा मिले।

इस प्रकार तप करते करते हजार वर्ष व्यतीत हो गये; पर भगवान् के सुखद दर्शन नहीं मिले। इससे उन्होंने और भी कठिन तप करना प्रारम्भ कर दिया। वे ग्रीष्मकाल में पञ्चाग्नि के बीच बायें पैर के अँगूठे पर विना किसी के सहारे निश्चल भावसे खड़े होकर सूर्य की ओर ताकते और मौन धारण किये हुए अतिदारुण तप करने लगे। उनके तप के तेज से हिमाच्छन्न हिमालय पर्वत भी प्रज्वलित हो उठा।

इस तीव्र तप को देख कर दयानिधि भगवान् चन्द्रशेखर बहुत प्रसन्न हुए और नन्दी पर आरूढ़ होकर दशों दिशाओं को देदीप्यमान करते हुए उनके समीप आये। उनके दर्शन कर मुनि परमाह्लादित हुए और साष्टाङ्ग प्रणाम कर मधुर कण्ठ से अधोलिखित स्तोत्र से स्तुति करने लगे—

नमस्ते पार्वतीनाथ नीलकण्ठ महेश्वर।
शिव रुद्र महादेव नमस्ते शम्भवे विभो ॥१॥
श्रीकण्ठोमापते शूलिन् भगनेत्रहराव्यय।
गंगाधर विरूपाक्ष नमस्ते रुद्रमन्यवे ॥२॥
अन्तकारे कामशत्रो देवदेव जगत्पते।
स्वामिन् पशुपते शर्व नमस्ते शतधन्वने ॥३॥

दत्तयज्ञविनाशाय स्नायूनाम्पतये नमः।
निचेरवे नमस्तुभ्यं पुष्टानाम्पतये नमः ॥४॥
भूयो भूयो नमस्तुभ्यं महादेव कृपालय।
दुस्तराद्भवसिन्धोर्मा तारयस्व त्रिलोचन ॥५॥

इस स्तोत्र से भगवान् और भी प्रसन्न हुए और कहने लगे कि हे मुने! मैं तुम्हारा तपस्या से बहुत प्रसन्न हूँ। मुझे ज्ञात है कि तुम स्वर्गादि सुख को भी तुच्छ समझते हो और केवल मुक्ति की कामना से तप कर रहे हो। इस लिए मैं तुम्हें मोक्ष मिलने का एक उपाय बताता हूँ। गन्धमादन पर्वतपर कंकाल-तीर्थ के सन्निकट एक महातीर्थ है। उसमें स्नान करने से तुमको अवश्य मोक्ष मिल जायगा। इससे अधिक सरल उपाय और कोई नहीं हो सकता। वहीं * रामनाथ महादेव हैं। तुम उनकी आराधना करना और तीर्थ में स्नान करना। इस पुण्य से थोड़े ही दिनों में तुम्हारी अभीष्टसिद्धि हो जायगी।

भगवान् के आदेश के अनुसार वे उस पुनीत तीर्थ में गये। वहाँ तीन वर्ष तक नियमपूर्वक स्नान और विधिविहित रीति से शिवार्चन करते रहे। चौथे साल एक दिन समाधि लगाये भगवान् का ध्यान कर रहे थे, उसी समय उनके प्राण ब्रह्मरन्ध्र द्वारा निकल गये। इस पार्थिव कलेवर का परित्याग

---

* रामनाथ महादेव रामेश्वरम् Rameshwaram में हैं।

कर वे परम धाम को प्राप्त हो अमृत हो गये। उसी दिन से उस तीर्थ का नाम * अमृतवापी हो गया।

इस तीर्थ में निरन्तर तीन साल तक स्नान तथा रामनाथ भगवान् के पूजन करने से विज्ञान और विवेक से शून्य, वैराग्य से रहित और यागादि के अनुष्ठान का विरोधी मनुष्य भी अमृतत्व पाकर मुक्त हो जाता है। स्कन्दपुराण में लिखा है कि—

अत्र तीर्थे नरा ये तु वर्षत्रयमतन्द्रिताः ।
स्नानं कुर्वन्ति ते सत्यममृतत्वं प्रयान्ति हि ॥४२॥
आगत्यामृतवाप्यां च स्नात्वा नियमपूर्वकम् ।
रामादीनपि सेवन्ते ते सर्वे मुक्तिमाप्नुयुः ॥५४॥
अद्वैतविज्ञानविवेकशून्या विरक्तिहीनाश्च समाधिहीनाः ।
यागाद्यनुष्ठानविवर्जिताश्च स्नात्वात्र यास्यन्त्यमृतं द्विजेन्द्राः।५५।

(ब्रह्म ख० से० मा० १३ अ०)



* रामेश्वर में कुल चौबीस तीर्थ हैं। उनमें २२ मन्दिर के भीतर और २ बाहर हैं। 'अमृततीर्थ' इन्हीं के अन्तर्गत है।

❋ ब्रह्मर्षिखण्ड ❋



पैंसठवाँ रत्न।

महर्षि वाल्मीकिजी।

जगत्प्रसिद्ध श्रीवाल्मीकीय रामायण के रचयिता आदि-कवि महर्षि वाल्मीकि को भला कौन नहीं जानता? तमसा नदी के तीर पर महर्षि वाल्मीकिजी का आश्रम था। एक समय यज्ञ में वेदसम्बन्धी विवाद होनेपर अग्निहोत्री मुनियों ने उनको शाप दिया कि "तू ब्रह्म-हत्यारा हो जाय।" उन लोगों के शाप से ही ब्रह्महत्या के पाप में लिप्त होकर उन्होंने बहुत दिनों तक व्याधे का काम किया। पश्चात् भक्तों के मनोरथ पूर्ण करनेवाले आशुतोष भगवान् शंकर की शरण में गये और उनकी आराधना से सब पापों से शीघ्र ही मुक्त हो गये। भगवान् महेश्वर ने मुनि पर प्रसन्न होकर उन्हें वरदान दिया कि—"जाओ, तुम्हारी विमल कीर्ति तीनों लोक में अमर होगी और तुम्हारा महाकाव्य संसार में अद्वितीय तथा आदर्श

होगा ।" भगवान् शंकर के अन्तर्धान होते ही वाल्मीकिजी को एक अद्भुत प्रकार का ज्ञान उत्पन्न हो गया और उन्होंने उस समय शिवभक्त श्रीरामचन्द्र का जो यशोगान किया, वह संसार के सामने है। विद्वानों का कहना है कि भगवान् शंकर के अनुग्रह से वाल्मीकि मुनि के मुखारविन्द से निम्न-लिखित श्लोक एकाएक निकल पड़ा था। तभी से छन्द की सृष्टि हुई है। देखिये, कैसा सुन्दर पद्य है:—

"मा निषाद ! प्रतिष्ठान्त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥"

(महा० भा० अनु० अ० १८)



छासठवाँ रत्न ।

महर्षि भृगु ।

जगत्प्रसिद्ध महर्षि भृगु ब्रह्माजी के छठें मानस पुत्र थे। वे श्रीवृत नामक क्षेत्र में भगवान् शंकर की आराधना कर रहे थे। एक हजार वर्ष तक उन्होंने कठिन तप किया। तप करते-करते वे एक दम सूख गये थे। न तो वे कुछ खाते थे और न शरीररक्षा का ही कोई उपाय करते थे। पत्थर की मूर्ति के समान बैठे केवल तप कर रहे थे।

एक बार शिवजी और पार्वतीजी विमान में बैठे हुए भ्रमण करते करते उस क्षेत्र की ओर जा निकले। भृगुको बल्मीक के समान बैठे देख कर पार्वतीजी ने उनके विषय में शिवजी से पूछा। शिवजी ने उत्तर दिया कि "हे देवि! ये भृगु नाम के महर्षि हैं। दारुण तप करते हुए इन्होंने एक हजार वर्ष तक मेरी आराधना की है। एक मास समाप्त होने पर ये कुशा के अग्रभाग से एक बूँद जल अपने मुख में डाल लेते हैं। एक सौ वर्षों तक ये खड़े हो कर तप करते रहते हैं। तदनन्तर क्षण भर के लिए विश्राम लेते हैं।

यह सुन कर पार्वतीजी से न रहा गया और वे कुछ कुपित सी होती हुई बोलीं कि "हे देव! आपका 'उग्र' यह नाम यथार्थ है। आप में दया है ही नहीं। आप की आराधना करना सहल नहीं है। आप सब प्राणियों को भय तो देते हैं; पर आपके हाथों से उनका उपकार और पालन होना कठिन है। इस बेचारे ब्राह्मण ने एक हजार वर्ष तक आपकी आराधना की, सब प्रकार के सुखों का परित्याग किया, शरीर सुखा दिया, उस पर भी आप प्रसन्न नहीं होते। क्या ऐसा करना आपको शोभा देता है?"

शिवजी ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया कि हे देवि! तुम इसका कारण नहीं जानतीं, अन्यथा ऐसी बात कभी न कहतीं। देखो! गर्व से स्त्री का, क्रोध से तप का, दूर दूर घूमने से गायों का और शूद्र के अन्न खाने से ब्राह्मणों का प्रभाव नष्ट हो

जाता है*। ये बड़े क्रोधी ब्राह्मण हैं। इसी कारण इनके तपकी सिद्धि नहीं हो रही है। ये हजार क्या दस हजार वर्ष तक तप करते रहें तो भी कुछ फल नहीं मिल सकता। यदि तुमको इनके क्रोध की परीक्षा लेनी हो तो मैं अभी इसका प्रवन्ध किये देता हूँ।

इतना कह कर शिवजी ने वृषभ का ध्यान किया। ध्यान करते ही एक दीर्घकाय भयंकर वैल डकराता हुआ उनके सामने आया और कहने लगा कि "हे सुरश्रेष्ठ! मुझे आपने किस काम के लिए याद किया है? कहिए, मैं किसकी जीवन-यात्रा समाप्त कर दूँ।"

शिवजी ने कहा कि "तुम जाकर भृगु ऋषि को कुपित करो।" उनकी आज्ञा पाते ही वह वैल उनके समीप पहुँचा और पहुँचते ही अपनी सींगों से उठा कर मुनि को नर्मदा में फेंक दिया।

भृगु के क्रोध का ठिकाना न रहा। इतना अपमान उनके लिए असह्य था। वे एक मोटा सा लट्ठ लेकर उसके पीछे दौड़ पड़े। उनको अपने पीछे आते देख कर उसने अपने खुरों से एक गड़हा खोद डाला और मुनि को सींगों से उठा कर उसमें

---

* स्त्री विनश्यति कोपेन तपः क्रोधेन नश्यति।
गावो दूरप्रचारेण शूद्रान्नेन द्विजोत्तमाः॥ १६॥
(रेवाखण्ड १८१ अ०)

पटक दिया। दूसरी बार अपना अपमान देखकर वे एकदम आग होगये उसके पीछे दौड़े।

उनके क्रोध से वह बैल जलने लगा और प्राण लेकर भागा। जम्बू, कुश, क्रौञ्च, शाल्मलि, शाक, गोमेद, और पुष्कर इन सातों द्वीपों की परिक्रमा करता हुआ सातों पातालों में भागता फिरा, कहीं शरण नहीं मिली। तब वह भूर्लोक, भुवर्लोक, तपलोक, सत्यलोक, और जनलोक को गया, पर भृगु ने उसका पीछा न छोड़ा। भागता-भागता वह वरुण, कुबेर, यम, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, ब्रह्मा और विष्णु की शरण गया, पर ब्राह्मण की कोपाग्नि से उसे कोई न बचा सका। सबने उसे कोराजवाब दिया।

अन्त में वह भगवान् देवदेव की शरण गया और उनके चरणों पर गिर पड़ा। भृगु के क्रोध को देखकर पार्वतीजी को आश्चर्य हुआ और वे शिवजी से कहने लगीं कि हे देवदेव! इनको शीघ्रता से वर देकर प्रसन्न कर लीजिए, नहीं तो इसको शाप देकर कहीं अनर्थ न कर डालें।

भगवान् उसी समय प्रकट हुए। भस्म रमाए, जटाजूट से विभूषित, त्रिशूल धारण किये हुए त्रिलोचन शंकर को देखकर भृगु मुनि उनके चरणों पर गिर पड़े और निम्न लिखित स्तोत्र से उनकी स्तुति करने लगे—

प्रणिपत्य भूतनाथं भवोद्भवं भूतिदं भयातीतम्।
भवभीतो भुवनपते विज्ञप्तुं किंचिदिच्छामि ॥१॥

त्वद्गुणनिकरान् वक्तुं का शक्तिर्मानुषस्यास्य ।
वासुकिरपि न तावद्वक्तुं वदनसहस्रं भवेद्यस्य ॥२॥
भक्त्या तथाऽपि शङ्कर शशिधर करजालधवलिताशेष ।
स्तुतिमुखरस्य महेश्वर प्रसीद तव चरणनिरतस्य ॥३॥
सत्त्वं रजस्तमस्त्वं स्थित्युत्पत्तिविनाशनं देव ।
भवभीतो भुवनपते भुवनेश शरणनिरतस्य ॥४॥
यमनियमयज्ञदानं वेदाभ्यासश्च धारणायोगः ।
त्वद्भक्तेः सर्वमिदं नार्हन्ति वै कलासहस्रांशम् ॥५॥
उत्कृष्टरसरसायनखड्गाञ्जनविवरपादुकासिद्धिः ।
चिह्नं हि तव नतानां दृश्यत इह जन्मनि प्रकटम् ॥६॥
शाठ्येन यदि प्रणमति वितरसि तस्याऽपि भूतिमिच्छया देव ।
भवति भवच्छेदकरी भक्तिर्मोक्षाय निर्मिता नाथ ॥७॥
परदारपरस्वरतं परपरिभवदुःखशोकसंतप्तम् ।
परवदनवीक्षणपरं परमेश्वर मां परित्राहि ॥८॥
अधिकाभिमानमुदितं क्षणभंगुरविभवविलसंतम् ।
क्रूरं कुपथाभिमुखं शंकर शरणागतं परित्राहि ॥९॥
दीनं द्विजं वरार्थं बन्धुजनेनैव पूरिता ह्याशा ।
छिंधि महेश्वर तृष्णां किं मूढ मां विडम्बयसि ॥१०॥

तृष्णां हरस्व शीघ्रं लक्ष्मीं दद हृदयवासिनीं नित्यम् ।
छिंधि मदमोहपाशं मामुत्तारय भवाच्च देवेश ॥११॥

इस करुणाभ्युदय नामक स्तोत्र को सुनकर महादेवजी बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे कि हे मुने! तुम्हें जो वर माँगना हो, माँगो। इस समय मैं सब कुछ दे सकता हूँ।

भृगुजी ने कहा कि हे महाराज! यह सिद्धिक्षेत्र मेरे नाम से प्रसिद्ध हो और यहाँ आपका सदा निवास रहे। मैं यहाँ पर रहता हूँ। आपकी कृपा से इस स्थान का माहात्म्य बढ़ जायगा। भगवान् शिव ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और तब से श्रीवृततीर्थ का नाम बदलकर *भृगुकच्छ होगया।

इस† क्षेत्र में मरने से कीड़े-मकोड़े भी शिवलोक को प्राप्त होते हैं। वृषखात में स्नान करने तथा शिवजी की पूजा करने से सर्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। वहाँ वृषोत्सर्ग करने से शिव की सायुज्यता मिलती है। स्कन्दपुराण में लिखा है:—

---

* भृगुकच्छ भड़ौच (सूरत) से २१ मील उत्तर कसबे के निकट नर्मदा के तीर पर है। वहाँ भृगु ऋषि का एक मन्दिर है। बलिया BALLIA B. N. W. RY. भी भृगुक्षेत्र के नाम से विख्यात है।

† भृगुक्षेत्रे मृता ये तु कृमिकीटपतङ्गकाः ।
वासंस्तेषां शिवे लोके मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥४१॥

वृषखाते नरः स्नात्वा पूजयित्वा महेश्वरम् ।
सर्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥४०॥
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा वृषमुत्सृजते नरः ।
स याति शिवसायुज्यमित्येवं शंकरोऽब्रवीत् ॥४६॥
(रेवाखण्ड १८२ अ०)



सड़सठवाँ रत्न ।

शिव-भक्त चारुशीर्ष ऋषि ।

पूर्वकाल में इन्द्र के प्रिय मित्र दयालु आलभ्यायन चारुशीर्ष नामक ऋषि हुए थे। सन्तान का अभाव होने से पुत्र-प्राप्ति के लिए * गोकर्णक्षेत्र में जाकर उन्होंने सौ वर्ष तक शिव-ध्यान-परायण होकर तप किया था। तदनन्तर देवता भी जिनका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं कर सकते, जो वेदरूप से भी परे हैं (अर्थात् इन्द्रियों के विषय मन, बुद्धि, महत्तत्त्व और अव्यक्तों से भी जो परे हैं) जो (चक्षु आदि) तेजों के तेजोरूप, तप के भी तप, शान्त चित्तवालों की शान्ति, जो द्युति अर्थात् ज्ञानों के भी ज्ञान,

* गोकर्ण, कारवार के बन्दरगाह से ४० मील, मोरमू गाँव से ८८ मील दक्षिण और पूर्व समुद्र के उत्तरी किनारे पर कुमटा नाम का एक कसबा है। वहाँ पर गोकर्णेश्वर शिवजी का स्थान है।

जितेन्द्रियों के भी जितेन्द्रिय, बुद्धिमानों के भी बुद्धिरूप, देवताओं के भी देवता और ऋषियों के भी ऋषि यज्ञभोक्ताओं, के भी यज्ञ (आराध्यदेव) कल्याण के भी कल्याण, रुद्रों के भी रुद्र, प्रभाववालों के भी प्रभावरूप (१) ब्रह्मा आदि योगियों के भी योगी, अव्यक्त आदि कारणों के भी कारण अर्थात् निष्फल, जिनसे संपूर्ण प्राणी उत्पन्न होते हैं और जिनको प्राप्त होकर प्राणी फिर संसार में उत्पन्न नहीं होते। उन प्रभु शिवजी ने प्रत्यक्ष दर्शन दिया, वे अंगों में अनेक आभूषण पहने, श्वेत-पुष्पों की माला पहने, श्वेत चन्दन लगाये, श्वेत वर्ण की ध्वजा लिए, श्वेत यज्ञोपवीत पहने, मुकुट में श्वेत बालचन्द्रमा, धारण किये शरदऋतु के चन्द्रमा के समान गौर शरीर पर श्वेत कमलों की गुथी हुई माला पहने और हाथ में दिव्य पाशुपत अस्त्र को धारण किये हुए शिवजी ने उनके मनका अभिप्राय जानकर ऋषि से कहा—हे आलभ्यायन! तेरे अयोनिज, स्वयंभू, इन्द्रियों का निग्रह करनेवाले, धर्मज्ञ, सुन्दर कान्तिवाले और दुःखरहित लाख वर्ष की आयु वाले सौ पुत्र होंगे।

मया गोकर्णमासाद्य तपस्तप्त्वा शतं समाः।
अयोनिजानां दान्तानां धर्मज्ञानां सुवर्चसाम्॥ ६॥

---

(१) शुद्धब्रह्मरतो यस्तु न स यात्येव कुत्रचित्।
तस्य प्राणा विलीयन्ते जले सैन्धवखिल्यवत्॥ २७॥
(शिवगी० अ११)

अजराणामदुःखानां शतवर्षसहस्रिणाम् ।
लब्धं पुत्रशतं शर्वात् पुरा पाण्डुनृपात्मज ॥ ७ ॥

(म० भा० अनु० पर्व अ० १८)

अड़सठवाँ रत्न ।

गर्गजी ।

महर्षि गर्गजी यदुवंशियों के कुलगुरु, ब्रह्मवेत्ता गार्गी के पिता सरस्वती नदी के तीर पर जाकर विद्या के निमित्त मानसिक यज्ञ (ध्यान-परायण हो) करके शिवजी को प्रसन्न किया। इससे भक्तों को अभीष्टदाता भगवान् शिवजी प्रसन्न होकर बोले—हे ऋषे! तुमको चौंसठ कला का अद्भुत ज्ञान होगा और वेद को जाननेवाले एक सहस्र पुत्र होंगे। उनकी आयु दश लाख वर्ष की होगी। इसका वर्णन युधिष्ठिरजी से गर्गाचार्यजी ने अपने मुखारविन्द से किया है—

"चतुःषष्ट्यांगमददत् कलाज्ञानं ममाद्भुतम् ।
सरस्वत्यास्तटे तुष्टो मनोयज्ञेन पाण्डव ॥ ३८ ॥
तुल्यं मम सहस्रं तु सुतानां ब्रह्मवादिनाम् ।
आयुश्चैव सपुत्रस्य सम्वत्सरशतायुतम् ॥ ३९ ॥

(महा० भा० अनु० पर्व अ० १८)

उनहत्तरवाँ रत्न।

महामुनि सुचरित।

भृगुवंश में समुत्पन्न सुचरित नामक एक शिव-भक्त मुनि हुए। जन्म से ही अन्धे होने के कारण वे किसी तीर्थ की यात्रा नहीं कर सकते थे। उनके मन में तीर्थयात्रा करने की बड़ी लालसा थी।

इस कामना की पूर्ति के लिए वे धूर्जटि (शिवजी) की आराधना करने का निश्चय करके दक्षिण महासागर के तट पर *गन्धमादन पर्वत के एक भाग में तपस्या करने लगे। वहाँ वे निराहार और जितेन्द्रिय होकर भगवान् शंकर का त्रिकाल पूजन करते थे। उष्णकाल में पञ्चाग्नि तापते, शिशिरकाल में जल में बैठे समय व्यतीत करते और वर्षाकाल में खुले मैदान में बैठकर भगवान् का ध्यान करते रहते थे। उनका भोजन वायु या अधिक से अधिक जल होता था। अन्न का ग्रहण तो उन्होंने दस वर्ष तक किया ही नहीं। भस्म और रुद्राक्ष से उनका शरीर सदा विभूषित रहता था।

इस प्रकार तप करते हुए जब दस वर्ष बीत गये तो भगवान् शंकर बहुत प्रसन्न हुए और सुचरित के समीप आकर प्रकट हुए। उस समय भगवान् के तेज से सब दिशाएँ प्रका-

* गन्धमादन, सेतुबन्ध रामेश्वर के पास है।

शमान हो गयीं। उस वन में नवीन जीवन का सञ्चार हो गया। सभी पशु और पक्षी आनन्द से कलोलें करने लगे। उनके आते ही सुचरित की दोनों आँखें खुल गयीं और उन्होंने भगवान् के मनोहर रूप का दर्शन किया।

उस समय वे वृषभ के ऊपर सवार थे और आस-पास शिव-गण खेल-कूद रहे थे। वे अपने जटा-मण्डल में गंगाजी और अर्द्धाङ्ग में पार्वतीजी को धारण किये थे। बड़े-बड़े नाग उनके शरीर भर में लिपटे थे। उनका तेज कोटि सूर्य के समान था परन्तु अनंत चन्द्रमा के समान शीतल होने से असह्य नहीं था।

उनके दर्शन पाते ही सुचरित बड़े भक्ति-भाव से उनकी स्तुति करने और कहने लगे कि हे परमानन्दविग्रह! हे विश्वेश्वर! हे करुणासिन्धो! मैं आपकी शरण हूँ। आप मुझे अपने कृपा-कटाक्ष से अनुगृहीत कीजिये। हे संसारवैद्य! आपको भक्तों की रक्षा करने में बड़ा आनन्द आता है। इसी लिए आप थोड़ी ही सेवा से प्रसन्न होकर भक्तों को इस संसार के बन्धनों से मुक्त कर अपने धाम को भेज देते हैं। हे दयानिधे! मेरे पूर्वकृत्यों का कुछ भी विचार न करके मेरी रक्षा कीजिए।

इस स्तुति से भगवान् की प्रसन्नता दूनी हो गयी और उन्होंने सुचरित से वर माँगने के लिए कहा।

सुचरित ने भगवान् के वचन सुनकर कहा कि हे दयालो! मैं बहुत वृद्ध हो गया हूँ, मेरे सब अंग अत्यन्त जीर्ण हो गये

हैं, मैं कोस दो कोस भी नहीं चल सकता। मेरे मन में तीर्थ-यात्रा करने की बड़ी उत्कट अभिलाषा है। मैं सब तीर्थों में स्नान और प्रसिद्ध-प्रसिद्ध शिवलिङ्गों की पूजा करना चाहता हूँ। इस लिए जिस उपाय के करने से सब तीर्थों के स्नान करने का पुण्य प्राप्त हो जाय, वह बताइए।

भगवान् शंकर ने कहा कि हे सुचरित! मैं तुम्हारे ऊपर परम प्रसन्न हूँ, इसी लिए सम्पूर्ण तीर्थों को मैं यहीं बुलाये देता हूँ. आज से सभी तीर्थ यहाँ निवास करेंगे और इसका नाम* सर्वतीर्थ होगा। इसमें स्नान करने से मनुष्य के सब पातक उसी प्रकार नष्ट हो जायँगे, जिस प्रकार गरुड़ को देख-कर सर्प भाग जाते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर-रूपी रोगों की यह महौषधि है। कुम्भीपाक, रौरव आदि महा नरकों की अग्नि से बचने का यह एक मात्र उपाय है। इस तीर्थ के सेवन से वेदान्त-विज्ञान के बिना ही मुक्ति मिल सकती है।

भगवान् ने इस प्रकार इस तीर्थ का फल बताते हुए उनको उसमें स्नान करने का आदेश दिया। स्नान करते ही सुचरित का वार्धक्य एकदम लुप्त हो गया और उनका शरीर नव यौवन और सौन्दर्य से दमक उठा। उनके उस कलेवर का पूर्ण-

---

* सर्वतीर्थ २४ तीर्थों में से है। यह तीर्थ रामेश्वरम् Rameswa-ram के 'रामेश्वर' मन्दिर में है।

तया परिवर्तन होगया और उनका चित्त अत्यन्त प्रसन्न होगया।

शिवजी ने मुनि से कहा कि हे द्विजवर! तुम इसी तीर्थ के तीर पर निवास करते हुए स्नान और भक्तिपूर्ण हृदय से मेरा स्मरण किया करो। दूसरे देश के तीर्थों में कभी मत जाना। इसी तीर्थ के पुण्य के फल से तुमको अन्त में मेरा लोक प्राप्त होगा। तुम्हारा तो कहना ही क्या, जो अन्य साधारण जन भी इस पवित्र तीर्थ में स्नान करेंगे, उन्हें शिवलोक में निवास करने का सौभाग्य प्राप्त होगा।

ऐसा कहकर शिवजी अपने लोक को चले गये और महर्षि सुचरित सर्वतीर्थ के तट पर भगवान् रुद्र की आराधना करने लगे। अनेक ऐहलौकिक सुखों को भोगकर अन्त में वे सब बन्धनों से मुक्त होकर शिव-सायुज्य को प्राप्त होगये।

भगवान् शंकर की कृपा से सुचरित को एक ऐसा तीर्थ प्राप्त होगया जिससे उसकी सम्पूर्ण तीर्थों में नहाने की कामना पूर्ण होगयी। भगवान् ने अपने मुख से इस तीर्थ का सब माहात्म्य सुचरित को बताया है:—

महापातकसंघानां दावानलसमद्युतौ।
काममोहभयक्रोधलोभरोगादिनाशने॥ ३९॥
जन्ममृत्य्वादिनक्रौघसंसारार्णवतारणे।
कुम्भीपाकादिसकलनरकाग्निविनाशने॥ ४०॥

विना वेदान्तविज्ञानं सद्यो निर्वाणकारणे।
सर्वतीर्थे सुचरित ! स्नाहि सद्यो विमुक्तये ॥

(स्कन्द पु० से० मा० २६ अ०)

सत्तरवाँ रत्न।

महर्षि गालवमुनि।

महामुनि विश्वामित्र के प्रिय शिष्य गालवमुनि जब समस्त विद्याओं में पारङ्गत होकर गुरु की आज्ञा से अपने पिता के दर्शनार्थ घर गये, तब वहाँ पहुँचने पर उनकी विधवा माता ने कातर स्वर से उनके पिता के स्वर्गवास का वृत्तान्त बतलाया। ज्ञानी गालवमुनि पितृ-वियोग से दुःखित हो तथा माता को अनाथ देखकर बड़े चिन्तित हुए और मनही मन अपने जीवन को धिक्कारने लगे—"हाय! पुत्र का जीवन, विद्या, यश-गौरव तथा धन-ऐश्वर्य किस काम का, जो गुरुजनों, विशेषकर पिता की सेवा में न लगे। मैं बड़ा अभागा हूँ। पिता के दर्शन तक मुझ अभागे को दुर्लभ होगये।" इस प्रकार बारम्बार विचारकर गालवमुनि ने गुरु का स्मरण किया और धैर्य्य धारण करके पितृ-दर्शन का हठ पकड़ा।

उसी समय माता से आज्ञा माँगकर ज्ञानी गालवमुनि किसी एकान्त स्थान में जाकर योग-साधना द्वारा योगीश्वर आशुतोष भगवान् शंकर का ध्यान करने लगे। थोड़े ही दिनों की कठिन तपस्या से शिवजी प्रसन्न हुए और अपना साक्षात् दर्शन देकर बोले—"हे विप्र! तुम अपने घर जाओ, तुम्हारी कामना शीघ्र सिद्ध होगी और तुम अपने पिता का दर्शन पाकर अमर होओगे।"

गालवमुनि उपर्युक्त वर पाकर बड़े प्रसन्न हुए और अपने घर को लौट पड़े। घर पहुँचते ही अपने पिता को द्वारपर आते हुए देखकर गालव बड़े विस्मय में पड़े और झट पिता के चरणों पर गिरकर करुणाश्रु बहाने लगे। उनके पिता ने उन्हें हृदय से लगाया और सिर सूंघते हुए अपने कोमल करों से समस्त अङ्गों का स्पर्श किया। पिता ने गद्गद स्वर से कहा—प्रिय पुत्र! बड़े आनन्द की बात है कि तुम पढ़-लिखकर यहाँ आगये और मैंने अपनी आँखों से तुम्हें देखकर पुत्र-सुख का अनुभव किया। तुम्हारी शिव-भक्ति सराहनीय है। क्योंकिः—

"एतद्देवेषु दुष्प्रापं मनुष्येषु न लभ्यते।
निर्विघ्ना निश्चला रुद्रे भक्तिरव्यभिचारिणी॥"

(महा० भा० अनु० प० ६५ अ० १७)

एकहत्तरवाँ रत्न ।

महर्षि अश्वत्थामाजी ।

महाभारत-संग्राम से छुट्टी पाकर प्रायश्चित्त (तप) करने की इच्छा से अश्वत्थामा चलते-चलते रेवा नदी के तट पर पहुँचे । वहाँ हजारों ऋषि बैठे घोर तपस्या कर रहे थे । आश्रम में घुसते ही मुनियों ने अपने योग-बल से उनका दुष्कर्म जान लिया और वे कहने लगे कि हे अश्वत्थामा ! तुमने सोते समय अपने शत्रुओं को मारकर भीषण पाप किया है । तुम्हारा मुख देखने से हम लोग पतित हो जायँगे । तुम्हारे साथ बात-चीत करने से ब्रह्महत्या करने का पाप होगा । इस लिए हे पुरुषाधम ! तुम हमारे आश्रम से निकल जाओ ।

ब्रह्मवादी मुनियों के ऐसे तिरस्कारपूर्ण वचन सुनकर अश्वत्थामा बहुत लज्जित हुए और उलटे पैर लौट पड़े । वहाँ से वे काशी, प्रयाग, हरिद्वार आदि अनेक तीर्थों में भ्रमण करते गये; पर सभी जगह उनका इसी प्रकार अनादर हुआ । इस अनादर से अश्वत्थामा बहुत ही दुःखित हुए और इसका प्रायश्चित्त करने की इच्छा से भगवान् वेदव्यास की शरण में पहुँचे ।

महामुनि व्यास बदरिकाश्रम में ध्यान लगाये बैठे थे । उसी समय अश्वत्थामा ने जाकर उन्हें भक्तिपूर्वक साष्टाङ्ग प्रणाम किया । उनको देखते ही व्यासदेव ने कहा कि हे द्रोण-

पुत्र! तुम यहाँ से अभी चले जाओ। तुमने सोते हुए सैनिकों को मारकर घोर पातक किया है। अतः तुम्हारे साथ वार्तालाप करने से मैं भी पातकी हो जाऊँगा।

व्यासदेव के ऐसे वचन सुनकर अश्वत्थामा ने दीन-भाव से कहा कि सारे संसार से तिरस्कृत होता हुआ तो मैं आपकी शरण आया, अब यदि आप भी ऐसे शब्द कहेंगे तो मेरा उद्धार और कौन करेगा। हे भगवन्! आप दीन-वत्सल हैं, मेरे ऊपर कृपा कीजिए। आप सर्वज्ञ हैं, कृपया मेरे पाप का प्रायश्चित्त बताकर मेरा उद्धार करिए।

व्यासजी को उनके ऊपर दया आयी और वे चिरकाल तक इसका प्रायश्चित्त मनमें ढूँढ़ते रहे; पर कोई भी उनके ध्यान में नहीं आया। तब वे कहने लगे कि हे द्रोण-पुत्र! इस पाप का प्रायश्चित्त किसी स्मृति में नहीं बताया गया है। तो भी मैं कुछ उपाय अवश्य बताऊँगा। दक्षिण सागर के तट पर* धनुष्कोटि नाम का एक परम पावन तीर्थ है। वहाँ रामनाथ नाम के महादेव प्रतिष्ठित हैं। उनकी आराधना से स्वर्ग, मोक्ष

* धनुष्कोटि, सेतुबन्ध रामेश्वर (Rameswaram) से दक्षिण की ओर १२ मील की दूरी पर है। और कन्नौज से २८ मील पश्चिमोत्तर कोण में बरराजपुर Barra pur B. B. & C. I. Ry. रेलवे स्टेशन है। वहाँ से २ मील पर धरेश्वर शिव तथा अश्वत्थामा का आश्रम भी है।

आदि सकल अलभ्य वस्तुएँ भी अनायास ही प्राप्त हो जाती हैं। उनके दर्शनों से अकाल-मृत्यु का शमन हो जाता है और आयु की वृद्धि होती है। हे द्रोण-नन्दन! उस तीर्थ में स्नान तथा श्रीरामनाथ महादेव की आराधना करने से तुम इस महा-अनर्थकारी पाप से छुटकारा पा सकते हो।

व्यासदेव के कथनानुसार अश्वत्थामा धनुष्कोटि तीर्थ में पहुँचकर भगवान् शङ्कर की आराधना करने लगे। एक महीने तक उन्होंने नियमपूर्वक उस तीर्थ में स्नान किया। वे दिन में तीन बार षोडश उपचारों से श्रीरामनाथ महादेवजी की पूजा करते और "ॐ नमः शिवाय" इस मन्त्र का जप करते थे।

तीसवें दिन अश्वत्थामा ने उपवास और रात्रि को जागरण किया। रात भर भगवान् की खूब स्तुति की और मारे आनन्द के नाचते-गाते रहे। भगवान् सदाशिव इस आराधना से प्रसन्न होकर प्रकट हुए। उनके दर्शन पाते ही अश्वत्थामा गद्गद वाणी से स्तुति करने और कहने लगे कि हे देवदेव! आप समस्त विश्व के स्वामी हैं, आर्तजनों के ऊपर आप सदा करुणा करते हैं। आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक दुःखों से मुक्त करके आप सम्पूर्ण सुखों को देते हैं। आपके चरण-कमलों के सहारे आपत्ति-समुद्र में डूबते हुए मनुष्यों का भी उद्धार हो जाता है। हे पतितोद्धारक! कृपाकर मुझे बचा-

हुए और इस पाप-समूह से मुझको मुक्त करिए ।*

इस स्तुति को सुनकर महादेवजी अश्वत्थामा से बोले कि हे अश्वत्थामन् ! सोते हुए मनुष्यों के मारने का दोष तो धनुष्कोटि तीर्थ में स्नान करने से ही मिट गया, अब तुम अपना अभीष्ट वर माँगो । मैं जिस मनुष्य के ऊपर प्रसन्न हो जाऊँ उसके लिए संसार में कोई पदार्थ अलभ्य नहीं रह जाता।

भगवान् के ऐसे वचन सुनकर अश्वत्थामा कहने लगे कि हे महाराज ! आपके दर्शनों से ही मैं कृतार्थ हो गया । पुण्य-हीन जनों को आपके दर्शन कोटि जन्म में भी प्राप्त नहीं होते। इस लिए हे शम्भो ! मुझे यही वर दीजिए कि आपके चरणों

---

* नमस्ते देवदेवेश करुणाकर शङ्कर ।
आपदम्बुधिमग्नानां पोतायितपदाम्बुज ॥ १८ ॥
महादेव कृपामूर्ते धूर्जटे नीललोहित ।
उमाकान्त विरूपाक्ष चन्द्रशेखर ते नमः ॥ १९ ॥
मृत्युञ्जय त्रिनेत्र त्वं पाहि मां कृपया दृशा ।
पार्वतीपतये तुभ्यं त्रिपुरघ्नाय शम्भवे ॥ २० ॥
पिनाकपाणये तुभ्यं त्र्यम्बकाय नमोनमः ।
अनन्तादिमहानागहारभूषणभूषित ॥ २१ ॥
शूलपाणे नमस्तुभ्यं गङ्गाधर मृडाव्यय ।
रक्ष मां कृपया देव पापसंघातपञ्जरात् ॥ २२ ॥
(ब्रह्मखण्ड मा० से० अ० २१)

में मेरी अटल भक्ति बनी रहे। भगवान् 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान होगये और अश्वत्थामा सब पापों से मुक्त होगये। स्कन्दपुराण में धनुष्कोटि तीर्थ में स्नान करने का बड़ा माहात्म्य लिखा है:—

धनुष्कोटिरिति ख्यातं तीर्थमस्ति महत्तरम् ।
अस्ति पुण्यतमं द्रौणे ! महापातकनाशनम् ॥
स्वर्गमोक्षप्रदं पुंसां ब्रह्महत्यादिशोधकम् ।
सर्वमंगलमांगल्यं सर्वाभीष्टप्रदायकम् ॥

(ब्रा० से० ख० मा० अ० ३१)



बहत्तरवाँ रत्न ।

ऋषियों की अपूर्व शिव-भक्ति ।

एक बार देवदारु वन के निवासी मुनियों ने ऐसा विचार किया कि देव-देव श्रीमहादेवजी को जानने और उनको प्रत्यक्ष करने से बढ़कर कल्याण का दूसरा कोई भी साधन नहीं है। देवता, ऋषि और पितर, सब के वे ही प्रभु हैं। सृष्टि के आरम्भ में ही प्रजापतिरूप से संसार की रचना करते और युग के अन्त में कालरूप से सबका संहार करते हैं। योगी लोग षट्चक्र में अर्थात् मणिपूरकचक्र में सदा इन्हीं रुद्र का ध्यान करते

हैं। क्रोध रहित, शान्त और जितेन्द्रिय ब्राह्मण भी इन्हीं के लिंग की आराधना करते हैं। इनके साक्षात् दर्शन के लिए शास्त्र के अनुसार इनकी उपासना करनी चाहिए। शास्त्र के अनुसार सब लक्षणों से युक्त अंगुष्ठ के समान शिवलिंग हो और इससे दुगुनी जलहरी (अरघा) हो। फिर इस शिवलिंग के समीप कलश स्थापन करके इस लिंग में विधिपूर्वक शिवजी की पूजा करनी चाहिए। अन्त में "ॐ सद्यो जातादि" मंत्रों से उस कलश को अभिमंत्रित करके उसके जल से अभिषेक करना चाहिए।

इस प्रकार विचार करने के अनन्तर सब मिलकर महादेवजी की आराधना करने लगे। उन्हें तप करते हुए एक वर्ष पूरा होगया। अन्त में परम दयालु शंकरजी हिमालय के उस देवदारु वन में प्रत्यक्ष हुए। मुनि लोग अपनी २ स्त्री और पुत्रों के साथ परमानन्दित हो, स्वच्छ जल, अनेक भाँति के फूलों की मालाओं, धूप, चन्दन और नैवेद्यों से आशुतोष शिवजी की पूजा करते हुए, हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे:—

हे भगवन्! आपके चरित्र विचित्र एवं अगम्य हैं। उनको ब्रह्मादि देवता भी नहीं जान सकते। हे देव! महात्मा पुरुष इस भाँति आपकी स्तुति करते हैं:—

"ॐ नमो भवाय भव्याय भावनायोद्भवाय च।
अनन्तवज्रवीर्याय भूतानाम्पतये नमः ॥१॥

संहर्त्रे चाप्यसंगाय अव्ययाय व्ययाय च ।
गंगासलिलधाराय आधाराय गुणात्मने ॥२॥
त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय त्रिशूलवरधारिणे ।
कन्दर्पाय हुताशाय नमोऽस्तु परमात्मने ॥३॥
शंकराय वृषाङ्काय गणानाम्पतये नमः ।
दण्डहस्ताय कालाय पाशहस्ताय वै नमः ॥४॥"

इस भाँति परम भक्ति से स्तुति करते हुए सब महात्माओं ने भगवान् शंकर को प्रसन्न किया। उनकी स्तुति सुनकर शिव-जी प्रसन्न हुए और बोले:—

"हे मुनीश्वरो! संसार में जितने स्त्रीलिङ्ग हैं, सब मेरी देह से उत्पन्न प्रकृति के रूप हैं। जितने पुल्लिङ्ग हैं, सब पुरुष-रूप में मेरे ही स्वरूप हैं। इस लिए जो किसी की निन्दा न करते हुए, भस्म धारण कर, जितेन्द्रिय हो, अपने पापों को दग्ध करके मेरे ध्यान में तत्पर होकर आराधना करते हैं, उनको मेरे लोक की प्राप्ति होती है। सब भय-बाधाओं को दूर करने-वाले महादेवजी के इस प्रकार के वचन सुनकर, उनके आदे-शानुसार लोभ-मोह आदि को छोड़, उन्हीं के शरणागत होकर मुनि लोग इस प्रकार स्तुति करने लगे:—

"सुरचितविचित्रकुण्डलाय सुरचितमाल्यविभूषणाय तुभ्यम् ।
मृगपतिवरचर्मवाससे पृथुयशसे च नमोऽस्तु शंकराय ॥"

इस प्रकार मुनियों की स्तुति सुनकर महादेवजी ने प्रसन्न होकर कहा—"मैं तुम लोगों की तपस्या से प्रसन्न हूँ। वर माँगो।" इस पर भृगु, अङ्गिरा, वसिष्ठ, बिश्वामित्र, गौतम, अत्रि, सुकेश पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, कश्यप, कराव, सम्वर्त्त आदि मुनि परम श्रद्धा-भक्ति से महादेवजी को प्रणाम करके बोले—"हे महाराज! हमारी एक मात्र अभिलाषा यही है कि आपके चरणारविन्दों में हमलोगों की अनपायिनी भक्ति हो। बस, हम यही वर माँगते हैं।"

महादेवजी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और वर दिया कि मेरी इस आराधना के फल से तुम लोगों की मेरे प्रति अमिट भक्ति होगी और उस भक्ति के प्रभाव से संसार में तुम लोगों का स्थान सबसे ऊँचा रहेगा। सब लोग देवताओं से भी अधिक तुम लोगों का सम्मान करेंगे। इस लोक में उच्च पद पाकर अन्त में तुम सब ऋषि शिवलोक को जाओगे।"

इतना वर देकर भगवान् शंकर अपने लोक को चले गये और ऋषि लोग अपनी तपस्या की समाप्ति करके अपने-अपने आश्रम को पधारे।

भूतं भव्यं भविष्यं वा स्थावरं जंगमं च यत्।
तव देहात्समुत्पन्नं देव! सर्वमिदं जगत् ॥१॥
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाद्यत्किञ्चित्कुरुते नरः।
तत्सर्वं भगवानेव कुरुते योगमायया ॥२॥

(लिं० पु० अ० २१)

तिहत्तरवाँ रत्न ।

गृत्समद ऋषि ।

एक बार गृत्समद ऋषि, जो वृहस्पति के समान तीव्र बुद्धिमान् थे। सहस्रों वर्ष में पूर्ण होनेवाले एक यज्ञ में 'रथन्तर साम' (वेद) का उच्चारण करते समय स्वर-भंग देखकर गृत्समद से चाक्षुषमुनि के पुत्र वरिष्ठ मुनि ने कहाः-"हे द्विजश्रेष्ठ! रथन्तर साम का उच्चारण आपसे ठीक नहीं हो रहा है, अतः आप मिथ्या दुराग्रह का परित्याग कर अब से भी विचारपूर्वक शुद्ध २ उच्चारण करें, जिससे कुछ फल हो। ऐसे उच्चारण से यज्ञ का फल कदापि नहीं मिलता, परन्तु जब इस उपदेश पर दुराग्रही विद्वान् गृत्समद ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया और पूर्ववत् उच्चारण करना हा अपना पाण्डित्य समझा तो मुनिवर वरिष्ठ से न सहा गया और अत्यन्त क्रुद्ध होकर उन्होंने गृत्समद को शाप दिया—"ऐ विद्याभिमानी! यज्ञ का फल पाने का मिथ्याभिलाषी गृत्समद! तू दुःखी होकर सदा दूसरों से डरता हुआ वन-वन में व्यर्थ घूमा करेगा और ग्यारह हज़ार आठ सौ (११८००) वर्ष तक जल-वायु से रहित, निर्जन, भयंकर, कण्टकमय, यज्ञांग-वृक्षों से शून्य, हिंसक जन्तुओं से भरे हुए, विकट वन में पशु बनकर तू इधर-उधर मारा २ फिरेगा।" मुनि के शाप से गृत्समद मृग बनकर वन में रहने लगे।

ऐसी अवस्था में गृत्समद ऋषि भगवान् शिव की शरण में गये, उसी समय आशुतोष भगवान् ने प्रसन्न होकर कहा कि तू अजर, अमर और दुःख रहित होगा।

अजरश्चामरश्चैव भविता दुःखवर्जितः ॥
साम्यं ममास्तु ते सौख्यं युवयोर्वर्धतां क्रतुः ॥२७॥
अनुग्रहानेवमेष करोति भगवान् विभुः।
परं धाता विधाता च सुखदुःखे च सर्वदा ॥२८॥

(महा० भा० अनु० प० अ० १८)

तथा तुझे मेरे समान सुख मिलेगा और तुम दोनों का अर्थात् इन्द्र का और तेरा यज्ञ सफल होगा यानी यज्ञ का फल मिलेगा। भगवान् शंकर (प्राणियों पर) इस प्रकार अनुग्रह किया करते हैं। ये ही सुख तथा दुःख के विधाता हैं ॥२७॥२८॥

*शिव के ऊपर निश्चल, निर्विघ्न और अनन्य भक्ति होना देवताओं के लिए भी दुर्लभ है, मनुष्यों में तो यह बात मिलती ही नहीं। शंकर की कृपा होने पर मनुष्य की

---

* एतद्देवेषु दुष्प्राप्यं मनुष्येषु न लभ्यते।
निर्विघ्ना निश्चला रुद्रे भक्तिरव्यभिचारिणी ॥ ६६ ॥
तस्यैव च प्रसादेन भक्तिरुत्पद्यते नृणाम्।
येन यान्ति परां सिद्धिं तद्भागवतचेतसः ॥ ६७ ॥
ये सर्वभावानुगता प्रपद्यन्ते महेश्वरम्।
प्रपन्नवत्सलो देवः संसारत्तान् समुद्धरेत् ॥ ६८ ॥

शिव में भक्ति होती है। शंकर की कृपा हुए बिना पुरुष परम सिद्धि को नहीं पा सकते। जो पुरुष सब प्रकार से महादेव की शरण लेते हैं, वे ही महेश्वर को प्राप्त होते और शरणागत-वत्सल भगवान् शंकर उनको संसार से छुड़ा देते हैं।



चौहत्तरहवाँ रत्न।

योगाचार्य जैगीषव्यजी।

जैगीषव्य नाम के एक महर्षि काशी में रहते थे। वे नित्य विश्वनाथजी का दर्शन करके ही भोजन करते थे। एक समय विश्वनाथजी ने गिरिजा देवी के साथ काशी से मन्दराचल के लिए यात्रा की। जैगीषव्यजी ने भी उसी दिन से ऐसा व्रत कर लिया कि जब तक विश्वनाथजी पुनः काशी में नहीं लौट आयेंगे और जब तक उनके दर्शन न होंगे, मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगा। शिवजी के लौट आने तक मैं बराबर निराहार ही रहूँगा।

योग के बल से या भगवान् शंभु के अनुग्रह से, किस प्रकार उन्होंने इस व्रत का पालन किया, इस बात को या तो वे स्वयं अथवा शिवजी ही जानते थे। शंकरजी ने लौटकर काशी आते ही नन्दी से कहा—"हे नन्दिन्! यहाँ पर एक मनोहर गुहा है, जिसमें मेरे एक परम भक्त 'जैगीषव्य' नाम के तपस्वी

बड़े कठोर नियम का पालन कर रहे हैं। उनके शरीर में चर्म और अस्थि मात्र शेष रह गया है। जब से मैं काशी से मंदराचल चला गया, तभी से वे आहार छोड़कर कठोर नियम का पालन कर रहे हैं। तुम जाओ और उस दृढ़व्रती भक्त को यहाँ बुला लाओ। इस अमृत के समान लीलाकमल को अपने साथ लेते जाओ। यह जीवन, बल और बुद्धि का देनेवाला है। इसे उनके अंग में स्पर्श करा देना और फिर उनको उठाकर यहाँ ले आना। नन्दी भगवान् शंकर से उस लीलाकमल को लेकर उस गुफा की ओर चल दिये। वहाँ जाकर उन्होंने लीला-कमल को उनकी देह से स्पर्श करा दिया। स्पर्श कराते ही उनका शरीर हृष्ट-पुष्ट और सर्वाङ्ग-सुन्दर हो गया और नन्दी ने उनको उठाकर देव-देव महादेवजी के सामने लाकर उपस्थित किया।

जैगीषव्यजी गिरिजा देवी के सहित श्रीशंकर भगवान् को अपने सामने देखते ही भूमि पर दण्डवत् गिरकर प्रणाम करते हुए इस प्रकार स्तुति करने लगे:—

नमः शिवाय शान्ताय सर्वज्ञाय शुभात्मने।
जगदानन्दकन्दाय परमानन्दहेतवे ॥ १ ॥
अरूपाय सरूपाय नानारूपधराय च।
विरूपाक्षाय विधये विधिविष्णुस्तुताय च ॥२॥

जो शिव शान्त, सर्वज्ञ, मङ्गलमय, आनन्द-कन्द, परमानन्द के निदान, रूपरहित होकर भी रूपवान् अनेक रूपधारी, विधि-

स्वरूप, ब्रह्मा और विष्णु के द्वारा स्तुति करने योग्य और विरूपाक्ष हैं, उनको हम बारम्बार नमस्कार करते हैं।

जैगीषव्यजी इस प्रकार शंकरजी की स्तुति करके ठूँठे वृक्ष के समान उनके सामने खड़े होगये। चन्द्रभूषण महादेवजी ने प्रसन्न होकर उनसे कहा—'हे मुने! मैं तुम्हारी भक्ति से बहुत प्रसन्न हूँ, वर माँगो'। ऋषि ने कहा कि "हे परम-पद-दायक भवानीश! हे देवदेव!! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो यही वर दीजिये कि मैं आपके चरण-कमलों से कभी दूर न होऊँ। दूसरा वर यह माँगता हूँ कि इस शिवलिङ्ग में आपका सदा निवास रहे।"

भगवान् ने कहा कि "हे मुने! तुमने ऐसा कठोर तप किया है, जैसा कदाचित् किसी ने न किया होगा। संसार में अनेक व्रत हैं, पर तुम्हारे इस व्रत की बराबरी कोई नहीं कर सकता। मेरा दर्शन करके भोजन करने का नियम सबसे उत्तम व्रत है। मेरे दर्शन किये बिना जो कुछ खाया जाता है, वह अधम भोजन है। मुझे समर्पण किये बिना जो मनुष्य फल-फूल भोजन कर लेता है, वह इक्कीस जन्म बीजभक्षी जीव (पक्षी) होता है। तुम्हारे इस नियम का सोलहवाँ हिस्सा भी अन्य कोई कठोर व्रत नहीं है। हे जैगीषव्य! तुमने जो कुछ प्रार्थना की है, वह तो पूरी होगी ही इसके साथ-साथ तुमको योगशास्त्र भी प्रदान करता हूँ। इससे तुम्हें मोक्ष की प्राप्ति होगी और आज से सदा तुम्हें सब लोग 'योगाचार्य' मानेंगे। तुम्हारे

हाथों से संस्थापित *"जैगीषव्येश्वर" शिव के दर्शन करने से तीन ही वर्ष में योग-सिद्धि हो जायगी।

ऐसा वर देकर भगवान् शिवजी अपने लोक को चले गये और जैगीषव्य कृतकृत्य होकर संसार के उपकार में लग गये।

स्कन्दपुराण में लिखा है कि जैगीषव्येश्वर नामक शिवलिङ्ग का दर्शन बड़े भाग्य से होता है। उनकी तीन वर्ष तक सेवा करने से योग-सिद्धि प्राप्त होती है। इस शिवलिङ्ग के दर्शन, स्पर्शन और पूजन से सब पापों का विनाश हो जाता है। लिखा भी है:—

जैगीषव्येश्वरं नाम लिङ्गं काश्यां सुदुर्लभम्।
त्रीणि वर्षाणि संसेव्य लभेद्योगं न संशयः ॥८०॥
अत्र ज्येष्ठेश्वरक्षेत्रे शिवलिङ्गं सुसिद्धिम्।
नाशयेदघसंघानि दृष्टं स्पृष्टं समर्चितम् ॥८१॥

(काशीखण्ड उत्त० ६३ अ०)



---

* श्रीजैगीषव्य-गुहा, पावनपुरी काशी Benares में, बाबूबाजार के पास जागेश्वर महादेव के निकट है।

पचहत्तरवाँ रत्न ।

महर्षि मार्कण्डेय ।

सतयुग के आरम्भ में महर्षि मार्कण्डेय पवित्र विन्ध्य पर्वत पर निवास करते थे। वहाँ उन्होंने मुनियों के मुख से नर्मदा नदी का बड़ा माहात्म्य सुना और अपने शिष्यों को साथ लेकर नर्मदा नदी के तट पर पहुँचे। वहाँ पर परम तपस्वी ब्राह्मण अपने-अपने आश्रमों में निवास कर जीवन को सफल बना रहे थे। कुछ ब्रह्मचर्याश्रम के नियमों का यथाविधि पालन करते हुए कठिन तपस्या कर रहे थे। कुछ लोग प्रथम आश्रम से द्वितीय आश्रम में प्रवेश कर गार्हस्थ्य-धर्म का पालन कर रहे थे। कुछ उससे भी परे वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश कर अपनी-अपनी सहधर्मिणियों के साथ कठिन तप करते हुए भगवान् शङ्कर की सपर्या में समय का सदुपयोग कर रहे थे। कुछ पुरुष जीवन के सब कृत्यों को समाप्त कर ब्रह्मानन्द में मग्न हो रहे थे। उनके हृदय में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर का क्षण भर के लिए भी प्रवेश नहीं हो सकता था। वे शीत-उष्ण, सुख-दुःख, मान-अपमान आदि द्वन्द्वों से अतीत थे। उनके दर्शनों ही से महापातकी भी पातक-मुक्त हो जाते थे।

मार्कण्डेयजी ने भी उसी सुरम्य नर्मदा तट पर अपना

आसन जमा लिया और शिव एवं कृष्ण, इन दोनों देवों की आराधना करने लगे। दस हजार वर्षों तक उन्होंने दारुण तप किया। आहार-विहार का पूर्ण परित्याग कर वे निरन्तर इन्हीं देवों का ध्यान करते और सभी सांसारिक वासनाओं को छोड़े बैठे थे। उनके तप की दारुणता से सम्पूर्ण वन दीप्त हो उठा और मुनिजन उस ताप से तप्त होने लगे।

उनके तप से भगवान् शङ्कर और पूज्य देव विष्णु अत्यन्त प्रसन्न होकर उनके सामने प्रकट हुए। उनके दर्शन करते ही मार्कण्डेयजी का हृदय प्रफुल्लित हो उठा और वे गद्गद वाणी से दोनों की स्तुति करने लगे। स्तुति सुनकर वे और भी प्रसन्न हुए और कहने लगे कि हे मुने! तुम्हारी इस कठिन तपस्या से हम लोग बहुत प्रसन्न हैं। तुम्हारी जो अभिलाषा हो, बताओ। वह अवश्य पूरी की जायगी। मार्कण्डेयजी ने विनय-पूर्वक प्रार्थना की कि हे महाराज! मैं आप लोगों के चरणों में अटल भक्ति की प्रार्थना करता हूँ। धर्म के ऊपर मेरी दृढ़ आस्था हो और सदा धर्म-पालन में मेरी तत्परता बनी रहे। मुझे कोई आधि-व्याधि कभी न सताये और न कभी जरा (बुढ़ापे) से कष्ट हो। मैं सदा पच्चीस वर्ष का ही बना रहूँ। एक प्रार्थना यह भी है कि आप लोग इस स्थान में सदा निवास करें। वे दोनों देव "तथास्तु" कहकर अन्तर्धान होगये। मार्कण्डेयजी उन दोनों देवों की पूजा कर कृतकृत्य हुए और भगवान् की आराधना का परम सुख उठाने लगे।

वह स्थान तभी से परम सिद्धिप्रद होगया। दूर से वहाँ के वृक्षों के दर्शन कर लेने से ब्रह्महत्या सदृश पापों से मुक्ति मिल जाती है। वहाँ पर श्राद्ध करने से पितर लोगों को अक्षय तृप्ति मिलती है। एक ब्राह्मण के भोजन कराने से एक करोड़ ब्राह्मणों के भोजन कराने का फल मिलता है और ऋग्वेद के एक मन्त्र के पाठ करने से सम्पूर्ण ऋग्वेद के पाठ करने का फल मिलता है। स्कन्दपुराण में लिखा है:—

"मार्कण्डेश्वरवृक्षान् यो दूरस्थानपि पश्यति।
ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते शंकरोऽब्रवीत् ॥२६॥
श्राद्धं यः कुरुते तत्र पितॄनुद्दिश्य सुस्थिरः।
तस्य ते ह्यक्षयां तृप्तिं प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥२१॥
एकस्मिन् भोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजिता।
ऋचमेकां जपेद्यस्तु ऋग्वेदस्य फलं लभेत् ॥२५॥"

(रेवाखण्ड १६७ अ०)





छिहत्तरवाँ रत्न।

क्रतु स्वयम्भु मनु।

विवस्वत् आदि चतुर्दश मन्वन्तरों में 'क्रतु' नामक एक स्वयम्भु मनु ब्रह्माजी के मानस पुत्र, बड़े पराक्रमी तथा दीर्घ-जीवी थे। बहुत दिनों तक इनको कोई सन्तति नहीं हुई। इससे चिन्तित होकर पुत्र कामना से वे भगवान् शंकर की आराधना करने लगे। इस प्रकार शिव की समाधि में स्थित क्रतु मनु ने तीन सौ वर्ष तक योग-तप किया। अन्त में भगवान् महेश्वर ने प्रसन्न होकर इन्हें दर्शन दिया। उस समय वाम भाग में श्रीपार्वतीजी, सिर पर श्रीगंगाजी तथा गोद में श्रीगणेशजी विराजमान थे। कण्ठ में शर्पों का कण्ठहार एवं नाग-यज्ञोपवीत पहिने, रुद्राक्ष तथा भस्म धारण किये, त्रिनेत्र, पंचवदन महादेवजी मन्द मुसकान कर रहे थे। मृगचर्म पर

योगासन से स्थित नन्दिकेश्वर तथा गणों से युक्त, डमरू-त्रिशूलधारी शंकरजी, जिनके ललाट में द्वितीया के चन्द्रमा विभूषित हो रहे थे। ऐसे नित्य अविनाशी सर्वान्तर्यामी सदाशिव भगवान् के दर्शन से कृतकृत्य होकर मनु महाराज ने पुत्र होने का वरदान माँगा। शिवजी ने 'एवमस्तु' कहकर उन्हें एक सहस्र पुत्र होने का वरदान दिया। इस तरह महाराज क्रतु ने मनोऽभिलषित वर पाया और सन्तुष्ट होकर अपने स्थान को चले गये। फिर शंकरजी भी वहीं अन्तर्धान होगये।

"तस्य चोपददौ पुत्रान् सहस्रक्रतुसम्मितान् ।"

(म० भा० अनु० प० १४ अ०)

सतहत्तरवाँ रत्न ।

राजर्षि कुवलयाश्व (धुन्धुमार)।

सूर्यवंश के एक बड़े प्रतापी राजा बृहदश्व नाम के थे। उनके सर्वगुणसम्पन्न और जगद्विख्यात कुवलयाश्व नाम के पुत्र हुए। उन्होंने धुन्धु नाम के एक बड़े देव द्रोही दैत्य को मारकर संसार को उसके अत्याचारों से बचाया था। इसी से संसार भर में उनका धुन्धुमार नाम पड़ गया।

उन्होंने चिरकाल तक बड़ी योग्यता और सफलता के साथ राज्य का संचालन किया। प्रजा के लोग उन्हें अपने

पिता से बढ़कर मानते और उनके लिए प्राण तक देने को तयार थे। जीवन भर उन्होंने संसार के सब भोगों का भोग किया। वृद्धावस्था में उन्हें संसार से पूर्ण वैराग्य होगया और अपना राज्य-भार अपने सुयोग्य पुत्र को देकर तपस्या करने चल पड़े।

वहाँ से चलकर, वे चमत्कारपुर (का माहात्म्य सुन रक्खा था, इससे वहीं) पहुँचे और भगवान् शंकर की आराधना करने लगे। वहाँ उन्होंने एक सुन्दर मन्दिर बनवाया और उसके मध्य भाग में बहुमूल्य रत्नों की वेदी पर एक विशाल शिवलिङ्ग स्थापित किया। वे पाद्य, अर्घ्य, स्नान, चन्दन आदि से उनकी पूरी सेवा करके सुन्दर सुवर्ण-पुष्पों से उनका शृंगार किया करते थे। तदनन्तर धूप, दीप आदि समर्पण कर उन्हें प्रसन्न करते और भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वादिष्ट पदार्थों का भोग लगाकर केवल उनके प्रसाद से अपने शरीर की रक्षा करते थे। अवशिष्ट समय में वे शिवजी के पवित्र नामों का स्मरण और कीर्तन करते थे।

इस प्रकार कुछ काल तक आराधना करने पर शिवजी प्रसन्न हुए और वृषभ पर सवार होकर कुवलयाश्व के सामने आये। उनके बगल में जगन्माता पार्वती विराजमान थीं और पीछे २ अनेक शिवगण चले आ रहे थे। उनके दर्शन कर राजा के उल्लास का ठिकाना नहीं रहा। वे उनके चरणों पर गिर कर स्तुति करने लगे।

उनकी स्तुति सुनकर शिवजी और भी प्रसन्न हुए और कहने लगे कि हे राजन्! मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ; तुम्हें जो वर माँगना हो, माँग लो। मैं तुमको इस समय दुर्लभ से दुर्लभ वस्तु भी दे सकता हूँ।

भगवान् के ऐसे उदार वचन सुनकर राजा कुवलयाश्व ने कहा कि हे महाराज! मुझे तो आपके दर्शनों ही से सब कुछ प्राप्त होगया। अब मुझे संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं दीखती, जिसके पाने की अभिलाषा रह गयी हो। हे भगवन्! यदि आप मुझे वर देना ही चाहते हैं तो मेरे द्वारा संस्थापित इस शिवलिङ्ग में आप सदा निवास करें। इससे मेरा तो कल्याण होगा ही, पर इसके साथ-साथ इस दुःखमय भवसागर की अनन्त, अपरिमित और दारुण तरङ्गों में वारम्वार डूबते और उतराते हुए जीवों का भी उद्धार होगा। हे करुणानिधे! इस पुण्य-कार्य से मुझे बड़ा सन्तोष होगा।

शिवजी ने राजा के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा कि हे प्रिय भक्त! मुझे तुम्हारी यह प्रार्थना बड़ी प्यारी लगी। मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। मैं प्रति वर्ष चैत्र शुक्ल चतुर्दशी को इस लिङ्ग में निवास किया करूँगा और मेरे साथ पार्वती भी रहा करेगी। इसमें लेश मात्र भी सन्देह न समझना। इस * चम-

* चमत्कारपुर (वृद्धनगर) वर्त्तमान वाडनगर Vadnagar B. B. & C. I. रेलवे लाइन पर है और महेसाना जंक्शन से जाना होता है। वहाँ हाटकेश्वर क्षेत्र के नाम से विख्यात एक उत्तम स्थान है।

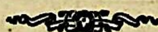
रकारपुर की बावली में स्नान करके जो मनुष्य मेरी पूजा करेगा, वह इस संसार में सब प्रकार के सुख भोगकर अन्त में मेरे लोक को जायगा।

इतना कहकर शिवजी तो अन्तर्धान होगये और राजा ने वहीं शिवजी की आराधना में अपना शेष जीवन बिता दिया। अन्त काल में वे इस पाञ्चभौतिक शरीर का परित्याग कर परम पद को प्राप्त होगये।

धुन्धुमारेश्वर महादेव की आराधना करने का माहात्म्य स्वयं महादेवजी ने अपने मुख से बताया है। स्कन्दपुराण में लिखा है कि:—

"चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां सान्निध्यं नृपसत्तम ।
अहं सदा करिष्यामि गौर्या सार्धं न संशयः ॥ १० ॥
तत्र वाप्यां नरः स्नात्वा यो मां सम्पूजयिष्यति ।
लिङ्गेऽस्मिन् संस्थितं भूप ! मम लोकं स यास्यति ॥ ११ ॥

(नागरखण्ड ३८ अ०)



अठहत्तरवाँ रत्न।

महाराज मान्धाता।

सूर्यवंश की १०वीं पीढ़ी इक्ष्वाकुवंश में 'युवनाश्व' नामक एक प्रतापी राजा हुए। उन्होंने अनेक यज्ञ किये, परन्तु कोई पुत्र न हुआ। इससे समस्त राज्य-भार अपने मन्त्रियों के अधिकार में सौंपकर वे तपस्या करने के लिए वन में चले गये। वहाँ फलाहारी बनकर संयम-नियम से तप करते २ कुछ काल बिताया।

एक बार प्यास से व्याकुल राजा इधर-उधर जल ढूँढ़ते हुए किसी ऋषि के आश्रम में जा पहुँचे। वहाँ इन्हीं राजा के पुत्र-कामना से अभिमंत्रित जल से भरा हुआ एक कलश रक्खा था। उसे राजा ने अनजान में पी लिया और एकान्त में जाकर सो रहे। इसी बीच ऋषियों ने कलश को खाली देखकर पूछा कि जल किसने पिया? युवनाश्व ने कहा—हे महात्मन्! प्यास से घबड़ा-कर मैंने ही उसे पी लिया है, क्षमा कीजिये। भार्गव भगवान् बोले—मंत्री द्वारा अभिमंत्रित यह कलश-जल आपकी पुत्र-प्राप्ति के निमित्त रखा गया था, उसके पीने से आपको सन्तान होगी। हे राजेन्द्र! मैंने कठिन तपस्या द्वारा आपके पुत्र होने के लिए यह उपाय किया था। अतः आपने अच्छा नहीं किया, जो जल पी लिया। अस्तु, अब आपको पुत्र अवश्य होगा और वह बड़ा पराक्रमी, अजेय तथा यशस्वी राजा होगा।

यथासमय राजा की बायीं कोख फाड़कर सूर्य के समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ और युवनाश्व की मृत्यु भी नहीं हुई। इन्द्रादि देवता उस बालक को देखने आये। देवताओं ने इन्द्र से पूछा—'यह बालक पीवेगा क्या? क्योंकि इसका जन्म माता के गर्भ से नहीं हुआ है।" इन्द्र बोले:— "मुझको पीवेगा।" ऐसा कहकर इन्द्र ने बालक के मुँह में अपनी तर्जनी अँगुली डाल दी और बालक प्रसन्न होकर उसी को पीने लगा। इसी कारण उसका नाम "मान्धाता" हुआ। उसके स्मरण मात्र से दिव्य शस्त्र उपस्थित हुए। देवताओं के सहित इन्द्र ने उसका अभिषेक किया। मान्धाता ने अपने जीवन में अनेक यज्ञ किये और अपने यज्ञबल से इन्द्र के आधे राज्य को प्राप्त करके दस करोड़ वर्ष तक राज्य किया।

एक समय उनके राज्य में बारह वर्ष तक अनावृष्टि हुई तो मान्धाता ने मेघों को बाणों से जीतकर वृष्टि करायी और भगवान् भूत-भावन की स्तुति की। राजा की स्तुति एवं सविधि लिङ्ग-पूजन से शंकरजी प्रसन्न होकर बोले- "हे सुव्रत! वरदान माँगो। तुम्हारे लिए मेरे पास कुछ भी अदेय नहीं है।" मान्धाता बोले- "हे देवेश! आप यदि मुझपर प्रसन्न हैं और वर देना चाहते हैं, तो हे देव-देव! यह 'वैदूर्य्य' नामक पर्वत मेरे (*मान्धाता के)

* मान्धाता टापू नर्मदा के उत्तर किनारे पर है। मोरतका Mortaka B. B. & C. I. रेल्वे से जाना होता है, वहाँ पर ओंकारेश्वर के मन्दिर में मान्धातेश्वर शिव हैं।

नाम से विख्यात हो और उसपर देवता लोग आकर निवास करें। आज से यहाँ पर दान, तप, पूजा-पाठ आदि जो किया जाय, वह शीघ्र ही सिद्ध हो और जो यहाँ प्राण परित्याग करे, वह सद्गति पाकर शिवधाम को जाय।" मान्धाता की प्रार्थना स्वीकार कर 'ॐकारेश्वर' भगवान्—"सर्व्वमेतन्नृपश्रेष्ठ ! मत्प्रसादाद्भविष्यति" ऐसा कहकर अन्तर्धान होगये।

"ॐ कारमादिदेवञ्च ये वै ध्यायन्ति नित्यशः।
न तेषां पुनरावृत्तिर्घोरे संसारसागरे ॥"

(रेवाखण्ड २८ अ०)

उन्नासीवाँ रत्न।

एक राजा (चमत्काराधीश)।

पुरातन समय में * चमत्कारपुर के पाराशर्य ब्राह्मण के घर में एक बालक हुआ, जिसका नाम विश्वरूप था। उसका पिता शैव था और वह नियमपूर्वक नर्मदेश्वर का पूजन किया करता

* चमत्कारपुर, आनर्त्तदेश में हाटकेश्वर तथा वर्तमान समय में वाडनगर Vadnagar नाम से प्रसिद्ध है और B. B. & C. I. रेलवे लाइन में पड़ता है।

था। एक समय मकर की संक्रान्ति को बालक ने चञ्चलता से खेल-खेल में शिवलिङ्ग को घी के घड़े में डाल दिया। प्रातःकाल होने पर उस ब्राह्मण ने शिवलिङ्ग को पूजास्थान पर न देखकर संदेहवश उस बालक से पूछा कि पुत्र! तुमने शिवलिङ्ग को कहीं फेंका हो तो बताओ, मैं तुम्हें उत्तम मिठाई दूंगा। मिष्ठान्न के लालच से पुत्र ने शिवलिङ्ग को शीघ्र ही घड़े में से निकालकर पिता के हाथ में रख दिया। इसके अनन्तर वह मृत्यु को प्राप्त हुआ और उस अज्ञात शिव-पूजन के प्रभाव से उसका राजकुल में जन्म हुआ। इस जन्म में भी वह चमत्कारपुर में शिवजी की स्थापना कर पूजन किया करता था। पूर्वसंस्कारवश सूर्य की मकर-संक्रान्ति में वह शिवजी को घृत से स्नान कराता था। पुत्र के योग्य होने पर राजा पुत्र को राज्य पर बैठाकर सेवकों (कर्मचारियों) को सब काम पर नियुक्त करके चमत्कारपुर में अपने स्थापित शिवजी का निरन्तर आराधन करने लगा। उसके उपरान्त बहुत समय के बाद भगवान् शिवजी प्रसन्न हुए और राजा के समीप आकर बोले—"हे राजेन्द्र! तुम्हारे घृतस्नान कराने से मैं अति प्रसन्न हूँ, तुम्हारा कल्याण होवे। जो तुम्हारे मन में हो, वह वर माँगो। यदि वह अतिशय दुर्लभ भी होगा तो मैं तुमको दूँगा।"

राजा बोला—"प्रभो! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों तो

हे देव ! आप मुझको अपना गण बना लीजिये, और मैं कुछ नहीं माँगता।"

भगवान् शिवजी बोले-"हे महाभाग ! आज ही तुम मेरे साथ इसी शरीर से कैलास को चलो और मेरे गण होओ। सूर्यनारायण की मकर-संक्रान्ति में निशामुख (प्रदोष) के समय जो भी मनुष्य मेरे लिए घृत और कम्बल का दान देगा वह मेरा गण होगा:—

"मकरस्थे रवौ मह्यं संक्रान्तौ रजनीमुखे।
स नूनं मद्गणो भावी दत्त्वाद्य घृतकम्बलम् ॥७५॥"



अस्सीवाँ रत्न।

महाराज भगीरथ।

महाराज सगर के साठ हजार पुत्र कपिल की क्रोधाग्नि से भस्म होगये। बहुत दिना बाद सगर के वंश में समुत्पन्न भगीरथ ने * गोकर्ण तीर्थ में एक हजार वर्ष तक कठिन

* कारवार के बन्दरगाह से ४० मील की दूरी पर समुद्र के किनारे कुमटा नामक कसबे में गोकर्ण शिव हैं।

तपस्या कर ब्रह्माजी को प्रसन्न किया। वे प्रसन्न होकर वर देने के लिए भगीरथ के पास आये और भगीरथ से वर माँगने के लिए कहने लगे।

भगीरथ ने हाथ जोड़कर कहा कि मेरे पूर्वज इस समय न जाने किस दशा में पड़े हैं, उनका उद्धार करना मेरा परम कर्तव्य है। हे देव ! आप ऐसा प्रयत्न कीजिये कि गङ्गाजी इस पृथ्वी में आकर अपने पावन जल से मेरे पूर्वजों का उद्धार करें।

ब्रह्माजी ने कहा कि मैं गङ्गाजी को तो कह सुनकर भूलोक में भेज दूँगा, पर उनके प्रवाह को रोकने की शक्ति पृथ्वी में नहीं है। इसके लिए शिवजी जब तक कृपा नहीं करेंगे तब तक काम सिद्ध नहीं होगा। वे ही गङ्गाजी के प्रवाह के वेग को सहन कर सकते हैं। इस लिए हे भगीरथ! तुम उनकी आराधना करो।

ब्रह्माजी के उपदेश के अनुसार भगीरथ ने शिवजी की आराधना प्रारम्भ कर दी। वे अन्न-जल का परित्यागकर पैर के एक अँगूठे पर खड़े होकर एक वर्ष तक भगवान् शङ्कर का ध्यान करते रहे। उनकी अनन्यमनस्कता से प्रसन्न होकर भगवान् उमापति प्रकट हुए और कहने लगे कि हे भक्त! मैं तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हूँ और तुम्हारी कामनापूर्ति करने आया हूँ। मैं गङ्गा को अपनी जटा में रोककर तुम्हारा प्रिय कार्य करूँगा।

गङ्गाजी को अपने वेग का बड़ा गर्व था। इससे उन्होंने शिवजी को बहाती हुई पाताल में प्रवेश कर जाने का निश्चय किया और विशाल रूप धारणकर बड़े दुःसह वेग से शिवजी के मस्तक पर टूट पड़ीं।

शिवजी को उनके अभिमान का पता लग गया। इस लिए उन्हाने गङ्गाजी को अपने जटाजूट में ही बाँध रखने का निश्चय कर लिया। गङ्गाजी पूरे वेग से शिवजी की जटा पर गिरीं और उसी में समा गयीं। उन्होंने बड़ा प्रयत्न किया कि किसी प्रकार पृथ्वी पर उतर जायँ, पर किसी तरह जटामण्डल से नहीं निकल सकीं। वहीं पर वे कई वर्षों तक चक्कर लगाती रहीं।

भगीरथ को इस बात से बड़ा दुःख हुआ और वे पुनः शिवजी की आराधना करने लगे। शिवजी ने भगीरथ की प्रार्थना पर गङ्गा को अपनी जटा से मुक्त कर दिया। उस समय गङ्गा के सात सोते होगये। ह्लादिनी, पावनी और नलिनी नाम की तीन धाराएँ पूर्व दिशा की ओर बह पड़ीं। सुचक्षु, सीता और सिन्धु नाम की तीन धाराएँ पश्चिम दिशा को निकल चलीं। उनमें से सातवीं धारा भगीरथ के रथ के पीछे चली। सुन्दर रथ पर बैठे हुए भगीरथ आगे-आगे जा रहे थे, पीछे-पीछे भागीरथी गङ्गा जा रहीं थीं। उस धारा के साथ-साथ अनेक मत्स्य, कच्छप आदि जल-जन्तु भी आये और भूलोक की शोभा बढ़ाने लगे।

अनेक देवर्षि, गन्धर्व, यक्ष, सिद्ध आदि इस अद्भुत दृश्य को देखकर मुग्ध होगये। देवता लोग भी आकर इस गंगावतरण के दृश्य को देखने लगे। सब लोग उस जल को शिवजी के अंग से निकलते देखकर बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ उसका स्पर्श करते थे। गंगा की वह धारा भूलोक के प्राणियों का उद्धार करती हुई रसातल तक चली गयी और वहाँ पहुँचकर उसने भगीरथ के भस्मीभूत पितामहों का उद्धार कर दिया।

(वाल्मीकि-रामायण बा० कां ४२ सर्ग)



इक्यासीवाँ रत्न।

राजर्षि ययाति।

राजा ययाति ने चिरकाल तक आनन्दपूर्वक राज्य किया। प्रजा की भलाई और उन्नति करना ही उनका एक मात्र व्रत था। उनके राज्य में अन्याय का कहीं नाम भी नहीं सुनायी देता था। प्रजा-जन को वे अपने पुत्र के समान समझते थे और उनके पालन-पोषण का पूरा प्रयत्न और प्रबन्ध करते थे। उनके राज्य में शेर और बकरी एक घाट पानी पीते थे। प्रजा

सब प्रकार से सुखी थी। अतिवृष्टि आदि ईतियाँ केवल पुस्तकों में लिखी दिखायी देती थीं। आधि-व्याधि से उनके राज्य में किसी को कष्ट हो सकता है, इसका किसी को अनुभव भी नहीं था।

चिर काल तक राज्य का पूर्ण सुख भोगकर उन्होंने अपना राज्य अपने परम प्रतापी और चतुर पुत्र को सौंप दिया और स्वयं अपनी देवयानी और शर्मिष्ठा नाम की दोनों पटरानियों के साथ तपस्या करने के लिए एक पवित्र तीर्थ खोजने लगे। उन्होंने बड़ी नम्रता के साथ श्रीमार्कण्डेय ऋषि से पूछा कि हे महाराज! आप सर्वज्ञ हैं, आपको इस लोक और परलोक की सभी बातें अच्छी प्रकार ज्ञात हैं। हे महाराज! मुझे यह बताइये कि सब तीर्थों में प्रधान तीर्थ कौन सा है और मुझे किस तीर्थ में जाकर तपस्या करनी चाहिए?

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा कि हे राजन्! इस समय तो चमत्कारपुर नाम का तीर्थ सब तीर्थों का निवास है। वहाँ पर स्वयं विष्णुपदी गंगा बहती हैं और सब प्राणियों के पापों को नाश करने के लिए विराजमान हैं। शिव, विष्णु, ब्रह्मा आदि सभी देवता उसमें नित्य निवास करते हैं। दूसरे स्थान में वर्ष भर पुण्यकर्म करने से जितना फल होता है, उतना ही पुण्य इस तीर्थ में एक दिन पुण्य-धर्म करने से होता है। इस लिए हे धर्मात्मन्! तुम वहाँ जाकर अनन्य मन से आराधना करो। तुम्हें अनायास सिद्धि प्राप्त होगी।

* हे राजन्! जो एक दिन भर भी शिवजी के ध्यान और शिवधर्म में परायण होते हैं, उनके धर्म का अन्त नहीं है।

महर्षि के ऐसे वचन सुनकर परम श्रद्धा युक्त राजा अपनी दोनों धर्मपत्नियों को अपने साथ लेकर परम पावन क्षेत्र चमत्कारपुर में गये और वहाँ देव-देव भगवान् शङ्कर का शुभ शिवलिङ्ग स्थापित कर अच्छी प्रकार से आराधना करने लगे।

वहाँ वे षोडश उपचारों से नित्य भगवान् की पूजा करते और एक पैर पर खड़े होकर निश्चल चित्त से बहुत देर तक उनकी स्तुति करते रहते थे। भगवान् का ध्यान तो वे उठते-बैठते सोते-जागते सदैव करते रहते थे।

इस प्रकार चिर काल तक तपस्या और भगवान् आशुतोष की आराधना करते-करते उनका पवित्र शरीर और भी पवित्र होगया और अन्त काल में सुन्दर विमान पर आरूढ़ होकर स्वर्ग को चले गये।

उस शिवलिङ्ग का नाम ययातीश्वर होगया। ययातीश्वर के दर्शन करने ही से मनुष्य के सब पाप उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जिस प्रकार अग्नि-कण से तूल-राशि भस्म हो जाती है। वहाँ पर मनुष्यों को अवश्यमेव शुभ कर्म करने चाहिएँ।

---

† अप्येकदिवसं यावच्छिवध्यानपरायणः।
शिवधर्मपरस्तस्य धर्मस्यान्तो न विद्यते ॥ ४९ ॥
(रे० ख० अ० ५९)

क्योंकि थोड़े ही परिश्रम से वहाँ अनन्त सिद्धि प्राप्त होती है। स्कन्दपुराण में लिखा है:—

"यदन्यत्र शुभं कर्म वर्षेणैकेन सिद्धयति ।
तत्तत्र दिवसेनैव सिद्धिं याति क्षितीश्वर ॥ १० ॥
पवित्राणि च तीर्थानि यानि सन्ति धरातले ।
तेषामत्र च सान्निध्यं सर्वदा नृपसत्तम ! ॥ ११ ॥

(नागरखण्ड ३८ अ०)

बयासीवाँ रत्न ।

शिव-भक्त राजा धर्मसेनजी ।

पूर्वकाल में ※ अयोध्या में शिवभक्त राजा धर्मसेनजी हो-गये हैं। उन्होंने धर्मपूर्वक राज्य किया था। इस कारण उनका नाम धर्मसेन हुआ। एक समय श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा वे धर्म-शास्त्र सुन रहे थे। प्रसंगवश उन्होंने नर्मदा के चरित सुनकर मेघनादेश्वर शिव का चरित सुन लिया इससे वे नर्मदा के उत्तर तटपर जाकर श्रद्धापूर्वक नर्मदा में स्नान और पूजन करके

※ अयोध्या Ajodhya E. I. R. में है और लकड़मंडी होकर Lakarmandi B. N. W. रेलवे से भी लोग जाते हैं।

घोड़े पर सवार होकर उत्तर दिशा की तरफ से गोष्ठेश्वर महादेव को चले गये। उनका भी विधिवत् पूजनकर के वागीश्वर गये। वहाँ भी विधिपूर्वक स्नान, चन्दन, अगर, कपूर, धूप और दीपादि सामग्रियों से शिव का पूजन-कर घोड़े पर सवार हो काकड़ेश्वर आये। उनका पूजन करने के अनन्तर नर्मदा के जल में स्नान किया। फिर लक्षेश्वर का विधिपूर्वक पूजनकर मेघनादेश्वर को वापस आये। वहाँ सूर्य अस्त होगये इसलिए शिव-ध्यान-परायण होकर राजा ने वहाँ ही निवास किया। कुछ देर बाद राजा ने देखा कि जो घोड़ा उनकी सवारी में था, वह दिव्य देह धरे हुए इन्द्र के विमान में बैठकर इन्द्रपुरी को जारहा है। राजा धर्मसेन ने उस घोड़े से कहा—यह क्या है?

आकाश में विद्यमान घोड़ा बोला—*हे नृप! आप खेद को क्यों प्राप्त होते हैं? अपने शरीर के कष्ट से जो तप होता है उसी से भगवत्प्राप्ति होती है। इससे आप अब अपने पाँव से चलकर यात्रा करें। अभी तो और के पाँवो से आये थे। यदि फिर आप यात्रा करेंगे तो सिद्धि को पावेंगे। उसके वचन को सुनकर राजा फिर दूसरे दिन लिङ्गपूजन के लिए

* उवाचाकाशगो वाचं कथन्त्वं खिद्यसे नृप।
शारीरजेन कष्टेन तपःसाध्या विभूतयः॥
पादचारी हि गच्छ त्वं परपादैर्गतो ह्यसि॥ २८॥

गये और पाँचों लिङ्गों का अच्छी प्रकार पूजन करके मेघनादेश्वर का दर्शन किया। उस समय दरवाजे पर ही उन्हें महादेवजी का प्रत्यक्ष दर्शन मिला। जिनके पाँच मुख, दश भुजाएँ, तीन नेत्र थे और हाथ में त्रिशूल था। वे बैल पर सवार थे और चन्द्रमा का मुकुट धारण किये थे, इन्द्रादि सब देवताओं के स्वामी ऐसे परमेश्वर महादेवजी का दर्शन करके राजा इस प्रकार स्तुति करने लगे—

जय देव महादेव महापातकनाशन ।
संसारसागरे मग्नं मां समुद्धर साम्प्रतम् ॥३३॥

हे देव! पापों के नाश करनेवाले हे महादेव! आपकी जय हो। इस संसार-समुद्र में डूबे हुए मुझ दीन का आप उद्धार करें।

वरं वृणु महाभाग यत्ते मनसि वर्तते ।
तद्ददामि न सन्देहः शिवभक्तोऽसि पुत्रक ॥

महादेवजी बोले—हे महाभाग! यथेच्छ वर माँगो। उसको मैं तुम्हें दूँगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। क्योंकि तुम मेरे भक्त हो।

तब राजा ने कहा—हे देव! यदि आप मुझपर प्रसन्न हों तो आप मेरी सेवा को स्वीकार करें। जो मनुष्य रात-दिन में पाँचों लिंगों का पूजन करे, वह प्राणी आपका अनुचर होजाय।

धर्मसेनका वचन सुनकर 'ऐसा ही हो' इस प्रकार कहकर और उन राजा को साथ लेकर शिवजी कैलास को चले गये और शिवजाने राजा धर्मसेन को अपने शरीर में मिला लिया। इस इतिहास को सुनने से व दूसरों को सुनाने से अश्व-मेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है।

तं गृहीत्वा तु राजानं कैलासं स जगाम ह ।
स्वदेहस्थं चकारासौ धर्म्मसेनं नृपं नृप ॥३७॥
श्रवणात्कीर्तनादस्य अश्वमेधफलं लभेत् ॥३८॥

(रे० खं० अ० ८१)



तिरासीवाँ रत्न।

महाराज दशरथजी।

सूर्यवंश के भूषणस्वरूप महाराज दशरथ के जब तीन पन बीत चुके और उनके राज्य का उत्तराधिकारी कोई पुत्र नहीं उत्पन्न हुआ। तब पुत्र के निमित्त * प्रभास-क्षेत्र में जाकर भगवान् शंकर का ध्यान-पूजन करते हुए उन्होंने बहुत दिनों तक

* जूनागढ़ राज्य में विरोवाल वन्दर और बिटौल रेलवे स्टेशन है। यहाँ पर प्रभासक्षेत्र है।

कठिन तप किया। वहाँ पर 'दशरथेश्वर' नामक लिङ्ग की स्थापना करके वे नित्य उनकी स्तुति करने लगे। थोड़े दिनों में भगवान् शंकर प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष हुए और बोले—"हे राजन्! मैं तुम-पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ मनोवाञ्छित वरदान माँगो?" महाराज दशरथ ने विनयपूर्वक कहा—"हे सुरेश्वर! मैं अपने राज्य के उत्तराधिकारी पुत्र के न होने से अधिक दुःखी हूँ। इस लिए आप यदि प्रसन्न हैं तो मुझे यशस्वी पुत्र प्रदान करें।" भगवान् ने कहा—"हे महाभाग! शीघ्र ही तुम्हारे घर त्रैलोक्यविजयी मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम का अवतार होगा। अतएव तुम अपनी राजधानी में चले जाओ।"

शिवजी की आज्ञानुसार महाराज दशरथजी अयोध्यापुरी में आकर फिर राज-काज सँभालने लगे। यथासमय राज-महिषी ने श्रीराम को उत्पन्न किया। जिनका यशोगान आदि-कवि महर्षि वाल्मीकि ने किया है। जिस शिवलिङ्ग के प्रभाव से राजा के गृह में साक्षात् श्रीरामचन्द्रजी ने अवतार धारण किया, भूर्भुवःस्वर्लोक के निवासी व देवता, दैत्य तथा वाल्मीकि आदि महर्षि जिनका यश गाते हैं, उनके दर्शन-पूजन से आज भी मनुष्य वैसा ही फल पाता है। शिवजी के प्रभाव से ही राजा ने बड़े भारी यश को पाया था। जो प्राणी कार्तिक महीने में कार्त्तिकी पौर्णमासी को विधि से उन शिवजी को दीपदान देता और उपहारों से पूजता है, वह यशस्वी होता है।

"तेन लिङ्गप्रभावेण प्राप्तं राज्ञा महद्यशः ।
कार्त्तिक्यां कार्तिके मासे विधिना यस्तमर्चयेत् ॥
दीपपूजोपहारेण यशस्वी सोऽभिजायते ॥ ७ ॥"
(प्रभासखण्ड १६४ अ०)

चौरासीवाँ रत्न ।

ध्रुवजी ।

प्राचीन काल में उत्तानपाद नाम के एक बड़े प्रतापी राजा होगये हैं। उनके पुत्र ध्रुवजी अपने पिता से भी अधिक प्रभावशाली एवं तेजस्वी हुए। उन्होंने पाँच वर्ष की अवस्था में छः महीने तक घोर तप करके भगवान् विष्णु को प्रसन्न किया और उस ध्रुवपद को पहुँचे, जिसका कभी भी विनाश नहीं हो सकता। चिर काल से सम्पूर्ण ग्रह उनकी परिक्रमा करते आये हैं और अनन्त काल तक इसी प्रकार उनकी परिक्रमा करते रहेंगे।

वे बड़े महात्मा एवं ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न थे। उनके सुचारु शासन से प्रजा परम सन्तुष्ट थी। उनके दर्शनों ही से चित्त प्रसन्न होजाता और सांसारिक चिन्ताएँ निवृत्त हो जाती थीं।

चिर काल तक राज्य का प्रबन्ध करते-करते उनके मन में एक बार तीर्थयात्रा करने की अभिलाषा हुई। प्रभासक्षेत्र का माहात्म्य सुनकर वे वहीं गये और उन्होंने भगवान् शङ्कर को प्रसन्न करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। वहाँ उन्होंने अपने नाम पर ध्रुवेश्वर नामक एक शिवलिङ्ग स्थापित किया और उनकी आराधना करने लगे—

वे प्रतिदिन प्रातःकाल वन में जाकर सुन्दर सुगन्धित कमल, मन्दार, धतूर आदि के कुसुम चुन-चुन कर ले आते और भगवान् शङ्कर को एक-एक फूल बड़े प्रेम से चढ़ाते थे। तदनन्तर वन से लाये हुए सुस्वादु कन्द, मूल और फल भगवान् को समर्पण करते थे। अन्त में वे प्रेममग्न होकर प्रेमाश्रु बहाते हुए नये-नये स्तोत्रों से शङ्कर भगवान् की स्तुति करते थे।

इस प्रकार आराधना करते-करते उनका बहुत समय व्यतीत होगया। एक दिन वे षोडशोपचार से पूजा करने के अनन्तर हाथ जोड़कर अधोलिखित स्तोत्र से स्तुति करने लगे—

(ध्रुव उवाच)

नमस्ते वै महेशाय सर्वकारणहेतवे।
सेतवे भवघोराब्धेर्ध्यानगम्याय योगिने ॥ १ ॥

यः सिद्धचारणनिषेवितचारुतोयां
गङ्गामहोर्मिविषमाङ्गगनात्पतन्तीम् ।
मूर्ध्ना दधौ स्रजमिव प्रविलोलपुष्पां
तं शंकरं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ २ ॥
येनासकृद्दितिसुताश्च दनोः सुताश्च
विद्याधरोरगगणा ह्यवनौ समग्राः ।
संयोजिता ननु पदे फलमूलभक्ता-
स्तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ ३ ॥
यस्याखिलं जगदिदं वशवर्त्ति नित्यं
योऽष्टाभिरेव तनुभिर्भुवनानि भुंक्ते ।
यः कारणं परमकारणकारणानां
तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ ४ ॥
यस्सव्यपाणिकमलाग्रनखेन देवः
तत्पञ्चमं प्रसभमेव पुरा वसानः ।
ब्राह्मय शिरस्तरुणपद्मनिभं चकर्त
तं शङ्करं० ॥ ५ ॥
यस्य प्रणम्य चरणौ वरदस्य भक्त्या
स्तुत्वा च वाग्भिरमृताभिरनिन्दितात्मा ।

दीप्त्या तमांसि नुदति स्वकरैर्विवस्वं-

स्तं शङ्करं० ॥ ६ ॥

ध्रुवजी बोले कि सब कारणों के कारणरूप आपके लिये प्रणाम है। भयंकर भवसागर के पुल तथा ध्यान से प्राप्त होने योग्य आप जैसे योगी के लिये प्रणाम है। सिद्ध-चारणों से सेवित पवित्र जलवाली तथा बड़ी भारी लहरियों से विषम और आकाश से गिरती हुई श्रीगंगाजी को जिन्होंने चंचल पुष्पोंवाली माला के समान मस्तक में धारण किया है, मैं उन शरणदायक शंकरजी की शरण में प्राप्त होता हूँ। जिनसे पृथ्वी में दिति के पुत्र व दनु के पुत्र और विद्याधर व नागगण तथा फल-मूलों के भक्षण करनेवाले ऋषि उत्पन्न हुए हैं, मैं उन शरणदायक शंकरजी की शरण में प्राप्त होता हूँ। यह सब संसार जिनके वश में वर्तमान है और जो आठ शरीरों से सदैव सब लोकों को भोगते हैं, जो परम कारणों के कारण हैं (यः कारणं परमकारणकारणानां) मैं उन शरणदायक शंकरजी की शरण में प्राप्त होता हूँ। जिन त्रिपुरनाशक शिवजी ने बायें हस्त-कमल के नखाग्रभाग से प्रफुल्लित कमल के समान ब्रह्मा के पाँचवें मस्तक को काट डाला था, मैं उन शरणदायक शंकरजी की शरण में प्राप्त होता हूँ। जिन वरदायक शिवजी के चरणों को भक्ति से प्रणाम करके और निर्मल वाणियों से स्तुति करके सूर्यनारायणजी अपनी किरणों के प्रकाश से अन्धकार को दूर करते हैं, मैं उन शरणदायक

शंकरजी की शरण में प्राप्त होता हूँ। सावधान चित्त से जो मनुष्य ध्रुव से किये इन सुन्दर अर्थ युक्त स्तोत्र को पढ़ता है, वह मोह को नहीं प्राप्त होता और सदैव पवित्र सिद्धि को पाकर शिवलोक को जाता है।

इस स्तोत्र से शङ्कर भगवान् अत्यन्त सन्तुष्ट होगये और उनके आश्रम में वर देने के निमित्त पधारे। आते ही उन्होंने ध्रुव से कहा कि हे प्रिय भक्त! तुम्हारी इस दारुण तपस्या से और विशेष कर इस स्तुति से मैं परम प्रसन्न होगया हूँ। इस स्तोत्र से जो मनुष्य मेरी स्तुति करेगा, वह इस लोक में सब प्रकार के सुख भोगकर अन्त में शिवलोक को प्राप्त होगा। हे वत्स! मैं तुमको दिव्य दृष्टि देता हूँ, जिससे तुम मेरे दर्शन कर सकोगे।

इतना वचन कहते ही ध्रुव की दिव्य दृष्टि होगयी और सामने जटाजूटधारी नागहारविभूषित भगवान् शङ्कर की सुरम्य एवं परम दीप्तिमयी मूर्त्ति दिखायी पड़ी। उनका प्रसन्न मुख-कमल देखकर ध्रुवजी का चिरकाल की दारुण तपस्या से समुत्पन्न खेद क्षण भर में विलीन होगया और आह्लाद से चित्त प्रफुल्लित हो उठा। वे द्विगुणित प्रेम से उनकी स्तुति करने लगे और चरणों में गिर पड़े।

इससे महादेवजी और भी अधिक प्रसन्न हुए और कहने लगे कि हे भक्तशिरोमणे! तुम्हारे मन में जो अभिलाषा हो, प्रकट करो। मैं तुम्हें सब कुछ दे सकता हूँ।

ध्रुवजी ने कहा कि हे महाराज ! मुझे न तो ब्रह्मपद चाहिए और न विष्णुपद, इन्द्रलोक की भी मुझे लेश मात्र अभिलाषा नहीं है। क्योंकि इन सब लोकों में जाकर फिर जन्म-मरण का अनन्त दुःख भोगना पड़ेगा। हे करुणावरुणालय ! आप कृपा-कर मुझे अपनी अटल भक्ति दीजिये जिससे भुक्ति तथा मुक्ति अनायास मिल जाती है और आप संसार के उपकार के लिए इसी लिङ्ग में विराजमान होजाइए।

शिवजी ने प्रसन्नतापूर्वक उनकी कामनापूर्ति कर दी और शिवलोक को चले गये। ध्रुवजी उस लिङ्ग की समारा-धना करके वहाँ से विदा हुए और अपनी राजधानी में जाकर भगवान् की आराधना करते हुए राज्य का अनुपम सुख भोगने लगे।

ध्रुवेश्वर की आराधना करने से मनुष्य की सब कामनाएँ पूर्ण होजाती हैं।

श्रावण की अमावास्या तथा आश्विन की पूर्णमासी के दिन इनकी पूजा करने से एक अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है। पुत्रार्थी पुत्र पाता और धनार्थी धन पाता है। सौन्दर्य और सौभाग्य की वृद्धि होती है। सब शास्त्रों का पाण्डित्य प्राप्त होता है। उक्त तिथि को शिव की आराधना करनेवाला प्राणी सांसारिक सभी सुखों को भोगकर अन्त में हंस युक्त विमान पर चढ़कर रुद्रलोक को चला जाता है। स्कन्दपुराण में ध्रुवेश्वर महादेव का माहात्म्य इस प्रकार लिखा है:—

"श्रावणस्य शुभामायां यस्तल्लिङ्गं प्रपूजयेत् ।
आश्वयुक् पौर्णमास्यां वा सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥२॥
अपुत्रो लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ।
रूपवान् सुभगो भोगी सर्वशास्त्रविशारदः ॥ २१ ॥
हंसयुक्तविमानेन रुद्रलोके महीयते ॥"

(प्रभासखण्ड प्र० क्षे० मा० १२८ अ०)



पचासीवाँ रत्न।

शिव-भक्त सुधर्मा और तारक।

किसी समय काश्मीर में भद्रसेन नाम का एक श्रेष्ठ राजा हुआ था। जिसके पुत्र का नाम सुधर्मा और मन्त्री के पुत्र नाम तारक था। राजकुमार तथा मन्त्रिकुमार में बड़ा स्नेह था। वे दोनों एक से एक सुन्दर सुशील तथा गुणी थे। पढ़ने-लिखने, खेलने-कूदने एवं खाने पीने में सर्वत्र उन दोनों का सहयोग रहता था। वे शैव थे, अतः दोनों को रुद्राक्ष की माला और भस्म से बड़ा प्रेम था। स्वर्ण या रत्न के हार का परित्याग करके वे दोनों रुद्राक्ष की माला ही धारण करते थे।

एक बार महर्षि पराशरजी भद्रसेन राजा की राजधानी में पहुँचे। उस समय राजा ने इनका विधिवत् स्वागत करके ऊँचे आसन पर बैठाया और विनयपूर्वक निवेदन किया कि हे मुनि-वर! हमारे राजकुमार और मन्त्रिकुमार दोनों नित्य भस्म तथा रुद्राक्ष की माला आदरपूर्वक धारण करते हैं, परन्तु आग्रह करने पर भी (किसी ने इनको सिखलाया भी नहीं) रत्नों की माला नहीं धारण करते। न जाने इनकी यह प्रवृत्ति कैसे होगयो है। आप त्रिकालज्ञ हैं, इस लिए कृपा करके मेरी यह जिज्ञासा पूरी कीजिये। यह सुनकर पराशर मुनि बोलेः—"हे महाराज! आपके मन्त्रिपुत्र तथा राजकुमार के पूर्वजन्म का वृत्तान्त आश्चर्य जनक है, सुनिये—

"इसके पूर्वकाल में नन्दिग्राम में महानन्दा नाम की एक प्रसिद्ध वेश्या रहती थी। जिसकी सजावट की सामग्रियों को कोई संख्या नहीं थी। वह सदा रत्न जटित विविध आभूषणों से विभूषित रहा करती और सिद्ध महात्माओं के मन को भी सहज ही में मोह लिया करती थी; साथ ही वह शिव की अनन्य सेविका (भक्त) भी थी, विना पूजन किये अन्न-ग्रहण नहीं करती। वह शिव-भक्ति में उन्मत्त रहकर वानर और मुर्गे को नचाया करती थी। शायद इस काम को नृत्यकला-प्रवर्त्तक नटराज शिवजी की प्रसन्नता के लिए ही करती हो। वह वानर और मुर्गे को भी रुद्राक्ष पहनाती। वानर के सभी भूषण रुद्राक्ष के बने हुए थे और मुर्गे के पैरों तथा गले में भी उसीकी

मनिया शोभा दे रही थी। हे राजन्! वही वानर इस जन्म में तुम्हारा पुत्र और वह मुर्गा मंत्रिपुत्र होकर आया है। इसी लिए शरीरान्तर होने पर भी उनका वह संस्कार बना हुआ है। अब वे इस जन्म के बाद पुनः संसार में न आवगे। इस रुद्राक्ष के धारण करने एवं पूजा-ध्यान के प्रभाव से वे दोनों आवागमन से रहित होकर शिवजी के उत्तम धाम कैलासपुरी को जायँगे।"

ऐसा सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुए और स्वयं भी उन्हीं परमेश्वर महादेव का भजन करने लगे। अन्त में उनके सभी बन्धु-बान्धव शिवधाम में जाकर मुक्त होगये।

"पूर्वाऽभ्यासेन रुद्राक्षान् दधाते शुद्धमानसौ।
अस्मिञ्जगति तं लोकं शिवं सम्पूज्य यास्यतः॥"

(ब्राह्मो॰ खं॰)

छियासीवाँ रत्न।

एक राजकुमार बालक (धर्मगुप्त)।

*विदर्भ नगर में सत्यरथ नामक एक शैव राजा धर्मपूर्वक राज्य कर रहे थे। वे बड़े धर्मात्मा, सत्यवादी तथा

*विदर्भनगर (कुण्डिनपुर) नागपुर C. P. B. N. रेलवे में है।

पराक्रमी राजा थे। एक दिन महाराज सत्यरथ शिवजी का पूजन कर रहे थे, उसी समय सैन्य समेत शल्य राजा ने वहाँ आकर युद्ध करने की चुनौती दी। दोनों में द्वन्द्व युद्ध हुआ। महाराज सत्यरथ हार गये और शत्रु द्वारा मारे गये। सत्यरथ की सेना भयभीत होकर भाग गयी। मंत्री लोग भी जान लेकर इधर-उधर भाग गये। उस संकटापन्न समय में महाराज सत्यरथ की गर्भवती महारानी बेचारी शोकसन्तप्तमना होकर शत्रुओं के भय से रातो रात अन्तःपुर से अकेली भागकर किसी घोर वन में जा पहुँची और मन में श्रीशंकरजी का ध्यान करती हुई रात बिताकर प्रातःकाल होते ही एक सुन्दर सरोवर के तटपर पहुँची। वहाँ छातेदार वृक्ष-लताओं के प्राकृतिक कुञ्ज में निवास करती हुई रानी का कुछ समय किसी प्रकार बीत गया। यथाकाल उसके गर्भ से एक तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। उस समय उसके भाग्यवान् होने के अनेक लक्षण दीख रहे थे, परन्तु पुत्रजन्म के थोड़ी ही देर बाद रानी बालक को वहीं छोड़कर जल पीने की इच्छा से उस सरोवर में गयी। ज्यों ही जल पीने लगी त्यों ही कालरूपी मगर ने उसे पकड़ लिया और उस नवजात शिशु को सर्वदा के लिये अनाथ कर दिया।

इधर वह बालक पृथ्वी पर पड़ा २ रो रहा था। उस निर्जन वन में उस बालक का कोई दूसरा सहायक न था। हाय, 'दैवो दुर्बलघातकः'! इस बालक का रुदन सुनकर उस

वन के पशु-पक्षी भी मन ही मन प्रारब्ध को धिक्कार रहे थे। इसी बीच अन्तर्यामी दयालु भगवान् शंकरजी की प्रेरणा से वहाँ एक भिक्षुकी अपने एक वर्ष के जन्मे हुए बालक को लिये आ पहुँची। उस अनाथ बालक को देख एवं नवजात जान-कर मारे करुणा के वह कुछ सोचने और मन ही मन अपने मन्द भाग्य को धिक्कारती हुई उस तेजस्वी बालक को उठाने की चेष्टा करने लगी। वह सोचती थी कि मैं स्वयं भिक्षा माँगकर किसी प्रकार अपना जीवन निर्वाह कर पाती हूँ। तिस पर मेरे एक वर्ष का बच्चा है भी। अब इस अनाथ बालक का पालन कैसे करूँगी, इसे अकेला छोड़ने पर भी पातक लगता है। क्या करूँ ? धर्म का निर्वाह कैसे हो ? ऐसी परिस्थिति में जब इसका नाल-छेदन भी नहीं हुआ है, जातकर्म संस्कार द्वारा इसके पालन में बड़ा पुण्य होगा, परन्तु मेरी जैसी दीना दुर्भगा का यह काम नहीं है। ऐसे तेजस्वी, राजसदन में पालने योग्य बालक की रक्षा मैं कैसे कर सकूँगी। इस तरह नाना प्रकार की कल्पनाएँ उसके हृदय को डाँवाडोल कर रही थीं। उसी समय अत्यन्त दयालु, दीनों पर दया करनेवाले, शरणागतवत्सल भगवान् शिवजी एक भिक्षुक के वेष में वहाँ आ पहुँचे और हँसते हुए भिक्षुकी से बोले—"हे ब्राह्मणी ! तुम अपने मन में किसी प्रकार का सन्देह न करो, मानसिक कल्पनाओं को छोड़कर इस बालक को अपने साथ ले जाओ और अपने पुत्र के समान इसका भी

लालन पालन करो। इसी बालक के द्वारा अन्त में तुम्हारा कल्याण होगा।"

उक्त भिक्षुक-वेषधारी शिवजी के वचन पर श्रद्धा एवं विश्वास करके वह उसे अपने घर लायी और प्रेमपूर्वक पालन करने लगी। एक दिन वह भिक्षा माँगती हुई दैवयोग से देवालय में चली गयी. वहाँ उस ब्राह्मणी को दोनों बालकों सहित देखकर शाण्डिल्य मुनि ने कहा—"अहो! भाग्य का बल विचित्र है, क्योंकि अन्य माता के अंक में आश्रित होकर यह बालक भिक्षा से जीता है।" शाण्डिल्य मुनि के वचन को सुनकर स्त्री ने प्रणाम कर कहा कि "हे ब्रह्मन्! मैं एक भिक्षुक के वचन से इस बालक को घर लायी हूँ। अब आप कृपया यह बताइए कि यह बालक कौन है?"

ऋषि बोले—"हे ब्राह्मणपत्नी! इस बालक का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—इसका पिता विदर्भ-नरेश शत्रुओं द्वारा युद्ध में मारा गया और माता भी इसे प्रसव करके स्वर्ग को चली गयी है। अब यह तेजस्वी बालक अकेला है। अतः इसे ले जाकर तुम इसका पालन-पोषण करो। इसके द्वारा संसार में तुम्हारी विमल कीर्त्ति अचल होजायगी और अन्त में तुम सपरिवार परम पद को पाओगी।"

इतने ही से उस ब्राह्मणी को तृप्ति न हुई। उसने फिर पूछा—"हे महाभाग! भला भगवान् के भक्त की यह दशा क्यों हुई? यह बालक माता-पिता तथा बन्धु रहित क्यों हुआ?

क्यों यह मुझ निर्धन का पुत्र कहलावेगा ? इसका पालन मुझ दीन ब्राह्मणी से कैसे हो सकेगा ? मैं इन दोनों के, विशेषतः इस तेजस्वी बालक के अनुकूल सामग्री का प्रबन्ध कैसे कर सकूँगी ?" तब उन महापुरुष ने विहँसते हुए इस प्रकार कहा—"हे ब्राह्मणी ! तुम व्याकुल न होओ। तुम्हारी सब इच्छाएँ पूर्ण होंगी। अच्छा, अब इस बालक का संक्षिप्त चरित सुनोः–

इस बालक का पिता (सत्यरथ) पूर्वजन्म में पाण्डुराज हुआ था, वह धर्मात्मा शैव था। एक बार वह शिवरात्रि के दिन त्रयोदशीव्रत रहकर शिवजी की पूजा में मग्न था। इसी बीच नगर में एक बड़ा भयंकर शब्द हुआ। उसे सुनकर राजा पूजा छोड़कर शत्रु की शंका से बाहर चला गया। वहाँ शत्रु को उपद्रव करने के निमित्त आया जानकर राजा ने उसका सिर काट लिया और फिर उस अपवित्रतावस्था में *शिव-पूजन किये बिना ही उन्होंने भोजन भी कर लिया। इसी पाप के कारण तथा इष्ट-देव के तिरस्कार करने के अपराध से वह इस

---

* अनर्चितशिवा मर्त्याः प्राप्नुवन्ति दरिद्रताम् ।
सत्यं ब्रवीमि परलोकहितं ब्रवीमि सारं ब्रवीम्युपनिषद्धृदयं ब्रवीमि ॥
संसारमुल्बणमसारमवाप्य जन्तोः सारोऽयमीश्वरपदाम्बुरुहस्य सेवा ॥७२॥

शिवजी को न पूजनेवाले लोग दरिद्र होते हैं। मैं सत्य और परलोक के हित की बात कहता हूँ कि भयंकर व असार (साररहित) संसार को पाकर शिवजी के चरणकमलों की सेवा ही सारांश है ॥७२॥ जो लोग प्रदोष के समय में शिवजी को नहीं पूजते अथवा पूजे हुए शिवजी

जन्म में शत्रुद्वारा मारा गया। इसी प्रकार इसकी माता ने भी पर्वजन्म में अपनी सौत को छल करके मारा था, इस पाप से उसे मगर ने खा लिया। इस लड़के ने भी उस जन्म में शिव की पूजा का कुछ व्यतिक्रम किया था। इसलिए यह इस जन्म में ऐश्वर्य रहित मातृ-पितृविहीन होकर कष्ट पा रहा है। हे ब्राह्मणी! यह तुम्हारा जो अपना पुत्र है, पूर्व जन्म में ब्राह्मण था और नित्य प्रतिग्रह लेकर अपना जीवन बिताया करता था। इसने अपने जीवनकाल में यज्ञ-व्रत-अनुष्ठान तथा दान-पुण्य कुछ भी नहीं किया था।"

मुनि से इस प्रकार की बातें सुनकर ब्राह्मण-पत्नी ने शाण्डिल्य मुनि को प्रणाम करके शिव-पूजन की विधि और क्रम पूछा।

को जो मनुष्य प्रणाम नहीं करते या शिवजी की कथा नहीं सुनते, वे मूढ़ मनुष्य प्रत्येक जन्म में दरिद्र होते हैं, जो प्रदोप समय में सावधान मन से शिवजी के चरणकमलों की पूजा करते हैं, वे इस संसार में धन, धान्य, स्त्री, सौभाग्य तथा संपत्ति से पूर्ण होते हैं। जब शिवजी कैलाश पर्वत पर त्रिलोक की माता पार्वतीजी को सुवर्ण से रचित आसन पर बिठाकर स्वयं नृत्य करने की इच्छा करते हैं, तब सब देवता प्रदोष समय में उन शिवजी की सेवा करते हैं (देवाः प्रदोषसमयेऽनुभजन्ति सर्वे) गंधर्व, यक्ष, नाग साध्य, विद्याधर तथा देवता सब अपने २ कल्याणार्थ प्रदोष समय में शिवजी की सेवा में उपस्थित रहते हैं।

शाण्डिल्यजी बोले—दोनों पक्षों में त्रयोदशी तिथि को निराहार रहकर सूर्यास्त होने से तीन घड़ी पहले स्नान करके सफेद वस्त्रों को पहनकर नियम संयुक्त संध्योपासन से निवृत्त हो वेद में कही विधि से शिव-पूजन को प्रारम्भ करे। प्रदोष समय के प्राप्त होने पर अन्य देवतागण भी शिवजी के समीप प्राप्त होते हैं। इस कारण एक शिवजी ही पूजने योग्य हैं। विधिपूर्वक शिवजी का पूजन करने से सब देवता प्रसन्न होजाते हैं। अतएव अपने हृदयरूपी कमल में इस प्रकार के शिवजी का ध्यान करे* जो करोड़ों चन्द्रमा के समान श्वेत, त्रिलोचन, चन्द्रभाल, पीले रंग के जटा-जूट धारण किये, नीलकण्ठ, उदार अंगवाले, नागों के हार से शोभित, वरदायक, अभयदायक, परश्वध नामक अस्त्र को धारण किये, नागों का कंकण धारण किये, व्याघ्रचर्म को पहने और रत्नों के सिंहा-

---

* चन्द्रकोटिप्रतीकाशं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम् ॥१२॥
आपिङ्गलजटाजूटं रत्नमौलिविराजितम्।
नीलग्रीवमुदाराङ्गं नागहारोपशोभितम् ॥१३॥
वरदाभयहस्तं च धारिणं च परश्वधम्।
दधानं नागवलयकेयूराङ्गदमुद्रकम् ॥१४॥
व्याघ्रचर्मपरीधानं रत्नसिंहासने स्थितम्।
ध्यात्वा तद्वामभागे च चिन्तयेद्गिरिकन्यकाम् ॥१५॥
(ब्रह्मो० खं० अ० ७)

सन पर बैठे हुए शिवजी का और उनके बायीं ओर बैठी हुई पार्वतीजी का ध्यान करना चाहिए।

इस प्रकार शिवजी और पार्वतीजी का ध्यान करके न्यास-क्रम से अपने हृदयकमल में विधिवत् मानसी पूजा और प्रार्थना करे-*हे देवदेवेश, हे अभयंकर महादेव ! पार्वती समेत आप आइये और मेरे द्वारा की हुई इस पूजा को ग्रहण कीजिये। इसके अनन्तर विधिपूर्वक आवरणों से संयुक्त उपचारों से पार्वती समेत तेजोरूपधारी सदाशिवजी का पूजन करे। फिर सावधान होकर रुद्रसूक्तों का पाठ करता हुआ तीर्थजलों व पंचामृतों से महादेवजी को स्नान करावे। तदनन्तर मंत्रपाठ करता हुआ आसनादि, दिव्य वस्त्र, आचमन, स्नान, यज्ञोपवीत, वसन, भूषण, निवेदन करके अष्टगन्ध तथा पवित्र चन्दन चढ़ावे। तदनन्तर बिल्वपत्र, मंदार, कमल, धतूर इत्यादि पुष्पों को चढ़ाकर धूप, दीप तथा उत्तम नैवेद्य समर्पित करके शास्त्रोक्त विधि से अग्नि में हवन करे। फिर शिवजी के लिए ताम्बूल देवे। नीरांजन, सुन्दर वस्त्र, उत्तम दर्पण आदि सामग्री वैदिक तथा तांत्रिक मंत्रों द्वारा देकर पूजन करे। यदि निर्धन हो तो ऐश्वर्य के अनुसार पूजे। क्योंकि भक्तिपूर्वक दिये हुए पुष्प मात्र से ही शिवजी प्रसन्न हो जाते हैं।

(भक्त्या दत्तेन गौरीशः पुष्पमात्रेण तुष्यति)

---

*आगच्छ देवदेवेश महादेवाभयंकर !
गृहाण सह पार्वत्या तव पूजां मया कृताम् ॥

इसके बाद विद्वान् मनुष्य को चाहिए कि सब गणेशादिक देवताओं की भी पूजा, स्तोत्रों से स्तुति और साष्टांग प्रणाम करे। तदुपरान्त वृष व चण्डेश्वरादि की प्रदक्षिणा तथा पूजा करके शिवजी की प्रार्थना करे। पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन करावे और दक्षिणा देकर प्रसन्न करे। इस प्रकार व्रत करने से और पापों को कौन कहे, ब्रह्महत्या का पातक भी नष्ट हो जाता है। (ब्रह्महत्याशतं वापि शिवपूजा विनाशयेत्) इस प्रकार शाण्डिल्य मुनि के वचन सुनकर भिक्षुकी ने मुनि को प्रणाम किया और शाण्डिल्यजी के चरणों पर गिरकर अपने उद्धार के लिए प्रार्थना करने लगी। इस प्रकार शरण में प्राप्त ब्राह्मणी को अमृत के समान वचनों से समझाकर मुनि ने बालकों को शिवाराधनमंत्र की विधि का उपदेश दिया। शाण्डिल्यजी के उपदेश से वे बालक प्रदोष में शिवजी का पूजन करने लगे। इस प्रकार ब्राह्मण तथा राजकुमार को शिवजी का पूजन करते चार महीने सुखपूर्वक बीत गये।

एक समय झरने के किनारे उसके निजी पुत्र को खजाना मिल गया। बालक ने विह्वल हो धन को घर ले जाकर माता को दिया। द्विजपत्नी ने राजपुत्र को बुलाकर कहा—मेरे पुत्र द्वारा प्राप्त यह धन मेरी आज्ञा से तुम दोनों भ्राता बाँटकर ले लो। इस प्रकार माता का वचन सुनकर ब्राह्मणपुत्र बहुत प्रसन्न हुआ। शिवजी के पूजन में विश्वास

करनेवाला वह राजपुत्र बोला—हे मातः! तुम्हारे पुत्र के पुण्य से प्राप्त खजाना मैं नहीं लेना चाहता। वे ही भगवान् शिवजी जब मेरे ऊपर कृपा करेंगे, तब देखा जायगा। इस प्रकार बड़े हर्ष से शिवजी को पूजते हुए उन दोनों का एक वर्ष व्यतीत होगया। एक समय राजकुमार ब्राह्मण-कुमार के साथ पुष्प लेने के लिए बगीचे गया। वहाँ उन दोनों ने एक कन्या के साथ किसी गन्धर्वराज को देखा। इनको देखकर गन्धर्व बोला—हे राजेन्द्र! मैं कल कैलास गया था। वहाँ मैंने पार्वती समेत शिवजी का दर्शन किया। दया और अमृत के स्वरूप उन देवेश सदा शिवजी ने सब देवताओं के समीप मुझको बुलाकर कहा—पृथ्वी में धर्मगुप्त नामक एक राजपुत्र है। वह धन रहित और राज्य विहीन है, शत्रुओं ने उसका राज्य हर लिया है। * वह बालक गुरु के वचन से सदैव मेरे पूजन में तत्पर रहता है। उसी के प्रभाव से आज सब पितर लोग मुझको प्राप्त हुए हैं। हे गन्धर्व! तुम उसकी सहायता करो। इस प्रकार भगवान् शिवजी की आज्ञा पाकर मैं आपके पास उपस्थित हुआ हूँ। इस समय मैं अपनी कन्या अंशुमती तुमको देता हूँ, शिवजी की आज्ञा से तुम्हारे शत्रुओं को मारकर मैं तुमको तुम्हारे

---

* स बालो गुरुवाक्येन मदर्चायां रतः सदा ।
अद्य तत्पितरः सर्वे मां प्राप्तास्तत्प्रभावतः ॥ २९ ॥

राज्य पर बैठा दूँगा। उस नगर में इसके साथ अपनी इच्छा के अनुकूल सुख भोगने के अनन्तर दस हजार वर्ष बाद शिव-जी के स्थान को जाओगे। मेरी कन्या भी इस दिव्य देह से शिवजी के समीप तुमको प्राप्त होवेगी।

इस प्रकार कहकर उस गन्धर्व ने बगीचे में ही अपनी कन्या का व्याह कर दिया और उसके लिए अनन्त धन, रत्न, रथ, इन्द्र के वज्र समान धनुष, कवच, शत्रुओं का संहार करनेवाली शक्ति और कन्या की सेवा के लिए अनेक दासियाँ दीं। इसके अतिरिक्त कुमार की सहायता के लिए एक बड़ी चतुरंगिणी सेना भी दी।

इस प्रकार उत्तम कन्या को पाकर वह राजपुत्र गन्धर्वों की सेना समेत अपने नगर को प्राप्त हुआ और शत्रुओं को जीतकर अपने नगर में प्रवेश किया। तदनन्तर बड़े उत्तम मंत्रियों तथा ब्राह्मणों से अभिषिक्त हो रत्न सिंहासन पर बैठकर उस राजपुत्र ने निष्कण्टक राज्य किया। जिस विप्र की स्त्री ने अपने पुत्र के समान उसका पालन किया था, वह उसकी माता हुई। वह ब्राह्मणपुत्र उसका भाई हुआ और गन्धर्वकन्या रानी हुई। वह 'धर्मगुप्त' इस नाम से विख्यात होकर विदर्भदेश का नरेश हुआ।

जो मनुष्य सावधान होकर इस बड़े अद्भुत और पवित्र माहात्म्य को प्रदोषकाल में शिव-पूजा के अन्त में सुनता या कहता है। वह सैकड़ों जन्मों में भी दरिद्र नहीं होता और ज्ञान

रूपी ऐश्वर्य से युक्त होकर अन्त में शिवलोक को जाता है। जो मनुष्य अत्यन्त दुर्लभ मानव शरीर को पाकर शिवजी के चरणों का पूजन करते हैं, अपने पुण्य से त्रिलोक को जीतने वाले वे पुरुष धन्य हैं और उनके चरणों की धूलि समस्त संसार को पवित्र करती है।

ये प्राप्य दुर्लभतरं मनुजाः शरीरं
कुर्वन्ति हन्त परमेश्वरपादपूजाम् ।
धन्यास्त एव निज पुण्यजितत्रिलोका-
स्तेषां पदाम्बुजरजो भुवनं पुनाति ॥ ६४ ॥
(ब्रह्मो० खं०)



सत्तासीवाँ रत्न।

शिव-भक्त राजा कामरूपेश्वरजी।

कामरूप देश में कामरूपेश्वर नामक एक प्रतापी राजा अनन्य शिव-भक्त थे। उसका समस्त समय शिवजी के पार्थिव-पूजन में ही व्यतीत होता था। एक बार कामरूप देश में भीम नामक एक भयंकर राक्षस ने वहाँ के ऋषि-मुनियों को नाना प्रकार की पीड़ा पहुँचाकर अत्यन्त चिन्तित कर दिया।

वह यज्ञ-व्रत, पूजा-पाठ में विघ्न डालने लगा। यहाँ तक कि सब देवताओं और ऋषियों को तंग करके वहाँ से निकाल दिया। और बाकी तपस्वियों को इधर-उधर ढूँढ़ने लगा।

एक दिन महाराज ❀कामरूपेश्वर शिवजी के ध्यान में मग्न हो उनका पूजन कर रहे थे, इसी बीच में वह राक्षस वहाँ आ पहुँचा और उस भक्त राजा को मारने के लिये तलवार निकाली। भय दिखाते हुए उसने राजा से पूछा—"तुम कौन हो, इस समय क्या कर रहे हो? सत्य २ कह दो, नहीं तो आज मैं तुम्हें सपरिवार मार डालूँगा।" राक्षस के ऐसे नृशंस एवं कठोर शब्दों को सुनकर राजा कुछ भयभीत तो हुए, पर धैर्य धारण करके मन में सोचने लगे कि जिन शंकरजी की पार्थिव-पूजा मैं प्रतिदिन करता हूँ, जिनके बल से इन्द्रादि देवता राज-सुखोपभोग करते हैं और जिनके आधीन समस्त संसार के चराचर जीव हैं, वे ही परमेश्वर इस पार्थिवलिङ्ग में भी विद्यमान हैं तो क्या संकट पड़ने पर वे मेरी सहायता न करेंगे? इस प्रकार धैर्य धारणकर राजा ने महादेवजी से प्रार्थना की कि हे उमेश! मैं आपका भक्त हूँ और आपकी हो शरण में आया हूँ। आप सर्वान्तर्यामी हैं। जो इच्छा हो, सो कीजिये। ऐसा सोचकर उस अधम राक्षस का तिरस्कार करते हुए राजा ने कहा—ऐ राक्षसेश्वर! भक्त-भयहारी

❀ आसाम (ASSAM) को ही वर्तमान समय में कामरूप देश मान लिया गया है।

आशुतोष भगवान् शंकर का मैं भजन कर रहा हूँ (भजामि शङ्करं देवं स्वभक्तपरिपालकम्) महाराज कामरूपेश्वर के इस वचन को सुना तो राक्षसेन्द्र भीम भी क्रोध से लाल होकर गर्व के सहित बोला—तुम्हारा शङ्कर मेरा जाना हुआ है। वह क्या करेगा? जिसको मेरे चाचा रावण ने वश में कर रखा था, उसी शिव का तुम भजन कर रहे हो। इस काम को छोड़ दो, नहीं तो मैं तुम्हें भयंकर दण्ड दूँगा और तुम्हारे शिव का बल भी देख लूँगा।

राजा ने कहा—इसके लिए तुम जो चाहो, सो करो। परन्तु जब तक मेरे कण्ठ में प्राण रहेगा, तब तक मैं शिव-पूजन और उनका ध्यान-भजन नहीं छोड़ूँगा। राजा के ऐसे निर्भीक वचन सुनकर भीमासुर ने हँसकर कहा—तुम बड़े मूर्ख हो, उस भिखमङ्गे, नङ्गे, विषधर जीवों के संग रहनेवाले, पहाड़ी शङ्कर के तुम किङ्कर बने हो। यदि तुम अब से भी यह काम नहीं छोड़ते हो तो लो, मुझसे युद्ध करो और मेरे तीखे बाणों के शिकार बनो अथवा अपने संरक्षकों को बुलाओ। देखें, तुम्हारा वह शङ्कर कैसे सहायता करता है। ऐसा कहकर भीमासुर ने पार्थिवलिङ्ग पर अपनी तलवार का वार किया। उसी समय उस लिङ्ग से साक्षात् शङ्करजी प्रगट होगये। उस विकराल रुद्र के रौद्र रूप को देखकर उसकी सेना काँप उठी। शिवजी ने अपना त्रिशूल तानकर उस राक्षस से कहा कि देखो, मैं अपने भक्तों की रक्षा कैसे करता हूँ। भक्तों को

सुख देनेवाले एवं शत्रुओं (राक्षसों) को शूल देनेवाले मेरे इस त्रिशूल को देखो और अब अपने बचने का उपाय सोचो।

इस प्रकार लोगों के देखते-देखते भगवान् शङ्कर ने भीमासुर का वध कर डाला। राक्षसों का संहार होते देखकर सब ऋषि-मुनि प्रसन्न हुए और देवता तथा गन्धर्वों ने आकाश से पुष्पों की वृष्टि की। अन्त में भगवान् ने राजा से कहा—हे भक्तशिरोमणे ! अब तुम क्या चाहते हो, वर माँगो। राजा ने हाथ जोड़कर कहा—हे भगवन् ! मुझे अब कुछ नहीं चाहिये। आपने इस राक्षस का वध करके तीनों लोकों को आनन्दित किया है। देवता तथा मुनियों ने भी यही कहकर प्रार्थना की कि संसार के कल्याण के लिए आप यहाँ सदा निवास करें और * 'भीष्म-शङ्कर' नाम से प्रसिद्ध हों। यह प्रार्थना सुनकर भगवान् शङ्करजी ने वहाँ निवास किया।

"इत्येवं प्रार्थितश्शम्भुर्लोकानां हितकारकः ।
तत्रैव स्थितवान्प्रीत्या स्वतन्त्रो भक्तवत्सलः ॥५४॥"

(शि० पु० २१ अ०)

---

* कमरूप देश, गोहाटी Gohati A. B. रेलवे में है। वहाँ पर भीमेश्वर शिव ब्रह्मपुत्र नदी के बीचमें एक छोटे से पहाड़ पर स्थित हैं।

पूना के रेलवे स्टेशन से २१ मील पश्चिमोत्तर तलेगाँव (Talegaon G.I. P. रेलवे) से २४ मीलकी दूरी पर एक और भी भीमशङ्कर महादेव हैं।

अट्ठासीवाँ रत्न ।

राजा शूरविमर्दन ।

किरात*देश में शूर-विमर्दन नामक एक महा प्रतापी राजा हुआ था। वह शत्रुओं को जीतनेवाला, भूत-भविष्य-वर्तमान को जाननेवाला और शिवजी का अनन्य भक्त था। उसकी धर्मपत्नी का नाम कुमुद्वती था, जो परम पतिभक्ता तथा धर्मपरायणा थी। राजा में महान् दोष भी थे। वह कृपण, निर्दयी और विलासी था। इस प्रकार होता हुआ भी वह प्रति दिन महादेव-जी की पूजा किया करता था और विना लिङ्गार्चन किये अन्न ग्रहण नहीं करता था। वह आलस्य रहित होकर दोनों पक्षों की चतुर्दशी (शिवरात्रि) को व्रत रहकर सविधि शिव-पूजन किया करता और उससे बहुत सन्तुष्ट रहता था।

वह कभी २ शिवजी की प्रसन्नता के लिये प्रेमोन्मत्त होकर स्वयं नाचा करता और मधुर भजनों द्वारा उन्हें रिझाया करता था। परन्तु रानी कुमुद्वती उसके दुराचारों से सन्तप्त रहा करती थी। एक दिन रानी ने एकान्त में राजा से कहाः-नाथ! आप का चरित्र बड़ा आश्चर्य्यजनक है। भला, कहाँ आपका वह भारी दुराचार और कहाँ परमेश्वर में ऐसी दृढ़ भक्ति? (क ते

---

* किरात और कुम्मिला जो कि बंगाल में है। किरात देश के नाम से पुकारा जाता है। Tippra comilla in Bengal.

महान् दुराचारः क्व भक्तिः परमेश्वरे) राजा ने देर तक सोच-कर हँसते हुए कहा—हे प्रिये ! मैं पूर्वजन्म में कुत्ते की योनि पाकर पम्पानगर में रहा करता और व्यर्थ इधर-उधर घूमा करता था। एक वार एक शिवमन्दिर के निकट में घूम रहा था कि एक भद्रपुरुष भोजन की सामग्री लेकर उस मन्दिर में गया। मैं भी उसके लालच में पड़कर मन्दिर के फाटक के पास जा बैठा। तव तक एक दूसरा क्रूर पुरुष हाथ में डण्डा लिये वहाँ आया और मुझे मारने दौड़ा। मैं वहाँ से प्राण बचाने के लिए दौड़ता हुआ उस मन्दिर के चारों ओर कई बार घूमा और मार भी खायी, परन्तु लोभ के मारे फिर फाटक पर जा डटा।

उस दिन कृष्णपक्ष की चतुर्दशी थी, शिवरात्रि का महा पर्व था। अतएव वहाँ भक्तों की भारी भीड़ थी। आना-जाना लगा ही रहा। कितने ही शिव-भक्त नाना प्रकार के पकवान शिवजी को चढ़ाने के लिये लाये। इससे हमारा लोभ भी बढ़ता गया। सच बात तो यह है कि श्वानयोनि में रहते हुए भी मुझे वहाँ बैठना और वह कौतुक (पूजा-पाठ) देखना बड़ा प्रिय मालूम होता था। इन्हीं कारणों से मार खाता हुआ भी मैं पकवान के लिये चक्कर लगाता रहा। तब तक एक दूसरा क्रूर पुरुष आया और मेरा पीछा किया। इस बार भी मैंने तीन चक्कर लगाकर दुराग्रहवश मन्दिर का द्वार नहीं छोड़ा और डण्डे की चोट से वहीं पर एकाएक

मर गया। भगवान् शंकर की प्रदक्षिणा से और उनके निकट (मन्दिर पर) मरने से आज मैं शुद्ध और प्रतापी राजवंश में उत्पन्न होकर नाना प्रकार के भोग-विलास को भोगता हूँ। हे भामिनि! मैं उन्हीं भगवान् शङ्कर की कृपा से * त्रिकालज्ञ हुआ हूँ। इसी लिए पूर्वजन्म के संस्कार वश मैं परमेश्वर में भक्ति रखता हुआ किसी प्रकार उनका भजन किया करता हूँ। इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है। हे प्रिये! यह सब दोष भगवान् की आराधना के प्रभावों से देवस्वभाव में परिणत हो जायगा। योगदर्शन में लिखा है—

जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात्।

अर्थात् जब मनुष्य जातिरूप से परिणाम को प्राप्त शरीर इन्द्रियों का नूतन देवजाति आदिरूप में परिणाम होजाता है, तो वही प्रकृत्यापूर कहलाने लगता है। इसी प्रकार आसुरी स्वभाव भी कभी-कभी देवस्वभाव के रूप में परिणत होजाता है। प्रकृत्यापूर प्रकृति का उपादान कारण है। अपूर नाम है, अपने कार्य्यों में अवयवों का प्रविष्ट होना।

राजा की धर्मयुक्त वाणी सुनकर रानी गद्गद होगयी और भगवान् शङ्कर के गुणानुवाद सुनाते रहने की प्रार्थना की। रानी ने कहा—हे स्वामिन्! ऐसे करुणालय को मैं आज आपकी दया से जान गयी। अब मैं प्रतिदिन उनका पूजन

* दृष्ट्वा चतुर्दशीपूजां दीपमालाविलोकिताः।
तेन पुण्येन महता त्रिकालज्ञोऽस्मि भामिनि ॥ २२ ॥

किया करूँगी। हे प्राणनाथ! आप त्रिकाल हैं—यह रहस्य भी मुझे आज मालूम होगया। अतः आप कृपा करके मेरे पूर्वजन्म का चरित्र सुनाइये। राजा ने कहा—हे वरानने! तुम उस जन्म में आकाशगामी पक्षी की योनि में जन्मी थीं। एक बार चारा ढूँढ़ती हुई तुमने एक मांस का पिण्ड पाया। तुम्हारे चोंच में मांसपिण्ड देखकर एक बलवान् बाज ने तुम्हारा पीछा किया। तुम उड़ती हुई एक शिवालय की प्रदक्षिणा करके शिव-ध्वजा पर जा बैठीं। बाज ने पहुँचकर अपने तीखे चोंच से ऐसा मारा कि तुम वहीं गिरकर मर गयीं और वह मांस का पिण्ड लेकर उड़ गया। ‡ देवदेव श्रीशिवजी की प्रदक्षिणा करके उनकी सन्निधि में मरने के कारण इस समय तुम राजकुमारी होकर मेरी राजमहिषी (रानी) हुई हो।

इस लिए हे प्रिये! हमलोग अब शिवाराधन में सदा तत्पर रहते हुए इसी प्रकार राज्य-सुखोपभोग किया करें। अन्त में महेश्वर की दया से हम लोगों का मनोरथ अवश्य सिद्ध होगा और यह दुराचार भी छूट जायगा। क्योंकि जिन लोगों ने ज्ञान से या अज्ञान से भी शिवार्चन (लिङ्गार्चन)

---

‡ प्रदक्षिणप्रकरणाद्देवदेवस्य शूलिनः।
तस्याग्रे मरणाच्चैव जातासीह नृपाङ्गना॥ ३०॥
(ब्रह्मो० ख० ४ अ०)

किया है, वे लोग अवश्य शिवधाम में जाकर उनके पार्षदों में मिल गये और अन्त में विमुक्त हुए हैं। इस लिए—

"शिवपूजां सदा कुर्याद्बुद्धिमानिह मानवः ।
अशक्तश्चेत्कृतां पूजां पश्येद्भक्तिविनम्रधीः ॥
अश्रद्धयापि यः कुर्याच्छिवपूजां विमुक्तिदाम् ।
पश्येद्वा सोऽपि कालेन प्रयाति परमं पदम् ॥"

(ब्रह्मोत्तर खं०)

नवासीवाँ रत्न।

शिव-भक्त राजा भद्रायु ।

एक समय राजा भद्रायु अपनी राजमहिषी कीर्त्ति-मालिनी को साथ लेकर वन में भ्रमण करने के लिए गये। यथेष्ट विचरते हुए राजा विश्राम की इच्छा से एक सुन्दर सुशीतल छायादार वृक्ष के तले जा बैठे। इस प्रकार एकान्त में वे दम्पति बैठे हुए आपस में शिवचर्चा करने लगे। रानी के पूछने पर राजा ने भगवान् शङ्कर की अनेक कथाएँ उनको

सुनायीं। परन्तु शिव-भक्त दम्पति को कहने-सुनने से तृप्ति नहीं होती थी। जब सन्ध्या होने को आयी और वे लोग उठकर अपने स्थान को चलने का विचार करने लगे, इसी बीच जगज्जननी श्रीपार्वती के साथ नित्य विचरनेवाले श्रीमहादेवजी ने राजदम्पति की शिव-भक्ति-परीक्षा करनी चाही।

भक्तों के लिए लीला-वपु धारण करने में निपुण नटनागर भगवान् शम्भु वहाँ शीघ्र ही एक द्विजदम्पति का वेष बनाकर राजा के सामने उपस्थित हुए। अर्थात् शिवजी ने ब्राह्मण का और पार्वतीजी ने ब्राह्मणी का वेष बनाया। फिर स्वयं माया-व्याघ्र का वेष धारण कर उसी वन में गरजते हुए द्विजदम्पति पर आक्रमण किया। सिंह के भय से भागे हुए ब्राह्मण और उसकी स्त्री दोनों राजा की शरण में आये और पुकार २ कर कहने लगे—हे शरणागत-पालक! क्षत्रिय-कुलवीर!! भद्रायु!!! हम लोगों को बचाओ। नहीं तो व्याघ्र भक्षण करना चाहता है। महा बलधारी राजा भद्रायु उनका करुणनाद सुन तथा दो स्त्री-पुरुष पर एक सिंह को आक्रमण करते देखकर उन्हें धीरज देते हुए दौड़े। तब तक सिंह ने ब्राह्मणी को पकड़ लिया, वह हे नाथ, हे शिवशम्भो! पुकारती रही और व्याघ्र ने उसे खा लिया। व्याघ्र पर राजा के उन बाणों का कुछ भी प्रभाव न पड़ा। इधर स्त्री का विनाश एवं अपने प्राणों की भी निराशा देखकर ब्राह्मण भी विलाप करने लगा और राजा के लिए मर्म-वेधी एवं अपमान-सूचक शब्दों का प्रयोग करने लगा।

ब्राह्मण बोला—हे राजन्! तुम्हारा बाहु-बल कहाँ गया? तुम्हारे शत्रुसंहारी वे तीक्ष्ण बाण विफल क्यों हो रहे हैं? तुम्हारी ख्याति और शूर-वीरता किस दिन काम आवेगी? तुम्हारे लिए क्षत्रिय* शब्द व्यर्थ हो रहा है। भला, तुम्हारे देखते २ हमारा आधा अङ्ग (स्त्री) विनष्ट होगया, अब यह अर्धाङ्ग (हमारा क्षुद्र शरीर) रहकर ही क्या करेगा? जो जीते जी अपनी स्त्री की रक्षा नहीं कर सकें अथवा जो शरणागत में आये को न बचा सकें, ऐसे लोगों का जीना ही व्यर्थ है? हे राजन्! मैं तो अधीर हो ही चुका हूँ। अब तुम हमारी रक्षा करके अपने यश की रक्षा करो। गो-ब्राह्मणों के लिए अपना शरीर देकर भी उन्हें बचाना क्षत्रिय राजाओं का परम धर्म कहा गया है। अपने धर्म को त्यागना एवं सम्भावितों† की अकीर्त्ति होना संसार में मरने से भी अधिक है।

इस प्रकार अपने पराक्रम (क्षत्रियधर्म) की निन्दा सुनकर राजा शोकाकुल हो विचारने लगा—हाय! आज प्रारब्ध के विपरीत होने से मानों पुरुषार्थ भी नष्ट होगया। जब मैं अपने पूर्वजों की ही कीर्त्ति नहीं बचा सकता, तब भविष्य में क्या कीर्ति कमाऊँगा? मेरी शरण में आयी हुई दीन ब्राह्मणी

---

* क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः। (रघुवंश)

† सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते। (गीता)

सुनायीं। परन्तु शिव-भक्त दम्पति को कहने-सुनने से तृप्ति नहीं होती थी। जब सन्ध्या होने को आयी और वे लोग उठकर अपने स्थान को चलने का विचार करने लगे, इसी बीच जगज्जननी श्रीपार्वती के साथ नित्य विचरनेवाले श्रीमहादेवजी ने राजदम्पति की शिव-भक्ति-परीक्षा करनी चाही।

भक्तों के लिए लीला-वपु धारण करने में निपुण नटनागर भगवान् शम्भु वहाँ शीघ्र ही एक द्विजदम्पति का वेष बनाकर राजा के सामने उपस्थित हुए। अर्थात् शिवजी ने ब्राह्मण का और पार्वतीजी ने ब्राह्मणी का वेष बनाया। फिर स्वयं माया-व्याघ्र का वेष धारण कर उसी वन में गरजते हुए द्विजदम्पति पर आक्रमण किया। सिंह के भय से भागे हुए ब्राह्मण और उसकी स्त्री दोनों राजा की शरण में आये और पुकार २ कर कहने लगे—हे शरणागत-पालक! क्षत्रिय-कुलवीर!! भद्रायु!!! हम लोगों को बचाओ। नहीं तो व्याघ्र भक्षण करना चाहता है। महा बलधारी राजा भद्रायु उनका करुणनाद सुन तथा दो स्त्री-पुरुष पर एक सिंह को आक्रमण करते देखकर उन्हें धीरज देते हुए दौड़े। तब तक सिंह ने ब्राह्मणी को पकड़ लिया, वह हे नाथ, हे शिवशम्भो! पुकारती रही और व्याघ्र ने उसे खा लिया। व्याघ्र पर राजा के उन बाणों का कुछ भी प्रभाव न पड़ा। इधर स्त्री का विनाश एवं अपने प्राणों की भी निराशा देखकर ब्राह्मण भी विलाप करने लगा और राजा के लिए मर्मभेदी एवं अपमान-सूचक शब्दों का प्रयोग करने लगा।

ब्राह्मण बोला—हे राजन् ! तुम्हारा बाहु-बल कहाँ गया ? तुम्हारे शत्रुसंहारी वे तीक्ष्ण बाण विफल क्यों हो रहे हैं ? तुम्हारी ख्याति और शूर-वीरता किस दिन काम आवेगी ? तुम्हारे लिए क्षत्रिय* शब्द व्यर्थ हो रहा है। भला, तुम्हारे देखते २ हमारा आधा अङ्ग (स्त्री) विनष्ट होगया, अब यह अर्धाङ्ग (हमारा क्षुद्र शरीर) रहकर ही क्या करेगा ? जो जीते जी अपनी स्त्री की रक्षा नहीं कर सकें अथवा जो शरणागत में आये को न बचा सकें, ऐसे लोगों का जीना ही व्यर्थ है ? हे राजन् ! मैं तो अधीर हो ही चुका हूँ। अब तुम हमारी रक्षा करके अपने यश की रक्षा करो। गो-ब्राह्मणों के लिए अपना शरीर देकर भी उन्हें बचाना क्षत्रिय राजाओं का परम धर्म कहा गया है। अपने धर्म को त्यागना एवं सम्भावित† की अकीर्त्ति होना संसार में मरने से भी अधिक है।

इस प्रकार अपने पराक्रम (क्षत्रियधर्म) की निन्दा सुनकर राजा शोकाकुल हो विचारने लगा—हाय ! आज प्रारब्ध के विपरीत होने से मानों पुरुषार्थ भी नष्ट होगया। जब मैं अपने पूर्वजों की ही कीर्त्ति नहीं बचा सकता, तब भविष्य में क्या कीर्ति कमाऊँगा ? मेरी शरण में आयी हुई दीन ब्राह्मणी

---

* क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः। (रघुवंश)

† सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते। (गीता)

मर गयी। इस लिए मुझे महापातक लगा। अब मेरे जीवन को सचमुच धिक्कार है।' यह विचारकर महाराज भद्रायु नत-मस्तक हो, ब्राह्मण के चरणों में गिरकर नम्र वचन बोले— हे ब्राह्मणदेव! मुझ से बड़ा पाप होगया। मेरा उद्धार कैसे होगा। मुझपर दया करिये और शोक त्यागकर मुझसे कुछ माँगिये। मैं राजा हूँ, आप ब्राह्मण हैं। अतएव हर प्रकार से आपको सन्तुष्ट करना मेरा धर्म है। आपकी जो इच्छा हो, माँगिये; पर मुझपर क्रोध न करिये। ब्राह्मण बोले—अन्धे को दर्पण से क्या लाभ? भला, विना स्त्री के मुझे धन से क्या प्रयोजन! इस लिए यदि कुछ देना चाहते हो तो अपनी धर्मपत्नी को मुझे दे दो—मेरी यही कामना है।

ब्राह्मण की ऐसी बिकट माँग सुन; राजा दुःखित होकर बोले—हे विप्रवर! हाथी घोड़ा या मेरा समस्त राज्य भी आप ले सकते हैं, पर दूसरे की स्त्री की क्यों चाहना करते हैं? परस्त्री-ग्रहण से पाप बढ़ता है और ब्राह्मणोचित धर्म भी यह नहीं है। इस लिए स्त्री को छोड़कर कोई अन्य वस्तु माँगिये।

ब्राह्मण बोले—हे राजन्! मैं महापातकों को भी अपने तपो-बल से भस्म कर दूँगा, फिर परस्त्री-ग्रहण के दोष की क्या गिनती? इस लिए आप पाप का भय त्यागकर मुझे अपनी स्त्री दे दीजिये और कुछ भी मुझे नहीं चाहिये।

ब्राह्मण के ऐसे कठोर वचन सुनकर राजा काँपने लगे। उनका वह हृदय जो बड़े २ शत्रुओं के आक्रमण को तृण के

समान जानता था, जो घोर से घोर संकटों में भी पर्वत की तरह निश्चल रहता था, साहस और धैर्य्य में भी जो एक ही था। वह भी ब्राह्मण के इस वचन से पीपल की पत्ती के समान काँपने लगा और अन्ततो गत्वा उन्हें ब्राह्मण की क्रोधाग्नि* (शापाग्नि) का ध्यान आया। अतः वैसा करने को विवश होना पड़ा। मन में सोचा कि "ब्राह्मण देवता को अपनी प्रिय भार्या समर्पित करके मैं अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा।" यह निश्चय करके उन्होंने स्नानादि नित्यक्रिया करके चिता लगायी और उस ब्राह्मण के लिए (संकल्प द्वारा) अपनी स्त्री का दान कर श्रीशंकरजी का ध्यान किया। इसके उपरान्त अपने चरणों में आसक्त चित्तवाले राजा को अग्नि में गिरते देखकर विश्वदेव जगदीश ने प्रत्यक्ष दर्शन दिया। पंचवदन, त्रिनेत्र, चतुर्भुज, त्रिशूलडमरूधारी, जटाजूट में गंगा, भाल में चन्द्रमा तथा समस्त अंगों में विभूति धारण किये, नागयज्ञोपवीती, सर्पों के कण्ठहारवाले, व्याघ्रचर्म ओढ़े, व्याघ्रचर्म पर ही सिद्धासन लगाये स्थित, आस-पास में नन्दी-भृंगी आदि वाहन तथा गणों से युक्त एवं देवी-देवताओं से सेवित श्रीशंकरजी के दर्शन

---

* इन्द्रकुलिश मम शूल विशाला। कालदण्ड हरिचक्र कराला॥
जो इनकर मारे ना मरई। विप्ररोष-पावक सो जरई॥

(रामा० उ० कां०)

के आनन्द से तृप्त होकर आँसुओं के जल से मग्न अङ्गवाले, प्रसन्न, रोमाञ्चित शरीर हाथों को जोड़े राजा गद्गद अक्षरों भरे वचनों से बोले * हे नाथ! अविकारी, प्रधान व अव्यक्त गुणवाले आप महान् देवता को मैं प्रणाम करता हूँ। अकारण व कारण के कारण तथा चिदानन्दमय, उत्तम, शान्त, शिवजी को मैं प्रणाम करता हूँ॥ ४८॥ आप इस संसार के साक्षी और रचनेवाले हैं। बहुत तेजवाले आप मेरे हृदय में स्थित हों। इसी कारण चित्त को रोकनेवाले अनेक योगों से विद्वान् लोग आप को ढूँढ़ते रहते हैं॥ ४९॥ एकात्मभावनावालों को आप एक (आत्मरूप हैं) और अनेक बुद्धिवालों को आप अनेक रूप हैं। इन्द्रियों से परे व साक्षी, उदय अस्तवाले आपका स्थान मन के मार्ग से हर लिया जाता है॥५०॥

राजा की इस प्रकार की स्तुति से प्रसन्न होकर शिवजी बोले—हे राजन्! तुम्हारी इस धर्ममय भक्ति से मैं अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ। मैंने तुम्हारी भक्ति एवं राजधर्म की परीक्षा के लिये

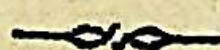
---

* नतोऽस्म्यहं देवमनाथमव्ययं प्रधानमव्यक्तगुणं महान्तम्।
अकारणं कारणकारणं परं शिवं चिदानन्दमयं प्रशान्तम्॥४८॥
त्वं विश्वसाक्षी जगतोऽस्य कर्ता विरूढधामा हृदि सन्निविष्टः।
अतो विचिन्वन्ति विधौ विपश्चितो योगैरनेकैः कृतचित्तरोधैः॥४९॥
एकात्मतां भावयतां त्वमेको नानाधियां यस्त्वमनेकरूपः।
अतीन्द्रियं साक्ष्युदयास्तविभ्रमं मनःपथात्संह्रियते पदं ते॥५०॥

ही यह माया रची थी। वास्तव में न वह व्याघ्र था, न द्विज-दम्पति। सब मेरी माया थी। तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न होकर मैं कहता हूँ कि तुम्हारी जो मनोकामना हो, निर्भय होकर मुझ से माँगो। तुम्हारे लिए मुझे कोई भी वस्तु अदेय नहीं है। यह सुनकर आनन्द से गद्गद तथा आँसुओं से भींगे हुए शरीर-वाले, प्रसन्न, रोमों से पुलकित राजा ने विनयपूर्वक हाथ जोड़-कर कहा—हे प्रभो! यही वर बहुत है कि आप परमेश्वर संसार के ताप से संतप्त मेरे दृष्टिगोचर हुए हैं। यदि मुझपर आप प्रसन्न हैं और वर देना चाहते हैं तो मेरी माता सहित मेरे पिता वज्रबाहु तथा मैं भी अपनी स्त्री सहित आपके श्री-चरणों की अप्राप्य विमल भक्ति पाऊँ। शिवजी ने राजा से "एवमस्तु" कहकर रानी कीर्त्तिमालिनी से कहा—तुम भी वर माँगो। रानी ने कहा—हे भक्तवत्सल प्रभुवर! मेरे पिता चन्द्राङ्गद तथा माता सीमन्तिनी देवी इन दोनों को भी आपकी भक्ति मिले और ये दोनों आपके निकट सदा निवास करें।" यह सुन और "एवमस्तु" कहकर भगवान् शंकर वहीं अन्त-र्धान होगये और राजर्षि भद्रायु एवं राजमहिषी कीर्त्ति-मालिनी शिव-भक्ति में परायण होकर दश हज़ार वर्षों तक राज्य-सुखोपभोग करके शिवधाम गये। इस कथा को जो पढ़ता, सुनता और दूसरों (श्रद्धालु शिव-भक्तों) को सुनाता है, वह अपने जीवन को सुखमय बिताता हुआ अन्त में शिवधाम को पधारता है।

एतत्पवित्रमघनाशकरं विचित्रं
शम्भोर्गुणप्रकथनं परमं रहस्यम् ।
यः श्रावयेद्बुधजनान् प्रयतः पठेद्वा
सम्प्राप्य भोगविभवं शिवमेति सोऽन्ते ॥७६॥"

(ब्रह्मो० खं० १४ अ०)



नब्बेवाँ रत्न।

वैष्णव-शिरोमणि भीष्म-पितामह ।

भीष्म-पितामह महाराज शान्तनु के ज्येष्ठ पुत्र थे। वे पतित पावनी गंगा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। भीषण (कठिन) प्रतिज्ञा के पालन करने के कारण उनका नाम "भीष्म" पड़ गया था। महाभारत के अन्त में जब भीष्म-पितामहजी शर-शय्या पर पड़े हुए थे, तब भगवान् शङ्कर को जानने की इच्छा रखनेवाले धर्मराज युधिष्ठिर ने भीष्म-पितामह से पूछा—हे भीष्म-पितामह ! आपने जगत्पति महेश्वर के माहात्म्य सुने हैं। अतः देवों के भी देव ईश शम्भु के विषय में मुझसे कहिये।

भीष्म पितामह ने कहा—'हे युधिष्ठिर ! वह ईश्वर सर्वत्र व्याप्त है; परन्तु दृष्टिगोचर नहीं होता। ऐसे अव्यक्त, नित्य, और निर्विकार शिवजी के गुणों के वर्णन करने की शक्ति मुझमें

नहीं है । जो विराट् (ब्रह्मा), सूत्रात्मा (विष्णु) और प्राज्ञ (इन्द्र) के स्रष्टा (उपादान कारणरूप) हैं और जो प्रभु (नियन्ता) हैं, ब्रह्मा से लेकर पिशाच तक जिनकी उपासना करते हैं, प्रकृति तथा प्रकृति के भोक्ता पुरुष से भी जो परे हैं, योग जाननेवाले तत्त्ववेत्ता ऋषि-मुनि जिनका चिन्तन करते रहते हैं, जो अक्षर (अपरिणामी) तथा परब्रह्म हैं, जो रज्जु में सर्प तथा साप में रजत के समान भासने पर भी अनिर्वचनीय हैं अर्थात् जो न सत् हैं, न असत् हैं। जो प्रकृति और पुरुष से परे हैं अर्थात् प्रकृति पुरुष को दबाकर जो स्वयं ब्रह्माण्ड की रचना करते हैं। ऐसे प्रभु परमेश्वर महादेव के गुणों के वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है? अतः हे पुत्र! शंखचक्रगदाधारी *नारायण भगवान् के अतिरिक्त मुझ सरीखा पुरुष उन परमेश्वर शङ्कर के गुणों को किस प्रकार जान सकता है? क्योंकि भगवान् नारायण ज्ञानी हैं, विष्णु (व्यापक) हैं, दुर्जय हैं और वे दिव्य दृष्टि से महादेवजी का दर्शन किया करते हैं। जब बद्रिकाश्रम में श्रीकृष्णजी ने भगवान् शंकर को प्रसन्न किया था तब शिव-भक्ति के प्रभाव से पुरु-

---

* को हि शक्तो भवं ज्ञातुं मद्विधः परमेश्वरम् ।
ऋते नारायणात्पुत्र शंखचक्रगदाधरात् ॥८॥

(म० भा० अनु० प० १३ अ०)

षोत्तम कृष्ण ने समस्त संसार को व्याप्त कर लिया और सब लोकों के चाहने योग्य भोग्य वस्तु से भी अधिक प्रिय (अन्त-र्यामी) पद पाया। इतना कहकर भीष्म-पितामह ने शङ्कर की महिमा जाननेवाले श्रीकृष्णजी की प्रार्थना की कि हे देव! हे विष्णो! धर्मराज के प्रश्नों का आप ही उत्तर दीजिये, क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं। तब श्रीकृष्णजी ने कहा—हे भीष्म-पितामह! जिन भगवान् शङ्कर के गुणों को ब्रह्मादि देवता भी नहीं जान सकते, उनके गुणों को भला मनुष्य कैसे जान सकता है? फिर भी महात्मा शङ्कर के गुणों को किसी प्रकार यथाशक्ति मैं कहूँगा। ऐसा कहकर पवित्रता से आचमन करके कृष्णजी बोले कि मैंने पहिले जब 'साम्ब' नामक पुत्र को उत्पन्न करने के लिए कठिन तप किया था, तब प्रत्यक्षरूप से भगवान् शङ्कर ने मुझे अपना दर्शन दिया था।

ऐश्वर्यं यादृशं तस्य जगद्योनेर्महात्मनः।
तदायं दृष्टवान् साक्षात् पुत्रार्थे हरिरच्युतः ॥१४॥

(महा० अनु० १३)



एक्कानबेवाँ रत्न ।

राजसिंह श्वेत ।

प्राचीन काल में एक बड़े प्रतापी श्वेत नाम के राजा होगये हैं। बहुत दिनों अनेक प्रकार के राजभोग भोगते-भोगते उनकी धर्म की ओर प्रवृत्ति हुई। उन्होंने धर्मविहित रीति से सब काम करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। तभी से वे पृथ्वी और प्रजा का पालन बड़े प्रेम और न्याय के साथ करने लगे। ब्राह्मणों के तो वे अनन्य भक्त थे। सत्य का पालन करना वे अपना परम कर्तव्य समझते थे। शिवजी की साङ्गोपाङ्ग पूजा किये बिना वे जल तक ग्रहण नहीं करते थे। उनकी जिह्वा सदा शिवनाम का ही स्मरण करती रहती थी।

उनके शासनकाल में आधि–व्याधि किसी को नहीं सताती थी। किसी प्रकार के उपद्रव किसी को दुःख नहीं देते थे। उनके उस धर्ममय शासनकाल में किसी को पुत्रमरण का दुःख तो कभी हुआ ही न था। दरिद्रता का वे लोग नाम भी नहीं जानते थे। कभी किसी ने किसी का अपमान किया ही नहीं। तात्पर्य यह कि उनकी समस्त प्रजा सुख और शान्ति के साथ समय बिताती थी और किसी प्रकार के भी दुःख से दुःखित नहीं थी।

इस प्रकार, शङ्कर की आराधना करते-करते बहुत समय

व्यतीत होगया। उनकी आयु के अन्तिम दिन सन्निकट आ गये। एक दिन वे शिवालय में बैठे भगवान् की आराधना कर रहे थे। उसी समय यमराज ने उनको लाने के लिए अपने दूत भेजे। भयङ्कर कालपाश लिये हुए वे लोग वहाँ पहुँचे, पर राजा को शिवध्यान में मग्न देखकर उन्हें पकड़ने का साहस ही नहीं हुआ और वे वहीं खड़े रह गये।

आवश्यकता से अधिक समय व्यतीत होते देख यमराज को आशङ्का हुई और वे स्वयं उस स्थान में आकर उपस्थित हुए, जहाँ राजा श्वेत आसन जमाये ध्यान में बैठे थे और यमदूत हाथ जोड़े खड़े थे।

राजा की शान्त और भस्मविभूषित मूर्ति देख यमगण भी स्तब्ध होकर मूर्ति के समान निश्चल खड़े रह गये।

काल के लिए तो एक क्षण का भी इधर-उधर होना कठिन है। वह किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। समय व्यतीत हुआ जाता था। इस लिए काल स्वयं दौड़ा हुआ आया और तीक्ष्ण खड्ग लिये हुए राजा के सिर पर आ धमका।

शिवालय के द्वार पर अपने दूतों को खड़े देखकर काल उनसे बोला कि हे दूतो! समय बीता जा रहा है, तुम राजा को अभी तक क्यों नहीं लाये। और तुम डरे से प्रतीत होते हो इसका क्या कारण है? देखो! देरी मत करो, बहुत शीघ्र सब काम समाप्त होना चाहिए।

यमगणों ने कहा कि हमलोगों को कोई सन्देह नहीं; अब हम इन राजा का अन्त अवश्य कर देंगे। हम सब अभी तक त्रिशूली भगवान् रुद्र के डर से मूर्तिवत् खड़े थे और इनको पकड़ने का साहस नहीं होता था।

दूतों के वचन सुनकर काल को बड़ा क्रोध आया और वह तलवार चमकाता हुआ राजा को मारने के लिये मन्दिर में घुस पड़ा। अपने भक्त के ऊपर आक्रमण करते देख उसकी रक्षा के लिए शिवजी अपने तीसरे नेत्र से काल की ओर ताकने लगे।

संसार में ऐसा कौन है, जो उनके तीसरे नेत्र की अग्नि को सह सके। उनके ताकते ही समस्त संसार को अकेले भक्षण करनेवाला काल भी क्षण भर में भस्म होगया। जब राजा का ध्यान टूटा तो सामने काल भस्म होता हुआ दिखाई दिया। पास ही रुद्र अपना कालाग्नि सदृश रूप धारण किये क्रोध से लाल आँखें किये दिखाई पड़े। यह अवस्था देखकर राजा बहुत व्याकुल हुए और हाथ जोड़कर शङ्कर भगवान् से प्रार्थना करने लगे कि हे भगवान रुद्र! आप सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं। आप ही सबके माता, पिता, मित्र, स्वजन आदि सब कुछ हैं। हे भगवन्! आपने यह क्या किया? मेरे सामने कौन जल रहा है? मुझे कुछ भी नहीं मालूम कि यह सब काण्ड कैसे हुआ।

इस प्रकार बिनती करते देख शिवजी ने राजा को आश्वासन देते हुए कहा कि हे राजन्! यह काल है, तुम्हें समाप्त

करने आया था। मैंने इसको जला डाला है। उसी की ज्वाल-माला सामने दिखायी देती है। संसार में जितने पापी, अधर्मी और संसार का संहार करनेवाले हैं, उन्हें मैं इसी तरह नष्ट कर दिया करता हूँ।

रुद्र के वचन सुनकर राजा श्वेत ने कहा कि हे महाराज! काल के ही भय से संसार में लोग पुण्य करते हैं। जितने कर्मनिष्ठ हैं, जितने देवों की आराधना करते हैं, जितने उपासना में अपना समय लगाते हैं, जितने अध्यात्मविद्या का अध्ययन करते हैं, वे सब काल के भय से ही करते हैं। वह सम्पूर्ण संसार का भक्षण भी करता है और उसका पालन भी करता है। उसी के भय से सम्पूर्ण संसार की स्थिति सुधरी हुई है, नहीं तो बड़ा अनर्थ हो जाता। इस लिए हे जगन्नाथ! आप इसको फिर जिला दीजिये। बिना काल के संसार का काम नहीं चल सकता।

महादेवजी ने अपने भक्त की इच्छा पूर्ण करने के लिए काल को फिर जिलाया और जैसा पहिले उसका रूप था वैसा ही कर दिया। वह लजाता हुआ शिवजी के सामने आया और हाथ जोड़कर निम्नलिखित स्तोत्र से स्तुति करने लगा—

कालान्तक त्रिपुरेश त्रिपुरान्तकर प्रभो।
मदनो हि त्वया देव कृतोऽनङ्गो जगत्पते ॥ १ ॥

दक्षयज्ञविनाशश्च कृतो हि परमाद्भुतः ।
कालकूटं दुःसहं सर्वेषां क्षयकृन्महत् ॥ २ ॥
ग्रसितं तत्त्वया शम्भो ! अन्येषामपि दुर्धरम् ।
लिङ्गरूपेण महता व्याप्तमासीज्जगत्त्रयम् ॥ ३ ॥
लयनाल्लिङ्गमित्युक्तं सर्वैरपि सुरासुरैः ।
यस्यान्तं न विदुर्देवा ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ ४ ॥
लिङ्गस्य देवदेवस्य महिमानं परस्य च ।
नमस्ते परमेशाय नमस्ते विश्वमङ्गल ॥ ५ ॥
नमो नमो कारणकारणाय ते
नमो नमो मंगलमंगलात्मने ।
ज्ञानात्मने ज्ञानविदां मनीषिणां
त्वमादिदेवोऽसि पुमान् पुराणः ॥ ६ ॥
त्वमेव सर्वं जगदेकबन्धो
वेदान्तवेद्योऽसि महानुभावः ।
महानुभावैः परिकीर्तनीयस्त्वमेव
विश्वेश्वर विश्वमान्यः ॥ ७ ॥
त्वं पासि लुम्पसि जगत्त्रितयं महेश
स्रष्टासि भूतपतिरेव न कश्चिदन्यः ।

इस प्रकार स्तुति कर काल ने राजा श्वेत से कहा—हे राजन्! इस संसार में आपसे बढ़कर और कोई मनुष्य नहीं। सचराचर संसार पर शासन करनेवाले भगवान् महेश्वर को आपने अपने वश में कर लिया है। आपने मुझे शङ्कर भगवान् से अभय दिला दिया, इससे सम्पूर्ण जगत् को भी जीतनेवाला मैं आपके वश में होगया हूँ।

राजा ने मेघगम्भीर वाणी से कहा कि हे काल! आप तो शिवजी के एक रूप ही हैं। आप ही संसार की स्थिति और संहार के करनेवाले हैं। इस लिए आप तो संसार भर के पूज्य हैं। इस प्रकार अनेक स्तोत्रों से स्तुति करते हुए महाकाल और यमराज अपने लोक को चले गये और वहाँ जाकर अपने दूतों से कहने लगे कि हे दूता! जो मनुष्य भस्म रमाये हों, रुद्राक्ष धारण किये हों, जटाजूट से विभूषित हों और शिवजी को नियम से नमस्कार करते हों, उन्हें तुम लोग कभी इस लोक में मत लाना। उनको दूर ही से नमस्कार कर छोड़ देना। जो लोग शिवजी की पूजा करते हैं, वे साक्षात् शिव हैं। जो लोग एक भी रुद्राक्ष धारण किये हों, ललाट में त्रिपुण्ड लगाये हों और पञ्चाक्षर मन्त्र का जप किया करते हों, तुम लोग उनका सदा सम्मान करना। जिस देश में, जिस राज्य और जिस ग्राम में शिव-भक्त न दिखायी दें, उसे श्मशान से भी बढ़कर समझना, वहाँ के लोगों पर तुम यथेच्छ शासन करना। सब दूतों ने नम्र सिर

से उनकी आज्ञा मान ली और उन्हीं के कथनानुसार कार्य करने का निश्चय कर लिया।

शिवजी ने राजा श्वेत को अभयदान दिया और अनेक वर देकर अन्तर्धान होगये। उनका वर पाकर राजा श्वेत वहीं भगवान् की आराधना करने लगे। समय आने पर उन्हें सायुज्यमुक्ति मिल गयी और वे परम पद को प्राप्त होगये।

भगवान् शङ्कर संसार भर के भरण-पोषण करनेवाले हैं। वे सदैव जगत् का कल्याण करते रहते हैं। संसार भर के दुष्टों का दमन करके वे इस संसार की स्थिति सुधारे रहते हैं। स्कन्दपुराण में लिखा है:—

एवंविधो यो भुवनैकभर्ता सदाशिवो लोकगुरुः स एकः।
दाता प्रहर्ता निजभावयुक्तः सनातनोऽयं जगदेकबन्धुः ॥८८॥

(माहेश्वर खं० केदार खं० ३२ अ०)



बानबेवाँ रत्न

अर्जुन ।

जयद्रथ द्वारा बालक अभिमन्यु की मृत्यु का समाचार सुनकर वीर अर्जुन शोक से मूर्छित होगये और होश आने पर बोले कि मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि जयद्रथ मरण के भय से धृतराष्ट्र के पुत्रों को छोड़कर भागेगा नहीं तो मैं कल उसको अवश्य मार डालूँगा। यदि मैं संग्राम में ऐसा न करूँ तो मुझे वीर और पुण्यवानों को मिलनेवाले पद न मिलें। यदि जयद्रथ को न मारूँ तो चुगलखोर, साधुओं की निन्दा करनेवाले, परनिन्दा करनेवाले, धरोहर मारनेवाले और विना देवार्पण किये उत्तम पदार्थों का भोजन करनेवाले लोग जिन नरकों में पड़ते हैं, उनमें मैं भी पड़ूँ। यदि मैं जयद्रथ को न मारूँ तो साधु और गुरुओं का तिरस्कार करनेवालों को जो गति मिलती है तथा ब्राह्मण, गौ और अग्नि को पैर से छूनेवाले, जल में थूकने या मलमूत्र करने वाले वा उषाकाल में सोनेवाले (स्वपतां च तथोषसि) तथा शीत से डरकर स्नान न करनेवाले और रणभूमि से डरनेवाले क्षत्रियों की एवं कन्या बेचकर रुपया लेनेवालों की (कन्यां शुल्के प्रदायिनः ॥ ४२ ॥ द्रो पर्व अ० अ० ७३) तथा ब्राह्मण को दान देने की प्रतिज्ञा करके पीछे लोभवश न देनेवाले की जो गति होती है, वही गति मेरी भी हो। यदि कल सूर्य के अस्त

समय तक उस दुष्ट को न मार सकूँगा तो मैं जलती हुई अग्नि में कूदकर जल जाऊँगा ।

जब इस तरह अर्जुन ने जयद्रथ के वध की प्रतिज्ञा की, तब महाबाहु श्रीकृष्णचन्द्रजी अर्जुन से कहने लगे कि हे अर्जुन ! तुमने अपने भाइयों से सलाह किये बिना ही वाणी से सिन्धुराज के बध की प्रतिज्ञा करली है । मेरी भी सम्मति नहीं ली और इस बड़े भारी काम को करने का बीड़ा उठा लिया । न कर सके तो क्या आप-हम सब लोगों के हँसने के योग्य न होंगे । इस प्रकार वार्त्तालाप करते-करते कुछ रात व्यतीत हो जाने पर राजाओं की तथा अर्जुन की आज्ञा लेकर श्रीकृष्णचन्द्रजी अर्जुन के तम्बू से राजभवन में गये और वहाँ पहुँचकर उन्होंने आचमन किया ।

उनके साथ २ अर्जुन भी आचमन करके पवित्र होगये । तब तक विनीत स्वभाववाले सेवकों ने त्रिनेत्र महादेवजी को अर्पण करने के लिए बलि (पूजन की सामग्री) लाकर दे दी । अर्जुन ने प्रसन्न मन से गन्धपुष्पों के द्वारा श्रीकृष्ण को अलंकृत करके रात्रि में दी जानेवाली बलि शिवजी को अर्पित करदी । तदनन्तर श्रीकृष्णचन्द्रजी ने मुस्कराते २ अर्जुन से कहा कि हे अर्जुन! तुम सो जाओ, अब मैं तुम्हारा कल्याण करने को जा रहा हूँ ।

ऐसा कहकर कृष्णजी दारुक को साथ लिये अपने तम्बू में पहुँचे और बहुत बातों को विचारते २ शय्या पर लेट गये ।

तदनन्तर कुछ देर सोचकर अर्जुन के कल्याण करने की इच्छा-वाले भगवान् कृष्णजी शय्या से उतरकर योग धारण करके अर्जुन के शोक तथा दुःख दूर करनेवाले कार्य में लग गये ।

इधर अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने का विचार करते २ सो गये और स्वप्न में अपने पास गरुड़ध्वज कृष्ण को आते हुए देखा । धर्मात्मा अर्जुन प्रेमपूर्वक स्वागत करके सामने खड़े होगये। अपने सामने खड़ा देखकर श्रीकृष्णचन्द्रजी ने कहा— हे पार्थ ! अपने मन में किसी प्रकार का खेद न करो । शोक से काम विगड़ जाता है ! तुम्हें जो काम करना हो, उसे करो । जो पुरुष उद्योग नहीं करते, शोक करते हैं, उनके लिए वही शोक शत्रुरूप हो जाता है। ऐसा कहते २ भगवान् ने कहा—पाशुपत नामक एक प्राचीन और श्रेष्ठ अस्त्र है, तुम्हें उस अस्त्र का ज्ञान होजाय तो कल जयद्रथ को अवश्य ही मार डालोगे। यदि तुम्हें अस्त्र का ध्यान न हो तो तुम अपने मन में उन देव देव शिवजी का ध्यान कर (अथाज्ञातं प्रपद्यस्व मनसा वृषभध्वजम्) तुम उन *महादेवजी का ध्यान किये चुपचाप बैठे रहो। भगवान् शङ्कर के प्रसन्न होने पर तुम्हें वह महाबाण मिल जायगा।

---

* तं देवं मनसा ध्यात्वा जप आस्स्व धनंजय ।
ततस्तस्य प्रसादात्त्वं भक्त प्राप्स्यसि तन्महत् ॥२१॥ (अ० ८०)

श्रीकृष्णजी की इस बात को सुनकर अर्जुन आचमन करके भूमि में बैठ गया और एकाग्र चित्त से श्रीशिवजी का ध्यान करने लगा। ध्यानावस्था में उसने अपने को श्रीकृष्ण-जी के साथ आकाशमार्ग में उड़ते हुए देखा।

* थोड़ी ही देर बाद सिद्ध व चारणों से सेवित, प्रकाशमान अलौकिक भावों को देखता हुआ सूर्य तथा अग्नि के समान प्रकाशमान हिमालय पर्वत को देखा। उस पर्वत पर पहुँचा तो पर्वत के अग्र भाग पर बैठे हुए सहस्रों सूर्यों के समान देदीप्यमान, शूल और जटाधारी, सहस्रों नेत्रों से विचित्र अङ्गोंवाले, महाबली भगवान् शिवजी को देखा। उनके पास कितने ही तेजस्वी भूतगण उनकी सेवा में रत थे।

अनेक ब्रह्मज्ञानी ऋषि दिव्य स्तुतियों से उनकी स्तुति कर रहे थे। सब प्राणियों की रक्षा करनेवाले ऐसे वृषभध्वज शङ्करजी का दर्शन करके धर्मात्मा श्रीकृष्णजी और अर्जुन ने माथा टेक कर प्रणाम किया। तदनन्तर वाणी, मन और बुद्धि से उन सनातन ब्रह्म शिवजी की स्तुति करते हुए कहने लगे:—

आप जगत् के आदि कारण, विश्वकर्मा, अजन्मा, ईशान, अच्युत, मन से भी परे, साकार मूर्ति, आकाश, वायु और तेज के भण्डाररूप हैं। आप जगत् के सिरजन करनेवाले

* वासुदेवस्तु तं दृष्ट्वा जगाम शिरसा क्षितिम्।
पार्थेन सह धर्मात्मा गृणन् ब्रह्म सनातनम्॥४३॥ (म० द्रोणपर्व अ० ८)

और पृथ्वी के पर प्रकृत रूप हैं। आप देव, दानव, यक्ष और मनुष्यों के साधनरूप, योगियों के परम धामरूप, ब्रह्मवेत्ताओं के लिए ब्रह्म तत्त्व के भण्डार (दृष्टं ब्रह्मविदान्निधिम्) प्रत्यक्ष दिखानेवाले, चराचर जगत् के बनाने और नष्ट करनेवाले हैं।

आप काल के समान कोप करनेवाले, महान्, उदार, गुण, ऐश्वर्य आदि सूर्य के गण और प्रताप आदि के उत्पत्ति-स्थान हैं। इस प्रकार मन वाणी तथा बुद्धि से श्रीकृष्णजी ने स्तुति करके प्रणाम किया।

* सूक्ष्म अध्यात्म-पद को पाने की इच्छा से विद्वान् लोग भी जिनकी शरण लेते हैं, उन कारणात्मा, अजन्मा, श्रीशंकरजी को उन दोनों ने शरण ली। अर्जुन ने भी शिवजी को सब प्राणियों का आदि कारण तथा भविष्यत् और वर्तमान का उत्पादक जानकर वारंबार प्रणाम किया।

लोकादिं विश्वकर्माणमजमीशानमव्ययम्।
मनसः परमं योनिं खंवायुंज्योतिषां निधिम् ॥४४॥
स्रष्टारं वारिधाराणां भुवश्च प्रकृतिं पराम्।
देवदानवयक्षाणां मानवानाञ्च साधनम् ॥४५॥

---

* यं प्रपद्यन्ति विद्वांसः सूक्ष्माध्यात्मपदैषिणः।
तमजं कारणात्मानं जग्मतुः शरणं भवम् ॥ ४८ ॥

योगानां च परं धाम दृष्टं ब्रह्मविदान्निधिम् ।
चराचरस्य स्रष्टारं प्रतिकर्त्तारमेव च ॥ ४६ ॥
कालकोपं महात्मानं शुक्रसूर्यगुणोदयम् ।
ववन्दे तं तदा कृष्णो वाङ्मनोकायबुद्धिभिः ॥४७॥

उन दोनों नर नारायणों को आया हुआ देखकर प्रसन्न शिवजी ने हँसते २ उनसे कहा—हे श्रेष्ठ वीरो! तुम भले आये। प्रवास की थकावट को दूर करके खड़े हो जाओ और तुम्हारा जो मनोर्थ हो उसको शीघ्र ही बताओ। तुम दोनों जिस काम के लिए आये हो उस काम को मैं अवश्य पूरा करूँगा। तुम अपना कल्याण करनेवाला वर माँगलो, मैं तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करनेवाला वरदान दूँगा।

श्रीशंकरजी की बात सुनकर पवित्र चरित्रवाले महाबुद्धिमान् श्रीकृष्णजी और अर्जुन दोनों हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक दिव्य स्तोत्र से श्रीशंकरजी की स्तुति करने लगे। उन्होंने कहा—भव, सबके प्रभु शर्व, सबकेसंहार करनेवाले, रुद्र, वरद, पशुओं के पति, उग्र और कपर्दीको हम सर्वदा प्रणाम करते हैं। महादेव, भीम, त्र्यम्बक, शान्ति, ईशान, दक्ष के यज्ञ को विध्वंस करनेवाले और अन्धकासुर को मारनेवाले शिवजी को हमारा अनेकशः प्रणाम है। स्वामिकार्तिकेय के पिता, नीलकण्ठ, वेधा, पिनाकी, हविष्य, मूर्ति, सत्य, सदा व्यापक, ऐसे आपको हम प्रणाम करते हैं। विलोहित, धूम्र, व्याध, किसी से न हारे हुए,

नीलकेश, शूलधारी, दिव्य नेत्रोंवाले, सब देवताओं से स्तुति पानेवाले, वृषभध्वज, मुण्डजटाधारी, ब्रह्मचारी, जल में तप करनेवाले, ब्रह्मवेत्ता, अजित, विश्वात्मा, विश्वस्रष्टा, विश्वव्यापक, सेवा करने योग्य, प्राणियों के मूल स्थान, आपको हम वारंवार प्रणाम करते हैं। ब्रह्म, शर्व, शंकर और शिव को नमस्कार है, वाचस्पति और प्रजापति को प्रणाम है॥ ६२॥ विश्व के स्वामी को हम नमस्कार करते हैं, महत्तत्वादि के पति, सहस्र शिर और सहस्र भुजाओंवाले मृत्युरूप शिवजी को हम प्रणाम करते हैं। सहस्र नेत्र चरणों और असंख्य कर्म करनेवाले आपको प्रणाम है, हिरण्य वर्ण तथा हिरण्य कवचधारी आपको प्रणाम है, भक्तों के ऊपर कृपा करने वाले आपको प्रणाम है। हे प्रभो! हमारा वर नित्य सिद्ध हो।

तदनन्तर प्रसन्न चित्त अर्जुन ने हाथ जोड़कर सब तेजों के निधि भगवान् शंकर की ओर देखा। नित्य नियम के अनुसार शङ्कर को समर्पित रात्रि का बलिदान, जो श्रीकृष्णजी को चढ़ा दिया था, उसको भी श्रीशंकरजी के पास पड़ा हुआ देखा। तदनन्तर अर्जुन तथा श्रीकृष्णजी ने शिवजी की भक्तिपूर्वक पूजा करके शिवजी से प्रार्थना की कि हे भगवन्! मैं आपसे दिव्य अस्त्र लेना चाहता हूँ।

शस्त्र पाने के लिए अर्जुन की प्रार्थना को सुनकर श्रीशिवजी ने मुस्कुराते हुये श्रीकृष्ण और अर्जुन से कहा—हे नरश्रेष्ठ! तुम जिस मनोर्थ के लिए आये हो उसको मैंने जान

लिया और तुम्हारी चाही हुई वस्तु मैं तुम्हें दूँगा। हे शत्रुओं का नाश करनेवाले! पास ही अमृत से भरा हुआ एक दिव्य सरोवर है, आज के बहुत दिनों पहले मैंने उसमें अपना दिव्य धनुष और बाण धर दिया था उसको तुम सरोवर से निकाल लावो।

श्रीकृष्ण और अर्जुन "बहुत अच्छा" कहकर श्रीशङ्कर के गणों को अपने साथ लेकर दिव्य ऐश्वर्योंवाले उस दिव्य सरोवर की ओर चले। उस सूर्य के समान तेजस्वी सरोवर पर पहुँचकर उन्होंने जल के भीतर एक भयानक सर्प देखा। वह अपने मुख से अग्नि के सदृश लम्बी ज्वालाओं को उगल रहा था। उसके सहस्र मस्तक थे। यह देखकर श्रीकृष्ण और अर्जुन हाथ जोड़कर श्रीशिवजी को प्रणाम करते हुये उस महासर्प के पास गये। वेद को जाननेवाले वे दोनों एकाग्र मन से अप्रमेय शिव को (अप्रमेयं प्रणमतो गत्वा) प्रणाम करके शतरुद्री का पाठ करने लगे।

शिवजी के प्रभाव से वे दोनों महासर्प अपने सर्परूप को छोड़कर शत्रुओं को मारनेवाले धनुष बन गये। इस चमत्कार से प्रसन्न हुए महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन उन कान्तिमान् धनुषों को उठाये भगवान् शङ्कर के पास आये और वह धनुष-बाण उनको दे दिये। तदुपरान्त भगवान् शिवजी की पसली में से एक नीललोहित नामक ब्रह्मचारी निकला उस ब्रह्मचारी ने वीरासन से बैठकर धनुष और बाण को उठा

लिया और विधिवत् वाण चढ़ाकर खींचा। उस समय अचिन्त्य पराक्रमी अर्जुन उस धनुष की प्रत्यंचा, मूठ और बैठक आदि सबको ध्यान से देखता रहा, उसने उसके चलाने के मन्त्रों को भी याद कर लिया और भगवान् शिवजी ने अर्जुन को वह पाशुपतास्त्र दे दिया।

* शिवजी से पाशुपत अस्त्र पाकर प्रचण्ड पराक्रमी अर्जुन के रोंगटे खड़े होगये और वह अपने को कृतकृत्य मानने लगा। श्रीकृष्ण और अर्जुन महेश्वर से आज्ञा लेकर अपनी छावनी की ओर चले आये। ये सब बातें अर्जुन को स्वप्न-वत् प्रतीत हुईं और रात्रि बीत गयी।

सबेरे दैवेच्छा से आये हुए व्यासजी को प्रणामकर अर्जुन ने कहा—हे महर्षे! जिस समय संग्राम में मैं अपने बाणों से वैरियों को मार रहा था, उस समय अग्नि के समान तेजस्वी एक पुरुष को हर समय अपने आगे २ चलता हुआ देखा करता था। वह जलते हुए त्रिशूल को उठाकर जिस दिशा को चला जाता था, उस दिशा में ही मेरे वैरी काँपकर पृथ्वी पर गिर पड़ते थे। वास्तव में तो वही पुरुष सेनाओं का संहार करता था; मैं केवल पीछे जाता था। हे

---

* ततः पाशुपतं दिव्यमवाप्य पुनरीश्वरात्।
संहृष्टरोमा दुर्धर्षः कृतं कार्यममन्यत॥ २३॥
(महा० द्रोण पर्व अ० २)

भगवन् ! वह पुरुष कौन था ? वह अपने हाथों से त्रिशूल को नहीं छोड़ता था तो भी उस तेज के प्रभाव से उसके त्रिशूल से हजारों वीर उत्पन्न होते थे।

व्यासजी ने कहा—हे अर्जुन ! जिन महापुरुष श्रीशङ्कर का तुझे दर्शन हुआ था, वह * प्रजापति ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के आदि कारण हैं। वे सब प्राणियों के अन्तःकरणरूप पुरी में शयन करते हैं। इस लिए वे अन्तर्यामी रूप से सब जगत् का शासन करते हैं। वे ही भूः, भुवः, स्वः, इन तीनों लोकों के शरीररूप हैं, वे ही सब लोकों के ईश्वर हैं और राजाओं के समान बाहर रहकर भी सबको नियमों में रखते हैं। वे ही सबके स्वामी और सबको वरदान देनेवाले हैं, वे ही तीनों भुवनों के ईश्वर श्रीशङ्करजी हैं इस लिए तू उनकी शरण ले।

वह जगत् के कारणरूप (जगद्योनिं जगद्रूपं जयिनं जगतो गतिम्) बीजरूप, विजय पानेवाले, जगत् की गति, विश्व के आत्मा, विश्व के रचनेवाले, विश्व के मूर्ति, यश पाने-वाले, विश्व के ईश्वर, विश्व के नेता, कर्मों के फलदाता, कल्याणकर्ता, स्वयम्भू, भूत, भविष्यत् और वर्तमान को उत्पन्न

---

* प्रजापतीनां प्रथमं तैजसं पुरुषं प्रभुम् ।
भुवनं भूर्भुवं देवं सर्वलोकेश्वरं प्रभुम् ॥
ईशानं वरदं पार्थ दृष्टवानसि शंकरम् ।
तं गच्छ शरणं देवं वरदं भुवनेश्वरम् ॥ १० ॥

करनेवाले, तीनों लोकों को धारण करने वाले, तीनों लोकों के आधार, ईश्वर, सनातन मूर्त्ति, पृथ्वी को धारण करनेवाले, महा कष्ट से ज्ञात होनेवाले और भक्तों को अनुग्रह करके वर देनेवाले हैं। शङ्कर के दिव्य पार्षद अनेक रूपों को धारण करनेवाले हैं।

हे अर्जुन! महा भयानक और रोंगटे खड़े करनेवाले इस युद्ध में महाधनुषधारी, अश्वत्थामा कर्ण और कृपाचार्य से सुरक्षित सेना का भगवान् शङ्कर के सिवाय दूसरा ऐसा कौन पुरुष है, जो मन से भी पराजय कर सके। * जो भक्त अनन्य भाव से सदा सबके ईश्वर, वरदान देनेवाले और कल्याण-कर्ता, उमापति भगवान् शङ्कर की उपासना करते हैं, वे इस लोक में सुख पाकर अन्त में परम गति को पाते हैं। इस लिए हे कुन्तीनन्दन! तूभी उन शान्त मूर्ति श्रीशङ्कर को सदा नमस्कार कर।

अपने भक्तों पर दया करके संसार से तारनेवाले, तीर्थ-रूप, वे जटाजूटधारी, ब्रह्मा आदि को भी माया में भ्रमानेवाले

---

* ये भक्ता वरदं देवं शिवं रुद्रमुमापतिम्।
ये ह्यनन्येन भावेन सर्वेशं समुपासते ॥ ७ ॥
इह लोके सुखं प्राप्य ते यान्ति परमां गतिम्।
नमस्कुरुष्व कौन्तेय तस्मै शान्ताय वै सदा ॥ २८ ॥
(द्रो० पर्व० अ० २१)

सब लोकों के आश्रयदाता, विष्णुरूप से वरदान देनेवाले, ब्राह्मणों के रक्षक, ब्राह्मणों के प्रिय (ब्रह्मण्यं ब्राह्मणप्रियम्) ॥ ४१ ॥ शरणागतों के रक्षक, (प्रपद्ये शरणं देवं शरण्यं) उन भगवान् शङ्कर की दो मूर्त्ति हैं। उनको वेदवेत्ता ब्राह्मण ही जानते हैं।

(१) एक मूर्ति घोर (भयङ्कर)

(२) दूसरी शिव (कल्याणकारिणी)। ये दोनों मूर्त्तियें भी अनेक प्रकार की हैं। जैसे—

(१) अग्नि और व्यापक सूर्य शङ्कर की घोर मूर्त्ति हैं और यातुधान उसकी पूजा करते हैं।

(२) जल और ज्योति उनकी सौम्य मूर्त्ति है (सौम्या तु पुनरेवास्य आपो ज्योतिषि चन्द्रमाः प० ८ अ० २१०) * पुराण, वेद, वेदाङ्ग, आत्मज्ञान का निश्चय करनेवाले उपनिषद् आदि ग्रन्थों में जो परम रहस्य बताया गया है, वह महेश्वर देव ही हैं। अजन्मा भगवान् महादेव के ये और इससे भी अधिक गुण हैं। हे पाण्डुपुत्र! मैं हजार वर्ष तक कहता रहूँ तो भी उनके गुणों को पूर्ण रीति से नहीं कह सकता।

---

* वेदांगः सोपनिषदः पुराणाध्यात्मनिश्चयाः ।
यदत्र परमं गुह्यं सहिदेवो महेश्वरः ॥ ९ ॥
ईदृशश्च महादेवो भूयाँश्च भगवानजः ।
न हि सर्वे मया शक्या वक्तुं भगवतो गुणाः ॥ १० ॥

जब सब प्रकार के ग्रहों से ग्रसे हुये और सब प्रकार के पापोंवाले पुरुष उनकी शरण में जाते हैं, तो शरणागतवत्सल शङ्कर भगवान् उनके ऊपर अत्यन्त प्रसन्न होकर उनको ग्रह-बाधा से तथा पापों से मुक्त कर देते और उनके ऊपर दया करते हैं। उनको आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, धन और बहुत सी कामनायें देते हैं, यदि वे कोप करते हैं तो सबका नाश कर देते हैं, इन्द्रादि सब देवताओं के पास जो कुछ है, वह सब उनका ही ऐश्वर्य कहा जाता है। (इन्द्रादिषु च देवेषु तस्य चैश्वर्य्य-मुच्यते।) * वे सब मनुष्यों के शुभ तथा अशुभ कामों में व्याप्त हैं, वे अपने ऐश्वर्यके प्रभाव से सब कामनायें पूरी कर सकते हैं, वे भूतों के नियन्ता होने से जगत् के ईश्वर और महेश्वर कहलाते हैं, वे महादेव असंख्यरूप होकर जगत् में व्याप्त हो रहे हैं। उन देवदेव शिव का मुख समुद्र में रहकर जलरूप हवि को पीता रहता है, वह बडवामुख कहलाता है। वे महादेव नित्य काशी में निवास करते और जितेन्द्रिय एवं वीर संन्यासियों के निवासस्थानरूप हैं। काशी में मनुष्य इनका ही पूजन करते रहते हैं जो पुरुष महात्मा शिव के

---

* महेश्वरश्च भूतानां महतामीश्वरश्च सः।
बहुभिर्बहुधा रूपैर्विश्वं व्याप्नोति वै जगत्॥ १५॥
तस्य देवस्य तद्वक्त्रं समुद्रे तदधिष्ठितम्।
बडवामुखेति विख्यातं पिबत्तोयमयं हविः॥ १६॥

लिङ्ग की अथवा प्रतिमा की पूजा करता है, वह मनुष्य नित्य और महती लक्ष्मी को पाता है।

पूजयेद्विग्रहं यस्तु लिंगञ्चापि महात्मनः।
लिंगपूजयिता नित्यं महतीं श्रियमश्नुते ॥१४१॥

(महा० द्रोण पर्व अ० २१०)



तिरानबेवाँ रत्न।

अयोध्यापति राजा सालङ्कायन।

पूर्वकाल में सूर्यवंश में सालङ्कायन नाम के एक राजा हुए थे। उनकी राजधानी अयोध्या * में किसी को मृत्यु रोग और वृद्धावस्था नहीं थी। वह राजधानी बावली कुवाँ और तालाबों से युक्त कुबेर की अलकापुरी की नाईं और इन्द्र की अमरावती की तरह देवताओं द्वारा रची हुई के समान थी, जहाँ राजा के द्वारा महायज्ञों से देवताओं का यजन किया गया था। अतएव वह धन और धान्य से युक्त थी। वहाँ की गौवें अभीष्ट समय में दूध देनेवाली थीं। इस प्रकार बहुत काल बीत गये। एक समय उस देश में बारह वर्ष की अनावृष्टि हुई। सब देशवासी मनुष्य और पशु मरने लगे। घास और लता के न

* अजोध्या Ajodhya E. I. रेलवे लाइन पर पड़ता है।

होने से चारों प्रकार के भूतग्राम नष्ट होने लगे। उस समय देवता, दैत्य और मनुष्यों में हाहाकार मच गया। ऐसी अवस्था में राजर्षि सालङ्कायन ने विचार किया कि मैंने जन्म से लेकर आज तक कोई ऐसा पाप नहीं किया, संसार-समुद्र से पार करनेवाले हरि का मैं पूजन करता हूँ, और अब तक ब्राह्मण तथा मुनियों को मैंने यथेष्ट तृप्त किया है। फिर मेरे राज में ऐसी घटना क्यों घट रही है। यह सोचकर राजा अपने कुलगुरु वशिष्ठ के यहाँ गये और वशिष्ठ को साष्टाङ्ग प्रणाम करके भक्ति-भाव से पूछा कि हे विप्र! यह बारह वर्ष से अनावृष्टि क्यों हो रही है? मुझसे ब्राह्मण या देवताओं का कोई अपराध तो नहीं होगया है, मुझको बड़ा संशय है, आप इसको जान सकते हैं। अतएव कृपा करके कहिये।

वशिष्ठजी बोले—हे महाबाहो! इस अनावृष्टि के कारण को यहाँ आये हुए अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु भृगु, अग्नि, मरीचि, कश्यप, विभाण्ड, जमदग्नि इत्यादि सूर्य के समान तेजस्वी धर्मों के जाननेवाले ऋषियों से पूछो। परम धार्मिक राजा ने उन आये हुए मुनियों का दर्शन कर अर्घ्य, पाद्य आदि से उनका यथा योग्य पूजन किया। तदनन्तर अनावृष्टि का कारण पूछा। तब वे मुनिगण राजा से बोले कि हे राजन्! भूत और भविष्य काल के तत्त्व को जाननेवाले और सात-सात कल्पतक संसार में रहनेवाले सबके गुरु मार्कण्डेयजी का पूजन करो और उनके आश्रम पर जाकर ब्राह्मणों

के साथ विचार करो। जिस धर्म को वे लोग कहें, उसको करो।

राजा उन मुनियों की आज्ञानुसार तत्त्व के जाननेवाले ब्रह्मशर्मा और देवशर्मा इन दोनों मन्त्रियों पर राज्य का भार सौंपकर ब्राह्मणों के सहित नर्मदा के तट पर पहुँचे। उस धर्मारण्य में मुनियों के साथ बैठे हुए मार्कण्डेयजी को प्रणाम करके समीप में बैठ गये। फिर ज्ञानचक्षु मार्कण्डेयजी से राजा ने कहा—हे ब्रह्मन्! आज आपके चरण-कमलों के दर्शन से मेरा सब कुशल है। परन्तु आपसे कुछ भविष्यवार्ता जानने के लिए इन चरणों में आया हूँ। सब वृत्तान्त को जानते हुए मार्कण्डेयजी बोले—जिस देश में महादेवजी नहीं पूजे जाते और रुद्र का भाग नहीं दिया जाता, उस देश में अनावृष्टि, दुर्भिक्ष और मरण अवश्य होता है।

शम्भुर्न पूज्यते यत्र रुद्रभागो न दीयते।
देशे तस्मिन्ननावृष्टिदुर्भिक्षं मरणं ध्रुवम् ॥ ४ ॥

(रे० खण्ड अ० ८५)

उस राज्य की प्रजा नाश को प्राप्त होती है और राजा अल्पायु हो जाता है। ब्राह्मण कर्म से हीन हो जाते हैं, देवताओं के देवता महादेवजी का पूजन न करने से स्वर्ग, मोक्ष और पूर्णभोग ये कुछ भी नहीं प्राप्त होते। ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र आदि सब देवता महादेवजी को पूजते हैं। फिर बेचारे

पापी मनुष्य तथा पापजीवो राजा क्या चीज़ है। जो मनुष्य महादेव का पूजन नहीं करते वे पापभागी प्राणी स्वर्ग, मोक्ष और भोगफल नहीं पाते।

अपूजनात्तथा नित्यं देवदेवस्य शूलिनः।
न स्वर्गो नापवर्गश्च न भोगाश्चापि पुष्कलाः ॥६०॥
ब्रह्मविष्णुसुरेन्द्राद्या अर्चयन्ति महेश्वरम्।
किम्पुनर्मानुषाः पापा राजानः पापजीविनः ॥६१॥
नार्चयन्ति महेशं ये ते नराः पापभागिनः।
न च स्वर्गस्य मोक्षस्य फलं भोगमवाप्नुयुः ॥६२॥

इसलिए हे नृप! नर्मदा के तट पर रुद्रयज्ञ करो और महादेवजी का विधिपूर्वक पूजन करो तब शान्ति होगी। (समर्चय सुरेशानं ततश्शान्तिर्भविष्यति) ऐसा करने से जल बरसेगा और तुम पाप दोष से छूट जाओगे।

राजा ने मार्कण्डेयजी के वचन सुनकर प्रसन्नतापूर्वक यज्ञ की सामग्री तैयार करायी। उनकी आज्ञापूर्वक यज्ञमंडप बनाया। वशिष्ठ, वामदेव, भृगु, अंगिरा इत्यादि ऋषि तथा अट्ठासी हजार वालखिल्य मुनियों को यज्ञ के वास्ते वरण किया। उन ऋषियों द्वारा विधिपूर्वक यज्ञ समाप्त किया गया। तदनन्तर राजा सालङ्कायन ऋत्विज् लोगों का पूजन करके शिवालय में गये और विधि से पूजन तथा अनेक प्रकार से

स्तुति करके नमस्कार किया। तदनन्तर आशुतोष शिवजी राजा को दर्शन देकर बोले—हे राजन्! तुम अभीष्ट वर माँगो।

परम धार्मिक राजा बोले—हे देव! यदि आप वर देना चाहते हैं तो आप सदा इस जगह निवास करें और मेरे राज्य में कभी भी अनावृष्टि न हो तथा मेरी प्रजा वृद्धि को प्राप्त होती रहे। शिवजी "तथास्तु" कहकर अन्तर्हित होगये। भगवान् शिव से वर प्राप्त कर राजा-रानी सामान के सहित मरणीक अयोध्यापुरी को गये। यह उमामहेश्वर का वृत्तान्त मैंने तुम से कहा—जिसको सुनकर तिर्यग्योनि में प्राप्त पशु, पक्षी और सर्पादि तथा वहाँ भी जो परवश या अपने वश में हो शिवलोक को प्राप्त होता है।

एतत्ते कथितं राजन्नुमामाहेश्वरम्प्रति ॥
तिर्य्यग्योनिगताः पापा मृगपक्षिसरीसृपाः ॥१३१॥
अवशः स्ववशो वापि शिवलोकमवाप्नुयात् ॥१३२॥

चौरानबेवाँ रत्न।

राजा सुपर्ण।

एक समय इस पृथ्वी में एक सुपर्ण नामक राजा हुए थे। उनके राज्य में सदा बड़ी उमरवाले मनुष्य होते और उनको हमेशा सुख रहता था। राजा का एक पुत्र बड़ा पराक्रमी हुआ, वह जप ध्यान में हमेशा लगा रहता और सब पृथ्वी, पर्वत और जंगलों में विहार करता था। किसी समय वह हिरनों को मारने के लिए विन्ध्य नामक पर्वत पर गया, जो कि हिरनों और हाथियों से भरा हुआ था। बहुत देर तक वह राजा वहाँ विहार करके आसन पर बैठा। इसी समय वन के बीच में घूमते हुए एक ब्राह्मण को देखा। उससे राजा ने कहा कि हे द्विजोत्तम! पुस्तक हाथ में लिये हुए वन में अकेले तुम क्यों घूमते हो, सो कहो। ब्राह्मण बोला कि हम कान्यकुब्ज से राजकन्या के भेजे हुए आये हैं। राजा बोला कि हे प्रभो! किस काम के वास्ते आये हो, सो दया करके कहो। ब्राह्मण ने कहा कि राजा शिखण्डी कान्यकुब्ज का राजा है। उस राजा के कोई पुत्र नहीं है। बड़े उपायों से उसे एक कन्या हुई है। वह कन्या नर्मदा के प्रभाव से पूर्व-जन्म का स्मरण रखनेवाली और उत्तम व्रतवती है। विवाह के लायक समझकर उससे उसके पिता ने कहा कि इस असार संसार में हम कन्यादान करेंगे। वह कन्या बोली कि जिस समय मैं इच्छा करूँ

उस समय मैं किसी को दी जाऊँ। राजा शिखण्डी ने कहा कि हे महाभागे ! बताओ तो तुमने क्या कहा है ? पिता के वचन सुनकर वह बोली कि हे पिताजी ! इससे पहले जन्म में मैं मोर की स्त्री अर्थात् मयूरी थी। अपने पति के सहित नर्मदा के उत्तर किनारे नागेश्वर के समीप रहती थी। उस गुप्त पुण्यवाले हनूमदीश्वर शिव के वन में मौलसरी और साल वृक्ष के ऊपर अपने पति के सहित इच्छापूर्वक विहार करती थी। एक दिन एक बहेलिये ने मेरे पति के सहित मेरे को मार डाला और हमारे मांस को खाकर तृप्त हो रात में सोया। रात व्यतीत होगयी। सवेरे मेरी हड्डी के टुकड़े लेकर एक चिड़िया आसमान में उड़ गयी। मांस के सहित हड्डियों को देखकर अन्य पक्षी भी वहीं आगये। चिड़ियों के झुण्ड के भय से उसने उस हड्डी को छोड़ दिया। वह हड्डी हनूमदीश्वर के समीप नर्मदा के जल में गिर पड़ी। उस तीर्थ के प्रभाव से मैं क्षत्रियकुल में पैदा हुई और चन्द्रमा के समान मुख-वाली मैं आप जैसे राजा की कन्या हुई हूँ। हे तात ! यदि आप उस नर्मदाजल के समीप किसी को भेजेंगे तो उससे मैं अपने स्थान का सब चिन्ह कहूँगी। अपनी कन्या के वचन सुनकर हे नृप ! राजा ने मेरे से कहा कि हम तुमको बीस गावँ देंगे। तुम नर्मदा के तट पर जाओ। हमने जिस बात की जिज्ञासा की है, सो तुम देखो। जब मैंने स्वीकार कर लिया तो कन्या कहने लगी कि हे विप्रदेव ! हनूमदीश्वर

स्थान में सोमनाथ की बड़ी बहन, सब पापों को नाश करनेवाली नर्मदा के तट पर पहुँचकर नर्मदा से आधे कोस पर एक बड़े से बरगद वृक्ष के समीप एक स्थान पर हड्डियों का ढेर देख पड़ेगा। उसमें से हड्डी लेकर हे द्विजोत्तम! आश्विन शुक्ल १५ को भक्तियुक्त हो स्नान करके महादेवजी का पूजन-कर रात में जागरण करना प्रातःकाल नाभी तक जल में ठहर हड्डी को मट्टी में सानकर पानी में डाल देना और यह कहना कि जिसकी यह हड्डी है, उसकी सुगति होवे।

उसकी बातें सुनकर राजा भी कौतुक वश उस ब्राह्मण के साथ चल पड़ा और कन्या ने जो कुछ कहा था, विधिवत्त किया और उस विधान से नर्मदा के जल में हड्डी डालदी। तदनन्तर उन ब्राह्मण पर पुष्प की वृष्टि हुई और आवाज आयी कि हे ब्राह्मण! वाह! वाह! कुछदेर बाद हनूमदीश्वर में एक दिव्य विमान देख पड़ा। उसमें आरूढ़ हो मृत व्यक्ति शिवलोक में चला गया। तत्पश्चात् परम आश्चर्यमय माहात्म्य का देख वह ब्राह्मण और राजा अनशन व्रत कर शिव-भजन में तत्पर रहते और भगवान् शूलपाणि का ध्यान करते हुए वे दोनों पन्द्रह दिन के बाद मर गये। उसी समय एक विमान आया और उससे आवाज़ आयी कि हे नृपश्रेष्ठ! विमान पर सवार होओ। राजा बोला—जबतक यह ब्राह्मण न चढ़ेगा, तबतक हम नहीं जायँगे। क्योंकि यह द्विजोत्तम उपदेश देनेवाले मेरे गुरु के बराबर है। तब देवता बोले कि

हे राजन्! इस * हनूमदीश्वर के समीप जो मनुष्य मरते हैं, वे सब पापों को नष्ट करके शिवलोक को जाते हैं। हे नरेश्वर! अभी ब्राह्मण के पापों का क्षय नहीं हुआ है। अभी इनका मन स्त्री, धन इत्यादिकों में लगा है। तब राजा ने ब्राह्मण से कहा हे द्विजोत्तम! अधर्म की जड़ एक मात्र लोभ है, तिसको तुम छोड़ दो (त्यज मूलमधर्म्मस्य लोभमेकं द्विजोत्तम), फिर थोड़े ही दिनों में

* हनुमदीश्वर शिवजी व्यासक्षेत्र में ज्ञबलपुर के निकट स्थित हैं। और इनकी उत्पत्ति की कथा इस प्रकार प्रसिद्ध है—

अपने पूज्य पिता के सत्य की रक्षा के लिए मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजी वनवास करने गये। वहाँ मुनि का वेष धारणकर रावण सीता को हर ले गया। तब राम ने सुग्रीव, हनुमान् आदि वानरों की सहायता से लंका पर चढ़ायी की। वहाँ हनुमान्‌जी ने बड़ा पराक्रम दिखाया। उसके वन-उपवनों को तोड़ डाला। अनेक राक्षसों को युद्ध में पीस डाला। रावण के पुत्र अक्षयकुमार का संहार कर दिया। श्रीरामचन्द्रने रावण का वधकर सीता को छुड़ाया। तदनन्तर रामचन्द्रजी अपने दलबल समेत अयोध्यापुरी लौट आये। महाराज रामचन्द्र से छुट्टी लेकर हनुमान्‌जी भगवान् शङ्कर के दर्शनों के लिए कैलास पहुँचे। उस समय नन्दीश्वर शिव-मन्दिर के द्वार पर पहरा दे रहे थे। उन्होंने हनुमान्‌जी को द्वार पर ही रोक दिया और कहा कि राक्षसों के वध से तुम्हारे ऊपर हत्या सवार है, तुम भीतर नहीं जा सकते।

हनुमान्‌जी ने हाथ जोड़ कर कहा कि हे नन्दीश्वर! कृपाकर आप

हनुमदीश्वर शिव और नर्मदा नदी तीर्थ के प्रभाव से तुम स्वर्गको चले जाओगे।

भगवान् शङ्कर से पूछिए कि मेरा यह पाप किस प्रकार छूट सकेगा और मैं कैसे भगवान् के दर्शन कर कृतकृत्य हो सकूँगा। नन्दीश्वर ने उत्तर दिया कि पृथ्वीलोक में परम पावनी नर्मदाजी विराजमान हैं। वे परमपूज्य भगवान् देवदेव के शरीर से उत्पन्न हुई हैं। उनके नाम सुनने से एक जन्म के पाप दूर हो जाते हैं। और नामकीर्तन से दो जन्म के पाप क्षीण हो जाते हैं। उनमें भक्तिपूर्वक स्नान करने से तीन जन्मों के पाप उसी तरह जल जाते हैं, जैसे अग्नि के स्पर्श से सूखी तृण-राशि। इस लिए तुम नर्मदा के पवित्र तट पर जाकर तप करो तो अवश्य तुम्हारी ब्रह्महत्या दूर हो जायगी। नन्दीश्वर के उपदेश के अनुसार हनुमान्‌जी नर्मदा के तीर पर गये और वहाँ पवित्र भाव से नागों का यज्ञोपवीत पहने हुए, समस्त शरीर में भस्म रमाये, डमरू बजाते हुए त्रिशूल लिये अर्द्धाङ्गिनी उमा समेत जटाजूटधारी सर्वकल्याणकारी भगवान् शिव का ध्यान करने लगे। इस प्रकार कठिन तप करते हुए बहुत वर्ष व्यतीत होगये। तब उमा समेत भगवान् शंकर प्रसन्न होकर हनुमान् जी के समीप आये और मधुर, पर गम्भीर शब्दों में बोले कि हे प्रिय वत्स! तुमने बहुत कष्ट किया। अपने लिए तो तुमने ब्रह्महत्या की नहीं थी, अपने स्वामी की सेवा के लिए की थी। अस्तु, मेरे दर्शनों से अब तुम सिद्ध होगये। तुमसे मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ। जो वर माँगना हो माँगो। भगवान् के ऐसे प्रिय वचन सुनकर हनुमान्‌जी साष्टांङ्ग प्रणामकर स्तुति

सब पापों को हरनेवाले कल्याणरूप हनुमदीश्वर तीर्थ के माहात्म्य को जो सुनते हैं, जो हनुमदीश्वर का चिन्तवन भी करते हैं, वे पापों से छूट जाते हैं ।

करने और कहने लगे कि हे महाराज ! मुझे ब्राह्मण–वध–जनित पाप लगा है, कृपया मुझे उससे मुक्त कर दीजिए । भगवान् शिवजी ने उत्तर दिया कि नर्मदा तीर्थ के माहात्म्य से, धर्माचरण करने तथा मेरी मूर्ति के दर्शनों से तुम पापरहित होगये । अपनी ओर से मैं तुम्हें एक वर देता हूँ कि तुम्हारे नाम के स्मरण से मनुष्यों के सब पातक उसी प्रकार भाग जायँगे जैसे गरुड़ को देखकर साँप भाग जाते हैं ।

इतना कहकर उमा सहित भगवान् अन्तर्धान होगये और हनुमान्-जी ने वहीं एक शिवलिङ्ग स्थापित किया । इस लिङ्ग की साङ्गोपाङ्ग पूजा करने से मनुष्य की सब कामनाएँ पूरी हो जाती हैं । जिसकी हड्डियाँ इस क्षेत्र में पड़ जायँ, वह सुन्दर विमान में चढ़कर गन्धर्वों और अप्सराओं से घिरा हुआ स्वर्गलोक को चला जाता है । स्वयं शङ्कर भगवान् ने बताया है कि इस तीर्थ के सेवन से ब्रह्महत्या, मदिरा-पान, गुरु-पत्नी-गमन, सुवर्ण-चौर्य, धरोहर का अपहरण, मित्र-द्रोह आदि पातक भी बिना किसी प्रयास के नष्ट हो जाते हैं । स्कन्दपुराण में लिखा है कि:-

ब्रह्महत्या सुरापानं गुरुदारनिषेवणम् ।
सुवर्णहरणन्यासमित्रद्रोहोद्भवं तथा ॥
नश्यते पातकं सर्वमित्येवं शङ्करोऽब्रवीत् ॥१००॥ (रेवाखण्ड अ०.८३)

दर्शे सञ्चिन्तयेद्यस्तु मुच्यते नात्र संशयः ॥६७॥
(रेवा खं० अ० १०३)

पंचानबेवाँ रत्न ।

राजा चन्द्राङ्गद ।

किसी समय † आर्यावर्त देश में चित्रवर्म्मा नामक एक प्रसिद्ध धर्मात्मा राजा हुआ था। कहा जाता है कि वह दुराचारियों के लिए यमराज तथा सदाचारियों के लिए धर्म-राज के समान था। सभी शत्रु उसके पराक्रम से काँपते थे। उस समय वह राजा संसार में अद्वितीय पुण्यात्मा कहाने लगा था। चारों ओर उसकी यशश्चन्द्रिका फैल गयी थी। उसी के समान गुणों से सम्पन्न उसके एक पुत्र भी था। वह राजा शिव और विष्णु में अभेद भाव रखता हुआ दोनों की पूजा किया करता था।

बहुत दिनों बाद राजा के एक कन्या उत्पन्न हुई। सब सुलक्षणों से युक्त उस कन्या को पाकर राजा ऐसा प्रसन्न हुआ, जैसे पार्वती को पाकर हिमालय और लक्ष्मी को पाकर समुद्र प्रसन्न हुआ था। कुल-पुरोहित एवं अन्यान्य विद्वान्

† इस देश में।

ब्राह्मणों को बुलाकर उन्हें दान-दक्षिणा से सन्तुष्ट करके राजा ने उसके जन्म का फलाफल पूछा। उनमें से एक भविष्यद्-वेत्ता विद्वान् ने कहा कि हे राजन्! आपकी यह कन्या पार्वती के समान सती, दमयन्ती के समान रूपवती और लक्ष्मी के समान गुणवती होगी तथा इसका नाम सीमन्तिनी होगा। यह दस हजार वर्ष तक अपने पति के साथ आनन्द करेगी। उन्हीं में से एक विचारवान् ब्राह्मण ने कहा—हे महाराज! इस कन्या के चौदहवें वर्ष में वैधव्ययोग पड़ा है। इस प्रकार ब्राह्मणों द्वारा दुविधा की बातें सुनकर राजा बड़े चिन्तित हुए। अन्त में सब ब्राह्मणों की विदाई करके वे राजकाज में लग गये।

उधर राजकुमारी बड़ी होकर जब ब्याहने योग्य होगयी, तब एक दिन उसने अपनी किसी सखी से अपने वैधव्ययोग की चर्चा सुनी। तबसे उसके चित्त में एक प्रकार का वैराग्य हो आया। इस लिए वह मुनिपत्नी मैत्रेयी के पास गयी और बोली—हे मातः! भय से विकल होकर मैं आपकी शरण में आयी हूँ। अतएव आप कोई ऐसा उपाय बतलाने की दया करें, जिससे स्त्रियों को वैधव्ययोग न हो और वे चिरकाल तक सौभाग्यवती बनी रहें। मैत्रेयी बोली—हे पुत्री! तुम शिव-पार्वती की शरण में जाओ और नियम से स्नानादि करके प्रति सोमवार का व्रत करो। इससे तुम्हारी सभी इच्छाएँ पूर्ण होंगी। क्योंकि भावी (प्रारब्ध) भी शिवाराधन से

मिट सकती है*। विधिवत् लिङ्गार्चन एवं पूजन-ध्यान से अवश्य तुम्हारा कल्याण होगा। प्रति दिन उनके नमस्कार मात्र से ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष मिल जाता है। उनके केवल 'शिव' नाम के जपने से सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। इसलिए हे राजपुत्री! तुम शिवालय में जाकर यही उपाय करो।

राजकुमारी मुनिपत्नी के कथनानुसार शिवार्चन में लग गयी। कुछ दिनों के बाद राजा इन्द्रसेन के पुत्र चन्द्राङ्गद से सीमन्तिनी का विवाह हुआ। राजा इन्द्रसेन महाराज नल की धर्मपत्नी दमयन्ती के पुत्र थे। राजा चित्र-वर्मा ने सीमन्तिनी का विवाह बड़े धूमधाम के साथ किया। तदुपरान्त चन्द्राङ्गद भी यहीं (श्वशुरगृह में) रहने लगे।

एक दिन अपने मित्रों के साथ राजकुमार नाव पर सवार होकर यमुनाजी में जल-क्रीड़ा कर रहे थे। संयोगवश नौका भ्रमर में पड़ गयी और वे निषाद सहित वहीं डूब गये। यमुना जी के दोनों तटों पर बैठे हुए लोगों ने हाहाकार मचाया। यह दुर्घटना देखकर लोग दुःखी हुए। महाराज चित्रवर्मा तो यह समाचार सुनते ही मूर्च्छित होगये। वृद्धों के समझाने-बुझाने

---

* भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी। (रामायण)

पर उन्हे कुछ शान्ति मिली। चित्रवर्मा ने अन्तःपुर में जाकर अपनी रानी तथा कन्या को समझाया। अन्त में रानी विलाप करती हुई बोली—"हाय दुर्दैव! हाय विधाता!! आज तक का किया हुआ देवाराधन भी किसी काम नहीं आया। लोग कहते हैं "मृषा न होहिं देव-ऋषि-वाणी" परन्तु हाय! आज मुनिपत्नी मैत्रेयी का भी कथन मिथ्या होगया! कुमारी ने जिस निमित्त से श्रीशङ्करजी का ध्यान और पूजन किया था, वह भी व्यर्थ हुआ। अब क्या किया जाय!" इत्यादि विलपती हुई स्त्री को राजा ने समझा-बुझाकर शान्त किया।

उधर चन्द्राङ्गद के डूब जाने पर उनके भाइयों ने चित्रवर्मा को कैद करके राज्य छीन लिया।

इधर जल में डूबकर चन्द्राङ्गद ने नागनारियों को देखा। जलमें कल्लोल करती हुई नागिनों का ध्यान जब राजतेज से चमकते हुए उस राजकुमार पर गया, तो वे उसे पाताल-लोक में ले गयीं। वहाँ राजकुमार ने अनेक अलौकिक चीजें देखीं। चमकते हुए सिंहासन पर विराजमान तक्षक को देखकर राजकुमार बड़ा चकित हुआ। पातालपति तक्षक ने राजकुमार से पूछा—"हे राजकुमार! तुम डरो मत। धीरज धारण करो और यह बतलाओ कि तुम किसके पुत्र हो?" राजपुत्र बोला—मैं भूलोक में निषध देश के राजा नल के पुत्र इन्द्रसेन का पुत्र हूँ। आज आपके दर्शनों से मैं

कृतार्थ होगया। तक्षक ने कहा कि तुम देवताओं में किसको सर्वश्रेष्ठ समझते और पूजते हो? राजपुत्र बोला—हे पातालेश्वर! हम लोग पार्वतीपति श्रीशङ्करजी की पूजा करते हैं। हमारे कुल के वे ही पूज्य देवता हैं। जिनके अंश से रजोगुणरूपधारी ब्रह्माजी संसार की रचना करते हैं, जिनके सात्त्विक गुणों द्वारा विष्णु भगवान् संसार का पालन पोषण करते हैं और जिनके तमःप्रधान अंश को लेकर रुद्ररूपधारी शङ्करजी संहार करते हैं। अर्थात् जो सभी देवी-देवताओं के भी आदि कारण, बड़े से भी बड़े तथा छोटे से भी छोटे, तीनों लोक के आदि कारण, एक, अद्वितीय, निर्विकार, सच्चिदानन्द और ब्रह्मस्वरूप हैं, ऐसे श्रीशङ्करजी हमारे पूज्य देवता हैं। हम उन्हीं के पूजन-भजन में लगे रहते हैं। जिन भगवान् को भिन्न २ मतानुयायी भिन्न २ स्वरूप और नाम से पुकारते हैं, ऐसे ज्ञानमय अचिन्त्य भगवान् शङ्कर हमारे पूज्य देवता हैं *।

जिसको विद्वान् लोग एक पुराण पुरुष तथा जिसे गुणों के विकार से भिन्न कहते हैं और कोई क्षेत्रज्ञ तथा को तुरीय

---

* यमेकमाद्यं पुरुषं पुराणं वदन्ति भिन्नं गुणवैकृतेन ।
क्षेत्रज्ञमेकेऽथ तुरीयमन्ये कूटस्थमन्ये स शिवो गतिर्नः॥९२॥
यं नास्पृशंश्चैस्यमचिन्त्यतत्त्वं दुरन्तधामानमतत्स्वरूपम् ।
मनोवचोवृत्तय आत्मभाजां स एव पूज्यः परमः शिवो नः ॥९३॥

कहते हैं और अन्य लोग कूटस्थ कहते हैं. वे शिवजी हमारी गति हैं ॥ ९२ ॥ और जिन ज्ञानमय व अचिन्तनीय तत्त्व तथा अमित तेजवाले शिवजी को आत्मज्ञानियों के मन, वचन की वृत्तियाँ स्पर्श नहीं करती हैं, वे श्रेष्ठ शिवजी हमारे पूजनीय हैं ॥ ९३ ॥ जिनकी प्रसन्नता को पाकर विद्वान् लोग इन्द्रपद व निर्मलपद (मोक्ष) को नहीं चहते और कर्म की जंजीर व कालचक्र का उल्लंघन कर निडर घूमते हैं, वे शिवजी हमारी गति हैं ॥ ९४ ॥ और जिनका स्मरण चाण्डाल जन्मवाले मनुष्यों के भी सब पापरूपी रोगों को शीघ्र ही नाश करता है, जिनका पूर्णस्वरूप श्रुतियों से ढूंढने योग्य है, उन शिवजी का हम सदैव पूजन करते हैं ॥ ९५ ॥ स्वर्ग की नदी गंगाजी ने जिनके मस्तक में स्थान पाया है और भगवती जगदम्बिका

यस्य प्रसादं प्रतिलभ्य सन्तो वाञ्छन्ति नैन्द्रं पदमुज्ज्वलं वा।
निस्तीर्णकर्मार्गलकालचक्राश्चरन्त्यभीताः स शिवो गतिर्नः ॥९४॥
यस्य स्मृतिः सकलपापरुजां विघातं सद्यः करोत्यपि च पुल्कसजन्मभाजाम्।
यस्य स्वरूपमखिलं श्रुतिभिर्विमृग्यं तस्मै शिवाय सततं करवाम पूजाम् ९५
यन्मूर्ध्नि लब्धनिलया सुरलोकसिन्धुर्यस्याङ्गगा भगवती जगदम्बिका च।
यत्कुण्डले स्वहह तक्षकवासुकी द्वौ सोऽस्माकमेव गतिरर्धशशाङ्कमौलिः ॥९६॥
जयति निगमचूडाग्रेषु यस्याङ्घ्रिपद्मं जयति च हृदि नित्यं योगिनां यस्य मूर्त्तिः।
जयति सकलतत्त्वोद्भासनं यस्य मूर्त्तिः स विजितगुणसर्गः पूज्यतेऽस्माभिरीशः ९७

(आद्यो० ख०)

पार्वताजी जिनकी गोद में बैठी हैं और तक्षक तथा वासुकी ये दोनों सर्प जिनके कुण्डल हैं. वे अर्धचन्द्रवाले शिवजी हमारी गति हैं॥ ९६ ॥ वेदों का शिखा के अग्रभाग में जिनका चरण कमल है, उनकी जय हो। योगियों के हृदय में जिनकी मूर्त्ति सदैव रहती है, उनकी जय हो और जिनकी मूर्त्ति सब तत्त्वों प्रकाशित करती है, गुणों की सृष्टि को जीतनेवाले वे शिवजी हम से पूजे जाते है॥ ९७ ॥

इस प्रकार अपने इष्ट भगवान् शिवजी की महिमा सुनकर पातालपति प्रेम से गद्‌गद् और रोमाञ्चित होकर उस शिव-भक्त से कहा—"हे नृपकिशोर ! मैं तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम स्वतंत्रता से आनन्दपूर्वक होकर यहीं पर विहार करो, क्योंकि तुम श्रीशिवजी के गूढ़ तत्त्व को जाननेवाले भक्त हो। नागराज के ऐसे वचन सुनकर उदार बुद्धिवाले चन्द्राङ्गद ने हाथ जोड़कर बड़े हर्ष से कहा—हे नागेश्वर ! मेरा विवाह हो चुका है, उत्तम व्रतवाली, शिव-पूजन में परायण मेरी स्त्री सती है। मेरे माता–पिता भी मेरे वियोग से दुःखित होंगे। मैं उनका एक ही पुत्र हूँ। वे पुत्र-शोक से सन्तप्त होंगे। अतः यदि आप मेरे पर प्रसन्न हैं तो यही आज्ञा दें कि मैं अपने घर जाकर अपने माता-पिता को सुखी करूँ। राजकुमार के ऐसे वचन सुनकर नागराज ने चन्द्राङ्गद को अनेक वस्त्राभूषणों द्वारा सन्तुष्ट करके एक दिव्य अश्व पर चढ़ाकर पातालपुरी से पृथ्वीलोक में भेज दिया। राजकुमार के साथ दो

अपने पुत्र, जो बड़े वीर थे, कर दिये और राजपुत्र को धन-धान्य से परिपूर्ण करके यह कहा कि तुम जब और जहाँ मेरा स्मरण करोगे, मैं शीघ्र ही वहाँ आ जाऊँगा।

राजकुमार वहाँ से यमुनातट पर आकर इधर-उधर घूम रहे थे कि इसी बीच राजकुमारी भी अपनी सखी-सहेलियों के साथ यमुना-स्नान के लिये वहाँ आपहुँची। राजकुमार ने उसे चिन्तित देखकर पूछा—तुम कौन हो? तुम्हारे इस बाल्य-काल में ही शोकातुर होने का कारण क्या है? यह सुन कर राजकुमारी तो लज्जित-सी होकर मौन हो रही, पर उसकी एक सखी ने सब वृत्तान्त कह सुनाया। राजकुमारी के पूछने पर चन्द्राङ्गद ने भी अपना कल्पित परिचय देते हुए कहा—हे देवि! मैंने तुम्हारे पति को इसी संसार में देखा है। तुम अपने व्रत में इसी प्रकार दृढ़ रहो। भगवान् शङ्कर की दया से वे शीघ्र ही तुम्हें मिलेंगे। मैं उन्हीं का चिरमित्र हूँ और ये दोनों मेरे दूत हैं। मैं एक सिद्ध महात्मा हूँ। अब मैं उनके घर पर चन्द्राङ्गद के पुनरागमन का शुभ-सन्देश सुनाने जा रहा हूँ।

इधर सीमन्तिनी और उसकी सखियाँ प्रेम से गद्गद होकर शिवजी की महिमा की भूरि २ प्रशंसा करने और विचारने लगीं कि * मुनि की स्त्री ने मुझ से जो कहा था कि बड़ी

---

* मुनिपत्न्या यदुक्तं मे परमापद्गतापि च।
व्रतमेतत्कुरुष्वेति तस्यैव फलमेव वा ॥४४॥

विपत्ति प्राप्त होने पर भी तुम इस व्रत को करना यह उसी का फल है। उधर राजकुमार अपनी राजधानी में पहुँचकर एक उपवन में जा बैठा और अपने शत्रुओं के पास एक दूत को भेजकर संदेश भेजा। दूत ने जाकर राजा से कहा कि इन्द्रसेन को छोड़ दो और उसका राज्य उसे दे दो, नहीं तो उसका पुत्र (चन्द्राङ्गद) पातालपुरी से ऋद्धि-सिद्धि के साथ यहाँ आ गया है। आखिर, तुम लोगों को उसके बाणों द्वारा मरना पड़ेगा। इस लिए अभी से सावधान होजाओ।

इस पर सपत्नीक राजा छोड़ दिये गये। चन्द्राङ्गद के स्वागत के लिए सब लोग नगर से बाहर आये और बड़ी धूमधाम से उन्हें लेजाकर राजगद्दी पर बैठाया। उधर चित्रवर्म को अपने दामाद का आगमन सुनकर अपार हर्ष हुआ। अतः अनेक वस्त्राभूषणों से सुसज्जित असंख्य धन के सहित अपनी पुत्री सीमन्तिनी को उसके ससुराल में भेजा। कुछ ही दिनों में उनके आठ पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई और बहुत दिनों तक शिवजी को पूजती हुई सीमन्तिनी ने पति समेत सोमवार का व्रत किया। इससे उसने पुनः सौभाग्य को पाया और राज्यसुख को भोग करके अन्त में वे दोनों शिवधाम को गये।

प्रसूततनयानष्टौ कन्यामेकां वराननाम्।
रेमे सीमन्तिनी भर्त्रा पूजयन्ती महेश्वरम्॥

दिन दिने च सौभाग्यं प्राप्तं चैवेन्दुवासरात् ।।७७।।

(प्रश्नोत्तरखण्ड ८ अ०)



छान्नबेवाँ रत्न ।

विरक्त महाराज 'भर्तृहरि'

आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व मालवा प्रान्त (राजपूताना) के जगद्विख्यात * उज्जैन नगर में महाराज भर्तृहरि राज करते थे। वे बड़े धर्मात्मा नीति-निपुण, न्यायपरायण तथा विद्वान् पुरुष थे। प्रजा-वत्सल महाराज भर्तृहरि अपनी प्रजा को पुत्र के समान मानते थे। उनके राज्य में सब अपने २ अधिकार का उपभोग करते रहते थे। उनके समय में चोर, डाकू या बदमाशों का नाम भी नहीं था। ऐतिहासिक दृष्टि से उस समय बौद्ध-धर्म का प्रचार जारों पर था। ब्राह्मणधर्म एवं यज्ञादि कृत्यों की अधोगति थी। उस बौद्धकालीन युग में भी महाराज भर्तृहरि की खूब चलती थी। देवी-देवताओं

---

* उज्जैन Ujjain B. B. & C. I. रेलवे का स्टेशन है, वहाँ पर महाराज भर्तृहरि की गुफा है।

पर विशेष विश्वास रखनेवाली इनकी प्रजा में बौद्धमतानुयायियों की दाल न गली, प्रत्युत स्थान २ में विद्वान् ब्राह्मणों द्वारा शिवार्चन होता रहा। स्वयं महाराज भी प्रेम सहित विधिवत् पार्थिव-पूजन किया करते थे। आपने कितने ही बौद्धों को शैव और सनातनी बनाया। सर्वगुणसम्पन्न होते हुए भी राजा भर्तृहरि में एक भारी दोष यह था कि उनका रानी में अधिक प्रेम था। वे विषयासक्त होगये थे। वास्तव में कामिनियों के संसर्ग-वश बुद्धिमान् पुरुष भी सत्पथ से विचलित हो जाता है। किसी कवि ने ठीक कहा है:—

"अविनाशी बिच धार तिन, कुल कंचन अरु नार।
जो कोई इनतें बचै, सोई उतरे पार॥

* चन्द्रमुखी, सिंह के समान पतली कमरवाली, हस्ती के समान मन्थर गतिवाली स्त्री जिसके हृदय में बसी हो तो भला जप-तप कैसे हो सकता है और समाधि का विधान कैसे किया जा सकता है? गम्भीर प्रकृति का पुरुष भी विचलित मन होकर अपने ध्येय से पराङ्मुख हो जाता है। ठीक यही दशा महाराज की भी होने लगी। जब प्राणप्यारी पिङ्गला

---

* द्विजराजमुखी मृगराजकटी, गजराजपराजितमन्दगती।
यदि सा ललना हृदयंगमिता क्व जपः क्व तपः क्व समाधिविधिः॥
(वैराग्यशतकम्)

के कुकृत्यों का उन्हें पता लगा तब उनके हृदय में उसके प्रति घृणा हुई। उसी दिन से राजा के हृदय में एक विशेष प्रकार का वैराग्य होआया और संसार से ऐसी घृणा होगयी कि जिससे उन्हें विषय-भोग विषैले सर्प की भाँति प्रतीत होने लगे। पिंगला के वे सभी गुण दोष के रूप में परिणत होगये। इसके छल-छिद्र युक्त कपट-व्यवहार पापोत्पादक जानकर वे दुःखित हुए। इस लिए नाशवान् सांसारिक क्षणिक सुखों को छोड़ अविनाशी, नित्य, सत-चित्-आनन्दमय भगवान् महेश्वर की आराधना में लग गये और तब से उनका पवित्र ज्ञान भास्कर के समान पृथ्वी पर चमकने लगा। उन्होंने यह सोचा–

"अहौ वा हारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा
मणौ वा लोष्ठे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा
तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यान्तु दिवसाः
सदा पुण्येऽरण्ये शिवशिवशिवेति प्रजपतः" ॥४०॥

शिव-शिव जपनेवाले पुरुष ही धन्य हैं। उनको सांसारिक विषय-वासना कदापि नहीं व्याप्त हो सकती। इस लिए वे सब राज-पाट छोड़कर शिवजी का भजन करने लगे। भगवान् शङ्कर की कृपा से वे इतने बड़े ज्ञानी होगये कि जिससे उनका नाम पृथ्वी पर अमर होगया। इसके प्रमाण के लिए उनका शतकत्रय (नीति-शतक, शृंगार-शतक और वैराग्य-शतक)

देखने योग्य हैं। यहाँ पर मैं भक्तों के विनोद के लिए वैराग्य-शतक के कुछ पद्य उद्धृत करता हूँ।

गङ्गातीरे हिमगिरिशिलाबद्धपद्मासनस्य
ब्रह्मध्यानाभ्यसनविधिना योगनिद्रां गतस्य ।
किं तैर्भाव्यं मम सुदिवसैर्यत्र ते निर्विशङ्काः
कण्डूयन्ते जरठहरिणाः शृङ्गमङ्गे मदीये ॥ १ ॥
आशानाम नदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला
रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी ।
मोहावर्तसुदुस्तरातिगहना प्रोत्तुङ्गचिन्तातटी
तस्याः पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वराः ॥२॥
महादेवो देवः सरिदपि च सैवामरसरि-
द्गुहा एवागारं वसनमपि ता एव हरितः ।
सुहृद्वा कालोऽयं व्रतमिदमदैन्यव्रतमिदं
कियद्वा वक्ष्यामो वटविटप एवास्तु दयिता ॥ ३ ॥
मोहं मार्जय तामुपार्जय रतिं चन्द्रार्धचूडामणौ
चेतः स्वर्गतरङ्गिणीतटभुवामासंगमंगी कुरुव ।
को वा वीचिषु बुद्बुदेषु च तडिल्लेखासु च स्त्रीषु च
ज्वालाग्रेषु च पन्नगेषु च सरिद्वेगेषु च प्रत्ययः ॥४॥

एकाकी निःस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः ।
कदा शंभो भविष्यामि कर्मनिर्मूलनक्षमः ॥ ५ ॥

स्नात्वा गाङ्गैः पयोभिः शुचिकुसुमफलैरर्चयित्वा विभो त्वां
ध्येये ध्यानं नियोज्य क्षितिधरकुहरग्रावपर्यङ्कमूले ।
आत्मारामोऽफलाशी गुरुवचनरतस्त्वत्प्रसादात्स्मरारे
दुःखं मोक्ष्ये कदाऽहं समचरणकरे पुंसि सेवासमुत्थम् ॥६॥

मही रम्या शय्या विपुलमुपधानं भुजलता
वितानं चाकाशं व्यजनमनुकूलोऽयमनिलः ।
स्फुरद्दीपश्चन्द्रो विरतिवनितासंगमुदितः
सुखं शान्तः शेते मुनिरतनुभूतिर्नृप इव ॥ ७ ॥

किं वेदैः स्मृतिभिः पुराणपठनैः शास्त्रैर्महाविस्तरैः
स्वर्गग्रामकुटीनिवासफलदैः कर्मक्रियाविभ्रमैः ।
मुक्त्वैकं भवबन्धदुःखरचनाविध्वंसकालानलं
स्वात्मानन्दपदप्रवेशकलनं शेषा वणिग्वृत्तयः ॥ ८ ॥

चाण्डालः किमयं द्विजातिरथवा शूद्रोऽथ किं तापसः
किं वा तत्त्वविवेकपेशलमतिर्योगीश्वरः कोऽपिवा ।
इत्युत्पन्नविकल्पजल्पमुखरैः संभाष्यमाणा जनै-
र्न क्रुद्धाः पथि नैव तुष्टमनसो यान्ति स्वयं योगिनः ॥९॥

महेश्वरे वा जगतामधीश्वरे,
जनार्द्दने वा जगदन्तरात्मनि ।
तयोर्न भेदप्रतिपत्तिरस्ति मे,
तथापि भक्तिस्तरुणेन्दुशेखरे ॥ १०॥



(अमात्रिक कवित्त)

मख-हन मरदन-मयन नयन त्रय,
बट-तर अयन रजत-परबत-पर ।
चरम-बसन, तन भसम, प्रमथ-गन,
ससधर-धरन गरल-गर-गरधर ॥
हरन-ब्यसन-जन, करन-अमल-मन,
भज मन ! असरन-सरन अमर बर ।
चढ़त बरद, बर बरद प्रनत-रत,
हरत जगत-भय जय जय जय हर ॥

— अर्जुनदास केडिया ।

वैश्य खराड

सत्तान्नबेवाँ रत्न।

शिव-भक्त सुप्रिय वश्य।

सुप्रिय नामक एक वैश्य शिवजी का परम भक्त, धर्मात्मा, सदाचारी तथा शैवधर्म-परायण था। वह निरन्तर भस्म रुद्राक्ष धारण किया करता और बिना शिव-पूजन किये जल तक ग्रहण नहीं करता था। शिवजी को बिना भोग लगाये वह कभी किसी खाद्य पदार्थ का भोजन करना महापाप समझता था।

एक दिन वह वैश्य अपने व्यापारकर्म से निवृत्त होकर नाव द्वारा किसी दूसरी जगह जा रहा था। रास्ते में दैव-वश † दारुक नामक एक राक्षस आया और नौका में स्थित सुप्रिय तथा मनुष्यों को पकड़-पकड़ कर अपनी पुरी में ले गया। वहाँ उन्हें दृढ़ बन्धन में बाँधकर कारागार में डाल दिया। जेल में भी उनकी इस प्रकार शिव-भक्ति देखकर सभी

---

† गोदावरी के किनारे।

मनुष्य चकित होगये। क्योंकि वहाँ भी सुप्रिय वैश्य शिव-पूजन करता हो रहता था। पूजनोपरान्त सुप्रिय शेष कैदियों को शिव-पूजन का उपदेश करता और उनका माहात्म्य समझाया करता था। समय-समय पर मंत्रजप एवं शिवलिङ्ग की पार्थिवपूजा की विधि बतलाकर उन लोगों की अभिरुचि पैदा करता था। थोड़े ही दिनों में कारागार के सभी कैदी शिव-भक्त होगये और तन-मन से श्रीशङ्करजी की आराधना करने लगे। इस प्रकार शिवाराधन करते २ छः मास निर्विघ्न समाप्त होगये।

एक दिन दारुक राक्षस के किसी दूत ने जाकर उससे जेल की सारी अद्भुत बातें कह सुनायीं। दूत बोला—महाराज! आपने जिन्हें कैद किया है, वे सभी किसी देवता की आराधना में निमग्न रहते हैं और उनमें सुप्रिय नामक वैश्य-पुत्र तो निरन्तर ध्यान लगाये रहता है। यह सुना तो क्रोध से लाल होकर दाँत पीसता हुआ राजा एकाएक कारागार में आ पहुँचा। वहाँ दूत की सारी बातें सत्य देखकर वैश्य शिरोमणि सुप्रिय से उसने पूछा—ऐ वैश्य! तू यह क्या कर रहा है? आँखें मूँदकर कौन सा षड्यंत्र रच रहा है? सत्य २ कह, नहीं तो तू आज सीधे यमलोक भेज दिया जायगा। सुप्रिय ने कुछ उत्तर न दिया; बल्कि निडर होकर शिव-ध्यान में ही ज्यों का त्यों लगा रहा। यह दशा देखकर वह अत्यन्त क्रोधित होकर अन्य राक्षसों को उसे मारने के

लिए भेजा। राक्षसों को आते हुए देखकर वह वैश्य शिवजी का ध्यान और उनके नामों का उच्चारण करने लगा।

उसने कहा-हे भक्तभयहारी शिवजी! हे त्रिलोकेश शङ्कर-जी! हे भक्तवत्सल प्रभो!! हे दुष्टदल-निकन्दन दयालु देवदेव!!! अपने इस दीन जन पर दया करो और दुष्ट के हाथ से मेरे प्राणों की रक्षा करके मुझे अपना विमल दर्शन दो। इस प्रकार उस वैश्य की करुण स्तुति सुनकर श्रीशङ्करजी प्रसन्न होगये और उस कारागार की चौहद्दी के मध्य, एक ऊँचे स्थान पर चमकते हुए सिंहासन पर स्थित, ज्योतिः स्वरूप, पंचवदन, त्रिनेत्र, सिर पर गङ्गा तथा ललाट में चन्द्रमा और समस्त अंगों में विभूति रमाये हुए नागयज्ञोपवीती श्रीशङ्करजी ने दर्शन दिया।* वश्य ने फिर स्तुति की। उससे प्रसन्न होकर शिवजी अपनी अनपायनी भक्ति का वरदान देकर पाशुपतास्त्र प्रदान किया। उसी के प्रभाव से राक्षसों का विनाश करके सुप्रिय वैश्य शिवधाम को चला गया। भगवान् ने भी यह आदेश किया कि जो मनुष्य अपने वर्ण-धर्म में स्थित रहता हुआ मेरी आराधना

---

* यह 'नागेश्वर' तीर्थ, गोदावरी के किनारे गंगाखेड़ से ३० मील की दूरी पर अवढ़ा नामक ग्राम में नागनाथ अथवा नागेश के नाम से विख्यात हैं। मनमांड Manmad G. I. P. रेलवे स्टेशन से थोड़ी दूर पर दौलताबाद स्टेशन है, वहाँ से इस शिवमन्दिर को जाना होता है।

करेगा और इस ज्योतिर्लिङ्ग का दर्शन करेगा, वह चक्रवर्ती राजा होगा। आज से इस लिङ्ग का नाम 'नागेश' पड़ गया। इस नागेश लिङ्ग की उत्पत्ति एवं माहात्म्य को जो प्राणी ध्यान से सुनेगा, वह बुद्धिमान्, संसार में समस्त सुखों का भोग करके अन्त में मुक्त होकर परमपद को पावेगा।

एतद्यश्छृणुयान्नित्यं नागेशोद्भवमादरात् ।
सर्वान्कामानियाद्धीमान् महापातकनाशनान् ॥

(शि० पु० श० को० रु० सं० ४ अ०)

अट्ठान्नबेवाँ रत्न

एक शिव-भक्त वैश्य और उसकी भार्या।

वैदित्य नगर में एक वैश्य रहता था। निर्धनता के कारण अपने भाइयों से तिरस्कृत होकर वह अपनी स्त्री को साथ लिये सौराष्ट्र देश के अन्तर्गत* चमत्कारपुर के समीप अनर्तदेश में जा पहुँचा। मार्गश्रम से थक जाने के कारण वह एक सरोवर पर स्नान करने गया। वह सरोवर विविध रंग के सुन्दर कमलों से शोभायमान हो रहा था। उसका निर्मल तथा शीतल जल हृदय को ठण्ढा करनेवाला था। परन्तु भूख-

* चमत्कारपुर (बाडनगर Vadnagar) B. B. & C. I. रेल्वे में पड़ता है।

प्यास के मारे बेचैन उस वैश्य को यह कुछ भी अच्छा नहीं लगा। वह पहुँचते ही उन सुन्दर फूलों को तोड़कर बेचने की धुन में लग गया और सोचने लगा—यदि मैं इन फूलों को ले जाकर नगर में बेचूँ तो खाने-पीने के लिए पर्याप्त धन मिल जाया करेगा। इस विचार से वह फूलों को तोड़कर बेचने के लिए किसी नगर में चला गया; परन्तु वहाँ प्रयत्न करने पर भी कुछ नहीं बिका। जब सूर्यास्त होने को आया, तब वह निराश होकर अपनी स्त्री को साथ लिये किसी एक टूटे-फूटे देवालय में जा पहुँचा। वहाँ जाकर वे दोनों निराहार ही सो रहे। निशीथकाल आधी रात में सङ्गीत की ध्वनि सुनायी दी, जिसे सुनकर वैश्य चौंक पड़ा और जाकर देखा तो अनेक ब्राह्मण वहाँ खड़े होकर बड़ी भाव-भक्ति से देवदेव महाकालेश्वर भगवान् की पूजा कर रहे थे। कुछ लोग नृत्य करते हुए उनकी आरती उतार रहे थे। इसी बीच उस वैश्य ने उन कमल-कुसुमों में से कुछ फूल लेने को कहा। यह सुनकर एक ब्राह्मण ने चौबीस तोला सुवर्ण देकर वह कमल लेना चाहा; परन्तु महाकाल भगवान् के दर्शन के प्रभाव से उस समय उस वैश्य की बुद्धि पवित्र होगयी। मन में विचारने लगा कि मैं फूल व्यर्थ ही बेच रहा हूँ। यदि इन फूलों द्वारा भगवान् का पूजन करूँ तो वे प्रसन्न होकर मुझे सब कुछ दे सकते हैं और मैं मनोवांछित वरदान पाकर कल्याण का भागी बन सकता हूँ।

ऐसा विचारकर और अपनी स्त्री के परामर्श देने पर स्नानादि नित्यक्रियाओं से मुक्त होकर उसने प्रेमसहित कमलों द्वारा भगवान् शङ्कर की पूजा की। लेकिन कुछ ही देर बाद क्षुधा से व्याकुल होने के कारण उस वैश्य की वहीं पर मृत्यु होगयी। वैश्य की वह साध्वी स्त्री भी पति की चिता में भस्म होकर सती होगई। जन्मान्तर में वे दम्पति फिर जन्म लेकर पृथ्वी पर आये। वैश्य कान्तिपुर का राजा हुआ और वैश्य-पत्नी दशार्णव देश के राजा की राजकन्या हुई। यथा समय स्वयंवर में राजकन्या ने इसी राजा को अपना पति स्वीकार किया। इस प्रकार शिव-भक्ति के प्रभाव से वे दोनों राजा-रानी जीते-जी इस लोक में परम ऐश्वर्य्य का उपभोग करके अन्त में शिवलोक कैलासपुरी को सिधारे।

तमः कालेन सम्प्राप्य देहान्तं स महीपतिः ।
सम्प्राप्तः परमं स्थानं जरामरणवर्जितम् ॥

[नागर खण्ड ४७ अ०]

निन्नानबेवाँ रत्न ।

शिव-भक्त धर्मगुप्त ।

प्रभासक्षेत्र में 'धर्मगुप्त' नामक एक सदाचारी वैश्य रहता था। वह धनाढ्य और परोपकारी पुरुष था। उसकी बुद्धि

उदार, शरीर सुन्दर और मन शिव-भक्ति में निरत था। उसकी स्त्री भी उसके अनुकूल तथा प्रियवादिनी थी। वह वैश्य-दम्पति सदैव शिव-पूजन में तत्पर रहते हुए न्याय से काम किया करते और शिवरात्रि का व्रत रहकर शिवाराधन किया करते थे। एक बार शिवालय में वे दोनों पूजा के लिए पहुँचे। वह शिवरात्रि का महापर्व था, दिन में व्रतोपवास रहकर वे रात में शिव-पूजन करने लगे। इसी बीच वहाँ एक चोर आया। उसने विचार किया कि आज शिवरात्रि को शिवमन्दिर में यात्रियों की अपार भीड़ होगी, अतः वहाँ चलने से कुछ गहरा माल अवश्य ही हाथ लगेगा। इस प्रकार वह मन ही मन निश्चय करके एकान्त में छिपकर जा बैठा।

इधर वह पापी चोर चोरी की घात में लगा हुआ था। उधर मन्दिर में नृत्य-गान हो रहा था, सभी लोग तन्मय होकर उत्सव में लगे हुए थे। जब कुछ रात्रि शेष रही तब किसी कार्यवश धर्मगुप्त की स्त्री बाहर निकली। वह चोर स्त्री के बाहर निकलते ही झट उसके कानों से कर्णफूल छीनकर ले भागा। वैश्यपत्नी चोर २ चिल्लाने लगी। कोलाहल सुनकर लोग इधर-उधर दौड़ पड़े। तत्पश्चात् नगर-रक्षक (पुलिस) चोर को ढूँढ़ने के लिए भेजे गये। वह शीघ्र ही पकड़ा गया। चोर ने उस सुवर्ण-भूषण को भय से मुख में छिपा लिया। राज-रक्षकों (सिपाहियों) ने चोर का सिर तलवार से काट डाला। वह वहीं मरकर शिवधाम को चला गया। क्योंकि उस

चोर ने पाखण्डवृत्ति द्वारा भी रात में जागरण किया था। रात्रि में उस जागरण के प्रताप से तथा शिव के सन्निकट मरने के कारण जन्मान्तर में वह चोर सुदर्शन नामक राजा हुआ। जो शिव-भक्ति करके रानी सहित शिवलोक को चला गया। क्योंकि शिवजी के नाम जपने से, उनके लिङ्गार्चन से तथा उनके मन्दिर में निवास करने से मनुष्य परम पद को प्राप्त होता है।

पापानां हरणं शम्भोर्नाम शक्तिर्हि पावनी ।
शक्नोति पातकं तावत्कर्त्तुं नापि नरः क्वचित् ॥
(विद्येश्वरसंहिता २४ अ०)

सौवाँ रत्न ।

शिव-भक्त श्रीकर गोप ।

* उज्जैन नगरी में चन्द्रसेन नामक एक राजा रहते थे वे महाकाल शिव की प्रेमसहित पूजा किया करते थे। एक दिन वे उनके पूजन-ध्यान में मग्न थे। इसी बीच में एक पाँच वर्ष का गोप-बालक अपनी माता के साथ वहाँ आ पहुँचा। उस बालक ने आश्चर्य तथा प्रेम से वह शिव-पूजन देखकर प्रणाम किया और एक विचित्र भाव से उस कौतुक को हृदय में रख शिव-पूजन की उत्कण्ठा प्रकट करने लगा। वहाँ से लौटा

तो मार्ग में प्राप्त एक सुन्दर पत्थर के टुकड़े को घर लाया। उसे शिवलिङ्ग समझ भाव-भक्ति के साथ, विधिवत् पुष्प-चन्दनादि चढ़ाकर उनकी पूजा करने लगा और उनके ध्यान में मग्न होगया।

थोड़ी देर बाद उसकी माता उसे भोजन के लिए बुलाने आयी। जब उसके अनेक प्रयत्न करने पर भी बालक ने नहीं सुना और न ध्यान ही छोड़ा, तब उसकी माता ने नेत्र मूँदकर शिव-ध्यान करते हुए अपने बालक को बलपूर्वक उठा ले चलने का विचार दृढ़ करके उस शिवलिङ्ग को फेंक दिया और बालक को उठा ले चलने लगी। किसी प्रकार घर में पहुँचकर लड़के ने अपने ध्यान-पूजन को माता द्वारा भंग जानकर वह भगवान् की स्तुति करने लगा। वारंवार हा देव-देव, हा परमात्मन! हा शम्भो !! दया करो, मुझे बालक जानकर मेरे अपराधों को क्षमा करो—इस प्रकार विलाप करता हुआ वह मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। कुछ सचेत होने पर उसने नेत्र खोला और देखा तो सामने एक अपूर्व विचित्रता देखने में आयी। उसने देखा कि अपने घर के सामने महाकाल भगवान् का एक विचित्र मन्दिर है जिसमें सोने के किवाड़ लगे हुए हैं, भाँति २ के रत्न जड़े हैं और उसके भीतर एक प्रकाशमान ज्योतिर्लिङ्ग देदीप्यमान हो रहा है। जिसके प्रकाश से रात्रि में दीपक की आवश्यकता नहीं पड़ती। ऐसी विशाल मूर्ति एवं अनुपम मन्दिर देखकर वह

परमानन्दरूप समुद्र में डूब गया। यह सब दृश्य देखकर वह गोपसुत भगवान् महादेव की स्तुति करने लगा।

जब सूर्यास्त होगया तब वह बालक अपने घर आया। वहाँ अपनी माता को देववधू की भाँति सोती हुई जानकर उसे जगाया। माता ने जागते ही अपने घर के सामने एक अद्भुत मन्दिर देखा। पुत्र को सामने खड़ा देखकर उसने प्रेम से गोद में बैठा लिया और प्रेमालिङ्गन करके उस शिव-भक्त बालक की मन ही मन प्रशंसा करने लगी। इधर शङ्कर-जी की अनुकम्पा से गोपी और गोपसुत प्रेम से आँसुओं को बहाते हुए शिवजी के नाम का उच्चारण करते हुए प्रीति से शिव-दर्शन का सुख लूटने लगे।

इतने में महाराज चन्द्रसेन गोपी के पुत्र का आश्चर्य्यमय चरित्र सुनकर उसके घर आये। वहाँ महाकालेश्वर भगवान् की अपूर्व मूर्ति एवं विशाल मन्दिर को देखकर राजा चकित होगये। गोपसुत (श्रीकर) को बुलाकर उसे हृदय से लगाया और उसके इस कार्य की भूरि २ प्रशंसा की और मनही-मन उसके भाग्य को सराहना करने लगे। उस समय वहाँ अद्भुत उत्सव मनाया गया। सब मनुष्य हर्ष-पूर्ण होकर शिव-कीर्तन करने लगे और वह सुखमयी रात्रि क्षण मात्र में बीत गयी।

भगवान् की दया से उसी समय कपिराज श्रीहनुमानजी वहाँ प्रकट हुए और राजा आदि मनुष्यों से कहने लगे—

"*हे मनुष्यो! संसार में भगवान् शिवजी को छोड़कर शीघ्र कल्याणकारी दूसरा कोई नहीं है। तुम लोग गोपसुत को प्रत्यक्ष देख रहे हो, इसने कौन सी तपस्या की है? ऋषि-मुनि हजारों वर्ष तक तप करके जो फल नहीं पाते, वह इसने बालकपन में ही पा लिया। यह आशुतोष महाकाल भगवान् की दया का ही फल है। इस लिए तुम लोग भी इनके दर्शन से कृतार्थ होओ और यह स्मरण रखो कि इस बालक की आठवीं पीढ़ी में महायशस्वी नन्दगोप नामक एक राजा होगा। उसीके यहाँ भगवान् श्रीकृष्णजी पुत्ररूप से जन्म लेंगे और समस्त गोपों को अपनी अद्भुत लीलाओं द्वारा चकित करेंगे। इस प्रकार सन्देश देकर हनुमान्‌जी वहीं अन्तर्धान हो गये। यथा-समय महाकाल भगवान् का पूजन-ध्यान करके श्रीकर गोप और महाराज चन्द्रसेन भी सपरिवार शिवधाम गये। जो इस चरित को मन लगाकर सुने और पढ़ेगा, वह शीघ्र ही अपने मनोरथों को पाकर अन्त में सद्गति को प्राप्त होगा।

कालेन श्रीकरः सोऽपि चन्द्रसेनश्च भूपतिः।
समाराध्य महाकालं भेजतुः परमं पदम् ॥७६॥

(शि० पु० रु० सं० ४ अ०)

---

* ऋते शिवं नान्यतमो गतिरस्ति शरीरिणाम् ॥ ६५ ॥ (शि० पु०

एक सौ एकवाँ रत्न ।

महाकाल और नन्दी वैश्य

प्राचीन काल में * उज्जैनपुरी में नन्दीनामक एक वैश्य रहता था। वह धनी-मानी, क्रियानिष्ठ तथा सज्जन पुरुष था। वह नित्य शिव-पूजन में तत्पर रहता और वेद-वेदांग-शास्त्र-निष्णात विद्वानों द्वारा शास्त्रोक्त विधि (आसन, पाद्य, अर्घ, स्नान, आचमन, वस्त्र, यज्ञोपवीत, गन्ध, अक्षत, पुष्प, चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य, दक्षिणा और आरती आदि षोडशोपचारों) से पूजन कराया करता था। इस प्रकार उस भाग्यवान् नन्दी वैश्य ने कितने ही वर्षों तक अखण्ड पूजन कराया।

एक दिन एक व्याधा घूमता हुआ उस शिवलिङ्ग के समीप आया। निकट के सरोवर में जलपान करके बाहर आया तो नन्दी वैश्य से पूजित उस शिवलिङ्ग को देखा। लिङ्ग के पास जाकर जलपात्र के अभाव में उसने अपने मुँह के कुल्लाद्वारा ही उनको स्नान कराया। फिर एक बिल्वपत्र चढ़ाकर अपने भोजन की सामग्री उन्हें अर्पण कर दी और भोजन किया। फिर मन में नित्य शिव-पूजन का संकल्प करके वह अपने घर लौट आया।

जब दूसरे दिन नन्दी वहाँ पहुँचा तो शिवलिङ्ग को अपवित्र तथा वहाँ के पात्रों को जूठा देखकर बड़ा चिन्तित हुआ।

* उज्जैन Ujjain G. I. P. रेलवे में प्रसिद्ध है।

उसने शिवालय को धोकर पवित्र किया और पूर्ववत् पूजन करके घर लौट आया। घर आने पर उस दिन नन्दी बहुत उदास था। उसके पुरोहित महाराज ने इस प्रकार नन्दी की उदासी का कारण पूछा। तब उसने कहा—हे विप्रदेव! आज मैंने मन्दिर में बड़ी अपवित्रता देखी है। न जाने किसने यह दुष्टता की है। यह जानकर मेरा चित्त बड़ा दुःखित हुआ है। पुरोहित ने कहा—सबेरे चलकर मैं इसका पता लगा लूँगा। आप चिन्ता न करें।

फिर दूसरे दिन नन्दी ने पुरोहित के साथ मन्दिर में जाकर विधिवत् पूजन किया। उस रोज उसे पूजा करते २ दोपहर होगये। ठीक मध्याह्न में उन्होंने महाकाल नामक एक भील (किरात) को देखा। पुरोहित ने सोचा कि शायद यह वही व्याध होगा, जिसने उस दिन मन्दिर को अपवित्र किया था। उस विकराल वेषधारी महाकाल को देखकर नन्दी तथा उसके पुरोहित दोनों डर के मारे वहीं छिप गये। जब वह किरात शिव-पूजन करके अपने स्थान पर चला गया, तब ये दोनों भी अपने घर लौटे। यहाँ आकर वैश्य ने विद्वान् ब्राह्मणों को बुलाया और किरात के किये हुए कामों को सबसे कह सुनाया। ब्राह्मणों ने कहा—हे वैश्यश्रेष्ठ! उस लिङ्ग को अपने घर पर लेआओ। नन्दी ब्राह्मणों की आज्ञा से उस शिवलिङ्ग को वहाँ से उखाड़कर अपने घर पर लाया और नवरत्नों से सुशोभित सुवर्ण की पीठिका बनाकर उसको विधि-

वत् प्राणप्रतिष्ठा करायी। तदनन्तर षोडशोपचार से पूजन किया।

अपने नियमानुसार किरात फिर दूसरे दिन वहाँ पहुँचा। जब शिवलिङ्ग वहाँ नहीं दिखाई दिया, तब वह किरात ऊँचे स्वर से चिल्ला २ कर पुकारने लगा—हे शम्भो! तुम कहाँ गये? मुझे दर्शन दो, नहीं तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगा। हे त्रिपुरान्तक! हे प्रभो!! हे महादेव!!! शीघ्र दर्शन दो, नहीं तो मैं अब एक क्षण भी नहीं जी सकूँगा। इस पर भी उसे दर्शन नहीं मिला, तो उसने क्रोधित होकर, भगवान् का वियोग न सह सकने के कारण अपने उदर से आँतों के मांस को निकाल समीप के गढ़े में डाल दिया और चित्त को स्वस्थकर तड़ाग में नहाकर जल-अक्षत बिल्वपत्र आदि से विधिवत् पूजनकर दण्ड के समान पृथ्वी में गिर गया और चिल्लाया कि हे शम्भो! आप शीघ्र दर्शन देकर मुझे कृतार्थ करें, नहीं तो लीजिए, आपको यह प्राण निछावर है। भूतल पर गिरा हुआ किरात शिव-ध्यान में निमग्न होगया। (ध्यान-स्थित-स्ततस्तत्र किरातः शिवसन्निधौ)

इस प्रकार उसकी अनन्य भक्ति देखकर शृङ्गी भृङ्गी आदि गणों से युक्त, कपूर के समान चमकनेवाले, जटाजूटधारी, भक्त-भयहारी, गंग-सिरधारी, भाल-चन्द्रमा-बिहारी, अद्भुत रूपधारी, नागयज्ञोपवीती, श्रीशंकरजी दर्शन देकर अपने कर-कमलों से उसका हाथ पकड़कर बोले—हे वनचारी!

तुम हमारे भक्त हो। अतः मनवांछित वरदान माँगो। भगवान् शिवजी के वचन सुनकर वह किरात पृथ्वी में दण्ड की नाईं गिरकर बोला—हे शम्भो! *'मैं आपका दास होऊँ' आप मेरे स्वामी होवें और आपकी विमल भक्ति मुझमें बनी रहे। बस, मुझे यही वरदान दीजिये।'

इस प्रकार किरात की निष्काम भक्ति जानकर भगवान् बहुत प्रसन्न हुए और उसको अपने धाम का द्वारपाल बनाकर गणों में मिला लिया। इसी बीच में वहाँ डमरू का शब्द गूँज उठा। उस शब्द को सुनकर नन्दी वैश्य विस्मित हो, उस तपोवन में आया। वहाँ गणों सहित शिवजी का निवास जानकर वह किरात की स्तुति करने लगा; क्योंकि वही द्वारपाल था। बिना उसकी आज्ञा के शिवजी के पास जाना असम्भव था। नन्दी बोला—हे परन्तप! मैं आपकी शरण में हूँ, मुझे भी भगवान् के दर्शन करा दीजिए।

नन्दी का विनम्र वचन सुनकर किरात उसका हाथ पकड़कर उसे भगवान् की शरण में लाया। दयालु शिवजी ने हँसकर किरात से कहा—यह कौन है? इसे तुम गणों के समीप तक कैसे लाये? किरात ने कहा—हे देव! यह आपका भक्त आपकी सदैव विधिवत् पूजा किया करता है। हे

* अहं दासोऽस्मि ते रुद्र त्वं मे स्वामी न संशयः।
एतच्छ्लाघ्यतमं लोके देहि जन्मनि जन्मनि ॥७५॥(के०ख०अ०५)

भक्तवत्सल ! स्वामिन् !! आप नन्दी को भी अपना अनुचर समझिये। श्रीमहादेवजी बोले—हे महाकाल ! मैं नन्दी वैश्य को नहीं जानता। तुम मेरे भक्त और सखा हो। इस लिए हे तात ! तुम जो कहो, मैं वही करूँगा। यह वैश्य तुम्हारा अनन्य भक्त जान पड़ता है और तुम हमारे भक्त हो, इस लिए यह भी हमारा भक्त है। उसी समय दयालु शङ्कर की कृपा से विमान आया और उसने उन दोनों को अपनी पीठ पर बैठाकर कैलासपुरी में पहुँचा दिया। वहाँ वे दोनों विश्वेश्वर की सारूप्य मुक्तिको प्राप्त हुए। इस प्रकार नन्दी और किरात दोनों परम धाम को चले गये।

तयोर्भावं स भगवान् विदित्वा प्रहसन्निव।
उवाच परया भक्त्या भवतोरस्तु वाञ्छितम् ॥७६॥

(केदारखं० ५ अ०)

॥ इति गुप्तखण्ड ॥



परिशिष्ट खण्ड

एक सौ दोवाँ रत्न।

परम शैव आहुक भील।

* किसी समय अर्बुदाचल पर्वत के निकट एक आहुक नाम का भील रहता था। उसकी स्त्री बड़ी पतिव्रता थी। वे दोनों स्त्री-पुरुष परम शिव-भक्त थे। अत्यन्त श्रद्धा से प्रतिदिन शिवजी का पूजन-ध्यान करना इस दम्पति का नित्यकर्म था। बिना शिवजी को भोग लगाये वह कभी भोजन नहीं करता था।

एक दिन भगवान् शङ्करजी अपने भक्त की परीक्षा के लिए भील के घर पर संन्यासी का रूप धारण करके आये। उस समय भोजन की सामग्री लाने के लिए भील कहीं बाहर गया था। संयोगवश उसी समय वह आ पहुँचा। जब आहुक ने अपने घर पर संन्यासी को देखा तो उसने परम प्रसन्न होकर उनका उचित आतिथ्य-सत्कार किया। उसकी प्रेम-परीक्षा के निमित्त आये हुए संन्यासी ने उस भील से अपने ठहरने के लिए जगह माँगी। संन्यासी बोला—हे भक्तप्रवर! मुझे

* अर्बुदाचल सेतुबन्ध रामेश्वर के समीप है।

आज रात भर ठहरने की जगह दे दो, कल सवेरे ही मैं चला जाऊँगा। भील बोला—हे महात्मन्! आपका कहना यथार्थ है; परन्तु मेरी झोंपड़ी बहुत छोटी है, उसमें आपका रहना कैसे होगा। भील का वचन सुनकर महात्माजी जाने को तैयार होगये। तब पतिव्रता भीलनी ने अपने पति से उन्हें स्थान देने को कहा। भीलनी बोली—"हे स्वामिन्! इन महात्मा को ठहरने की जगह देनी चाहिये; क्योंकि ये हमारे अतिथि हैं। अतिथि-सत्कार से बढ़कर गृहस्थ का दूसरा कोई धर्म नहीं है। जिसके यहाँ से अतिथि निराश होकर लौट जाता है, उसका सब पुण्य क्षीण हो जाता है और पाप लगता है, ऐसा मैंने साधु-सन्तों से सुना है। इस लिए आप संन्यासी को साथ लेकर झोंपड़ी के भीतर रहिये और मैं बाहर पहरा दूँगी।

उस समय अपनी भार्या का हितकर वचन सुनकर भील ने विचार किया कि स्त्री को घर से बाहर रखकर सोना उचित नहीं और अतिथि को भी बाहर हटाना ठीक नहीं। इस लिए मुझे ही बाहर रहना और इन दोनों की रक्षा करना उचित है। इस प्रकार आग्रहपूर्वक उन दोनों को भीतर करके स्वयं वह झोंपड़ी से बाहर निकलकर पहरा देने लगा।

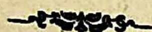
जब आधी रात बीती तो एक विकराल व्याघ्र आया और बचने के लिए अनेक यत्न करने पर भी वह भील को मारकर भक्षण कर गया। भील अपने को न बचा सका और महात्मा के दुःखी होने के भय से उन्हें जगाया भी नहीं। प्रातःकाल संन्यासी ने

देखा कि भील मरा पड़ा है, तो वह बड़े दुःखी हुए। उन्हें चिन्तित जानकर भीलनी ने धैर्य के साथ संन्यासी से कहा— हे महात्मन् ! आप क्यों दुःख करते हैं ? मैं धन्य हूँ-जो मेरा पति आपकी रक्षा के लिए स्वर्ग चला गया। इससे वे भी कृतार्थ होगये। हे स्वामिन् ! मैं भी अब अग्नि में प्रवेश कर, उनके शव के साथ सती होजाऊँगी। प्रेम और हर्ष के साथ इस प्रकार सती होना ही हम स्त्रियों का सनातन धर्म है।

वह भीलनी ज्योंही चितापर जाकर बैठी, त्यों ही उसकी प्रेम-परीक्षा से प्रसन्न होकर साक्षात् शिवजी प्रकट होकर "धन्य हो सती, धन्य हो"—ऐसा कहते हुए बोले—हे अनघे ! मैं तेरे इस आचरण से अत्यन्त प्रसन्न हूँ, तू अपना मनोवांछित वर-दान माँग। भगवान् का यह वचन सुनकर वह प्रेम-मग्न हो मौन रही। उसकी तल्लीनता देखकर आशुतोष भगवान् शङ्कर-जी ने स्वयं कहा—ऐ पुण्ये ! तेरा कल्याण हो। देख, यह संन्यासी जन्मान्तर में हंस होगा, तेरा पति भील निषध देश के राजा वीरसेन का नल नामक पुत्र होगा और तू विदर्भ-नगर के महाराज भीम की पुत्री दमयन्ती होगी। इस प्रकार पृथ्वी पर जन्म ग्रहण कर, राज्यसुखोपभोग करके अन्त में तुम योगियों के दुर्लभ पद (शिवधाम) को प्राप्त करोगी। ऐसा कहकर शिवजी वहीं शिवलिङ्ग रूप से निवास करने लगे। तब से उस लिङ्ग का नाम यतीश पड़ गया। जो मनुष्य इन यतीश महादेव का दर्शन करता तथा इस ब्रह्म हंस अवतार

का चरित्र सुनता या सुनाता है, वह परमगति (मोक्ष) को पाता है।

यतीश-ब्रह्महंसाख्याऽवतारचरितं शुभम् ।
शृणुयाच्छ्रावयेद्यो हि लभते स परां गतिम् ॥ ३९ ॥
(श० रु० सं० २९ अ०)



एक सौ तीनवाँ रत्न ।

शिव-भक्त चण्ड शबर ।

पाञ्चाल देश में एक सिंहकेतु नामक राजा बड़े गुणज्ञ तथा धर्म-परायण थे। इनको शिकार से बड़ा प्रेम था। एक दिन राजा अपने अनुचरों के साथ किसी वन में शिकार खेलने गये। मार्ग में उनके एक अनुचर ने—जो शबर (म्लेच्छ) जाति का था—किसी पुराने टूटे-फूटे शिव-मन्दिर में एक सुन्दर शिवलिङ्ग देखा। अपने पूर्वजन्म के सुकृतवश उस मूर्ति पर शबर का बड़ा प्रेम होगया और उसके मन में सद्भाव उत्पन्न हुआ। अतः उसने बड़े आदर के साथ उस शिवलिङ्ग को अपने पास रखकर राजकुमार सिंहकेतु को दिखलाया और प्रेम से विह्वल होकर कहा—हे महाराज ! यह सुन्दर शिवलिङ्ग देखिये, मैंने अभी मार्ग में पाया है। मेरी इनपर बड़ी श्रद्धा होगयी है। इस लिए आप कृपा करके इनके पूजन की विधि

बतलाइये। हमारे जैसे अधम (मंत्र-तंत्र न जाननेवाले) के ऊपर ये कैसे प्रसन्न हो सकेंगे? हास्यरस की मूर्त्ति उस राजकुमार ने परिहास करते हुए अनुचर से कहा—तू सदैव जल से स्नान करा, आसन पर बिठा, सुगन्धित द्रव्यों एवं पुष्पाक्षतादि से इनकी पूजा करके धूप दीप दिखा और चिता का भस्म लेपन कराकर अपने खाद्य पदार्थों का भोग लगाया कर, बन पड़े तो कभी २ नृत्य-गान भी करना कराना। यदि स्वयं नाच सको तो और भी शीघ्र प्रसन्न हो सकेंगे और चिता का भस्म तो कभी न भूलना।

इस प्रकार परिहासरूप में समझाये जाने पर भी शिव-भक्त चण्ड शबर ने उसे अक्षरशः सत्य माना और दूसरे दिन से भक्ति समेत उपर्युक्त विधि से उस लिङ्ग की पूजा करने लगा। इस प्रकार अपनी स्त्री समेत प्रतिदिन शिव-पूजन करते २ उसने कई वर्षों तक सुखपूर्वक समय व्यतीत किया। एक समय शबर शिव-पूजन के लिए पात्र में चिताभस्म न देखकर भस्म लाने के लिए बाहर गया। जब दूर तक ढूँढ़ने पर भी भस्म न मिला, तब वह निराश होकर घर लौट आया और अपनी स्त्री से कहा कि प्रिये! आज भस्म नहीं मिलता, अब क्या किया जाय? आज मुझ पापी के शिवाराधन में यह बड़ा भारी विघ्न उपस्थित होगया; क्योंकि बिना शिव-पूजन किये मैं एक दिन भी नहीं जी सकता। इस प्रकार पति को विकल देखकर शबरी (उसकी स्त्री) ने कहा—स्वामिन्! आप घबड़ाइये नहीं,

निर्भय होकर शिवध्यान में तत्पर रहिये। मैं अभी भस्म का उपाय करती हूँ। हाँ, एक उपाय यह है कि मैं अपना घर जला कर उसी अग्नि में प्रवेश करके स्वयं जलकर भस्म हो जाऊँगी। उसी भस्म से आप अपना काम कर लीजियेगा। शबर ने अपनी स्त्री के ऐसे प्रेम तथा साहस युक्त वचन सुनकर उसे समझाया। प्रिये! धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष* का सर्वोत्तम साधन शरीर है। ऐसे शरीर को तुम भस्म न करो।

शबरी बोली—प्राणनाथ! इस असार संसार में शरीर नाशवान् है, यह किसी दिन अवश्य नष्ट होजायगा। इस लिए यदि यह किसी देवकार्य या परोपकार के कार्य में लग जाय तो इससे बढ़कर कोई और कार्य नहीं होगा। इतना कहकर शबरी प्रेम में और भी उन्मत्त होकर कहने लगी। जीवन की इतनी ही सफलता है कि दूसरों के लिए अपना प्राण त्याग करे। साक्षात् शिवजी के लिए तो क्या कहना। मैं नहीं जानती कि मैंने पहले जन्म में कोई तप अथवा शिवजी का पूजन किया है,† या मेरे पिता का पुण्य है अथवा माता की कृतार्थता है, जो आज शिवजी के लिए मेरा शरीर अर्पण होता है। इस

* धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलसाधनम्।

† किं वा पुण्यं मम पितुः का वा मातुः कृतार्थता।
यच्छिवार्थं समिद्धेऽग्नौ त्यजाम्येतत्कलेवरम्॥ ३९॥

(ब्रह्म खं० अ० ३७)

प्रकार अपनी स्त्री को भगवान् शङ्कर की भक्ति में अटल जानकर कहा—अच्छा यही सही, यों कहकर फिर बोला—हे प्रिये! तू धन्य है और तेरे इस कर्म द्वारा मैं भी धन्य हूँ। क्योंकि तुम अपने इष्टदेव के लिए फूल की तरह अपना प्राण निछावर कर रही हो। पति की आज्ञा पाकर उस प्रसन्नमना शबरी ने स्नान आदि से पवित्र होकर घर को जला दिया और अग्नि की प्रदक्षिणा कर अपने गुरुजनों को प्रणाम कर हृदय में शिवजी का ध्यान करती हुई (ध्यात्वा हृदि सदाशिवम्) अग्नि में प्रवेश करके बोली—हे देव! हे देव! हे वैश्वानर! मेरी इन्द्रियाँ आपके लिए पुष्प हों, यह पार्थिव शरीर धूप हो, स्नेह युक्त हृदय दीप हो, प्राण द्रव्य हो, ज्ञानेन्द्रियाँ अक्षत हों, जीव फल हो, इस प्रकार हमारे सभी अङ्ग प्रत्यङ्ग आपके पूजन की सामग्री बनें। मैं *यह त्रिलोक का राज्य नहीं चाहती, स्वर्गभूमि और ब्रह्म के अचल स्थान को भी नहीं चाहती, यदि मेरी इच्छा है तो यही कि प्रत्येक जन्म में मैं आपके चरणकमलों में शोभित पराग की भ्रमरी

---

* वाञ्छामि नाहमपि सर्वधनाधिपत्यं न स्वर्गभूमिमचलां न पदं विधातुः।
भूयो भवामि यदि जन्मनि नाथ नित्यं त्वत्पादपंकजलसन्मकरन्दभृङ्गी॥
किञ्जन्मना सकलवर्णजनोत्तमेन किं विद्यया सकलशास्त्रविचारवत्या।
यस्यास्ति चेतसि सदा परमेशभक्तिः कोन्यस्ततस्त्रिभुवने पुरुषोऽस्ति धन्यः॥

(ब्र० सं० म० १७)

बनी रहूँ। हे ईश! आधा क्षण भी मेरा मन आपके चरणारविन्द से अलग न हो। यही मेरी अभिलाषा है। ऐसी प्रार्थना करके वह भीलनी अग्नि में प्रवेश करते ही जलकर भस्म होगयी।

शबर ने भी उस भस्म को बड़े प्रेम से लेकर महेश्वर का पूजन-भजन किया। अन्त में खाद्य पदार्थों का भोग लगाकर विनयपूर्वक रोमाञ्चित हो गद्गद स्वर से अपनी स्त्री का स्मरण करता हुआ भगवान् की स्तुति करने लगा। इसी बीच में नम्र, पवित्र हास्यवाली अपनी स्त्री को देखा तो शबर ने विचार किया कि अग्नि तेज से, सूर्य किरणों से, राजा दण्ड से और ब्राह्मण मन से जलाता है, परन्तु यह स्त्री अग्नि से जल न सकी। इसका क्या कारण है? यह सोचकर विस्मय से युक्त शबर ने अपनी स्त्री से पूछा कि तुम कैसे आगयी; अभी तो अग्नि में भस्म होगयी थीं। वह बोली कि मुझे इस बात का तनिक भी ध्यान नहीं कि मैं अग्नि में जलायी गयी थी। इस प्रकार दोनों में परस्पर बातें हो ही रही थीं कि एकाएक एक अद्भुत विमान जो करोड़ों चन्द्रमा के समान प्रकाशमान, चार शिव-दूतों द्वारा नीयमान, छत्र-चामर समेत देदीप्यमान था, उसके सामने उतर आया। उसी पर स्त्री समेत उस निषाद को बैठाकर वे दूत शिवलोक को चले गये। निषाद-दम्पति ने योगियों के भी दुर्लभ पद को पाकर मन ही मन अपने को तथा अपने पूर्वजों को कृतकृत्य समझा और कहा कि

संसार में वही पुरुष धन्य है, जिसके चित्त में सदैव शिवजी की भक्ति है। उससे अधिक त्रिलोक में कौन धन्य है।

एक सौ चारवाँ रत्न ।

एक बहेलिया ।

* नैमिषारण्य में एक बहेलिया रहता था। वह अत्यन्त कुकर्मी, निर्दयी और पर-धनापहारी था। उसने न कभी व्रत, न दान-पुण्य, न पूजा-पाठ और न जप-तप ही किया। केवल छल-कपट द्वारा मनुष्यों का विशेषतः पथिकों का द्रव्य अपहरण करना उसका नित्य-कर्म था।

एक वार फाल्गुन के कृष्णपक्ष में समस्त पातकों का नाश करनेवाली शिवरात्रि का महापर्व आया। उस समय दूर-दूर के यात्री देवदेव त्रिशूलधारी श्रीशङ्करजी के दर्शन-पूजन के निमित्त नैमिषारण्य में एकत्र हुए। वहाँ शिवजी का एक विशाल मन्दिर था। शिवरात्रि के दिन सभी यात्रियों ने व्रतोपवास रहकर रात में जागरण किया। उन दर्शक मनुष्यों में

* नैमिषारण्य Nimsar E. I. R. रेलवे का स्टेशन है।

बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से विभूषित स्त्रियाँ भी थीं। इस बहेलिये ने शिवालय के निकट जाकर विचार किया कि जब स्त्रियाँ शौचादि के निमित्त बाहर आवेंगी, तब गहरा माल मेरे हाथ लगेगा। इसी आशा से वह मन्दिर के बाहर ही छिपकर एक बेल के वृक्ष पर जा बैठा।

जिस वृक्ष पर वह चोर बैठा, उसके नीचे भी एक शिवलिङ्ग था। पत्तों के गिरने से भगवान् शङ्कर की निष्काम एवं अज्ञात पूजा होगयी। थोड़ी ही देर में चोरों के शत्रु, साधुओं के मित्र भगवान् भास्कर (सूर्य) का उदय हुआ। घड़ी बजने लगी। सभी यात्री प्रातःकाल उठकर पूजन-ध्यान में लग गये। पूजनोपरान्त यात्री नर-नारी लोग अपने २ घर चले गये। उधर चोर भी निराश होकर अपने घर लौट गया। कालान्तर में जब उस बहेलिये की मृत्यु हुई, तब वह शिवरात्रि के जागरण तथा अज्ञात शिव-पूजन के प्रभाव से दशार्ण देश के राजा के घर उत्पन्न होकर एक बड़ा धर्मात्मा और शिव-भक्त राजा हुआ। उसने अपने राज्य में शिव-भक्ति का बड़ा प्रचार किया और कई शिवालय बनवाये। वह स्वयं भी प्रतिदिन शिवलिङ्ग का पूजन करता हुआ प्रति शिवरात्रि के पर्व का उत्सव मनाया करता तथा ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा द्वारा सन्तुष्ट किया करता था। इस प्रकार राज्यसुख का उपभोग करके वह सपरिवार शिवधाम को प्राप्त हुआ। कलिकाल में संसार-सागर से पार होने के लिए इससे सरल उपाय दूसरा कोई नहीं है।

देखिये:—

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्य्या सा नृपसत्तम ।
कलिकाले विशेषेण य इच्छेद्भूतिमात्मनः ॥ ७८ ॥
एषा कृता च शिबिना नलेन नहुषेण च ।
मान्धात्रा धुन्धुमारेण सगरेण युयुत्सुना ॥ ७९ ॥
तथा चैव तु सावित्र्या श्रिया देव्या तु सीतया ।
अरुन्धत्या सरस्वत्या पार्वत्या मेनया तथा ॥ ८१ ॥
इन्द्राण्या च दृषद्वत्या स्वधया स्वाहया तथा ।
रत्या प्रीत्या च गायत्र्या तथाऽन्याभिर्नृपोत्तम ॥८२॥
सर्वाः प्राप्त प्रियान्कामानतिसौभाग्यसंयुताः ॥८३॥

(नागरखं० अ० २२१)

एक सौ पाँचवाँ रत्न ।

एक ब्रह्मराक्षस ।

एक बार एक दुर्जय नामक ब्रह्मराक्षस मदिरा-पान से उन्मत्त होकर, इधर-उधर घूमता हुआ क्रौंचवन में पहुँचा । वहाँ जाकर उसने भगवद्भक्ति में परायण पवित्रात्मा शिवयागी नामक एक ब्रह्मनिष्ठ महात्मा को देखा । देखते ही वह उस शिव-

योगी को खाने के लिए वेग से दौड़ा। विकराल वदन, तीक्ष्ण दाँतों वाले उस भयंकर राक्षस को अपनी ओर आते देखकर भी वह महात्मा पर्वत की नाईं निश्चल तथा समुद्र के समान गँभीर होकर बैठा रहा और अपना ध्यान नहीं छोड़ा। राक्षस ने शिवयोगी को पकड़ लिया। वह राक्षसाधम महात्मा के अङ्गस्पर्श से निष्पाप होकर इस तरह पवित्र एवं दिव्य हो गया जैसे लोहा पारस मणि को छूकर सोना हो जाता है। मृत्तिका जम्बूनदी के स्पर्श से सुवर्ण हो जाती है, कौवा मान-सरोवर को पाकर हंस हो जाता है और मनुष्य अमृत को पीकर अमर हो जाता है। साधु-सन्तों* के दर्श-स्पर्शां से शीघ्र ही मनुष्य सद्गति को प्राप्त होता है। इस लिए सत्संग दुर्लभ है।

शिवयोगी मुनि के अङ्गों के सफेद भस्मकणों से, भूख प्यास से व्यग्र एवं भयंकर वह वनचारी राक्षस तृप्त हो गया। उसी क्षण उसकी तमोगुणी बुद्धि नष्ट होगयी और

* साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थीभूता हि साधवः।
तीर्थं फलन्ति कालेन साधुः सद्यसमागमात्॥

† तथैव तु महात्मानो दर्शन-स्पर्शनादिभिः।
सद्यः पुनन्त्यघांपेतान् सत्सगो दुर्लभो ह्यतः॥

(ब्र० खं० १५ अ० १४ श्लो०)

‡ महत्संगस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च॥ (ना० भक्ति० सू०)

पूर्वजन्म का स्मरण होआया। झट वह योगी के चरण-कमलों पर गिरकर विनय करता हुआ बोला—हे दयानिधे! हे योगीश्वर!! हे आनन्द-सागर!!! मुझ पर कृपा करिए और प्रसन्न होकर मेरे पापों का विनाश करिए। इस प्रकार की स्तुति सुनकर शिवयोगी बोले कि तुम कौन हो? कैसे यहाँ रहते हो और क्यों ऐसे महाक्लेश में पड़े हुए दुःख सह रहे हो? राक्षस बोला—हे महात्मन्! मैं २५ जन्मों से नाना प्रकार की योनियों में जाकर कष्ट भोगता रहा हूँ। सर्वप्रथम मैं पिशाच-योनि में गया। फिर व्याघ्र अजगर, भेड़िया, ग्रामशूकर, गिर-गिट, कुत्ता सियार, सुरहीगाय, मृग, गदहा, बानर, गीध, नेवला, कौवा, भालू, वनमुर्गी, विडाल, मैंढक, अजा, मछली, चूहा, उल्लू और हाथी—इत्यादि २४ योनियों में भ्रमता हुआ अपने कर्मविपाक से आज पचीसवें जन्म में दुर्जय नामक ब्रह्मराक्षस होकर क्षुधा-पिपासा से व्याकुल इधर-उधर घूमता हुआ आपको खाने के लिए यहाँ आया था। सो आपकी दया से मेरा शरीर दिव्य होगया और बुद्धि विमल होगयी। इस समय हमारे मन में दया, प्रेम और सत्कर्म का सद्भाव उत्पन्न होगया है। इस लिए हे योगिराज! आप मुझे यह बतलाने की दया करें कि आपको यह प्रभाव (तेज) कैसे मिला? किस देवबल, मंत्रबल अथवा तपोबल से आपको यह शक्ति मिला है—जिससे मेरे सरीखे अधर्मी तथा कुकर्मी राक्षस के भी सब पाप आपके स्पर्शमात्र से

दूर होगये। इस समय मैं आपकी शरण में आया हुआ एक तुच्छ अनुचर हूँ।

योगी ने कहा—हे भद्र ! यह शिवजी की विभूति का फल है। वे हमारे आराध्य देव हैं। उनके भस्म-स्पर्श से ही तुम ऐसे दिव्य शरीरधारी होते हुए अनेक जन्मों के पापों से मुक्त होगये हो। सिवाय भस्म के और कौन सा पदार्थ ऐसा हो सकता है—जो तुम्हारे सरीखे पापी को भी इस प्रकार शुद्ध करके शिवधाम दिला सके। अब तुम अपने अभीष्ट स्थान को जाओ। यह सब भस्म का माहात्म्य है।

को वेद भस्मसामर्थ्यं महादेवादृते परः।
दुर्विभाव्यं यथा शम्भोर्माहात्म्यं भस्मनस्तथा ॥५१॥

(ब्रह्म० खं० १५ अ०)



एक सौ छवाँ रत्न।

शिव-भक्त महानन्दा वेश्या।

एक अत्यन्त सुन्दरी महानन्दा नामवाली वेश्या थी। वह धन-ऐश्वर्य्य से युक्त, गानविद्या में निपुण और शिव-भक्ति में परायण थी। वह सदैव प्रेमसहित भस्म-रुद्राक्ष को धारण करती तथा निरन्तर 'शिव' नाम का जाप किया

करती थी। पार्वती समेत भगवान् शङ्कर की विधिवत् पूजन करते समय वह नृत्य-वाद्य द्वारा उन्हें सदैव रिझाया करती थी। उसने अपने पास एक बन्दर और मुर्गा पाला था। उन दोनों को रुद्राक्ष की सुन्दर मनियों का भूषण पहनाकर शिवजी के सामने करताल बजाती हुई नचाया करती थी। इस प्रकार उस वेश्या का समय बड़े सुख के साथ बीतता था।

एक दिन उस वेश्या की निष्कपट भक्ति से प्रसन्न होकर पतित-पावन भगवान् शङ्करजी वैश्य के वेष में उसकी परीक्षा के निमित्त आये। उस समय वे मस्तक में त्रिपुण्ड्र लगाये, रुद्राक्ष की माला पहिने, समस्त अङ्गों में भस्म रमाये, हाथ में सुन्दर कङ्कण पहिने और शिवनाम जपने में आसक्त थे। रत्नों से शोभायमान उस वैश्य-शिरोमणि को देखकर सुन्दरी वेश्या ने शुद्ध भाव से हर्षपूर्वक उनका आदर-सत्कार करके उनके बैठने को पवित्र आसन दिया। वैश्य के हाथ में सुन्दर कङ्कण को देखकर ललचाती हुई महानन्दा बोली—'हे वैश्यशिरोमणे! स्त्रियों के पहिनने योग्य आपका यह रत्नजटित कर-कङ्कण मेरे मन को लुभा रहा है।'

इस प्रकार उस वेश्या की इच्छा देखकर वह वैश्य हँसते २ बोला—हे सुन्दरी! यदि तुम्हारा मन इस कङ्कण पर मोहित है तो तुम इसे ले सकती हो, पर इसका मूल्य क्या दोगी? परिहासरूप में महानन्दा ने कहा—मैं वेश्या हूँ। यदि आप

अपना कर-कङ्कण मुझे दे देंगे तो मैं तीन रात तक आपकी प्रिया (स्त्री) बनी रहूँगी । वैश्य ने कहा—यदि तुम्हारा वचन सत्य है तो लो, यह कङ्कण मैं तुम्हें दिये देता हूँ । साथ ही एक रत्नमय शिवलिङ्ग भी देकर वैश्य ने कहा—हे प्रिये ! यह रत्नजटित शिवलिङ्ग हमारे प्राणों से भी अधिक प्यारा है । इसको बड़ी सावधानी से किसी पवित्र स्थान में रखना । इतना कहकर वैश्य चुप होगया और वेश्या नृत्यगृह में शिवलिङ्ग रखकर सुखपूर्वक सोगयी । दूसरे ही दिन उसके नृत्यमण्डप में आग लग जाने के कारण अनेक बहुमूल्य वस्तुओं के साथ वह रत्नजटित शिवलिङ्ग भी जलकर चूर-चूर हो गया । यह दुर्घटना देखकर वेश्या तथा वैश्य दोनों ही बहुत दुःखी हुए ।

उस समय शिवलिङ्ग को जला हुआ देखकर वेश्या के हृदय-गत भावों को जानने के निमित्त वैश्य ने अपने मरण की इच्छा प्रकट की । नाना प्रकार की लीला करनेवाले, मनुष्यदेहधारी और कौतुकी भगवान् शङ्करजी महादुःखित होकर उस वेश्या से बोले—हा प्रिये ! अब मैं क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकूँगा । क्योंकि जब प्राणों से भी प्यारा हमारा शिवलिङ्ग नष्ट होगया तब यह अधम शरीर रह कर ही क्या करेगा ? अतएव मेरे लिए तुम शीघ्र ही चिता सजाओ, मैं शिवध्यान में रत होकर अभी अपने प्राण दे दूँगा । ऐसा दृढ़ संकल्प देख वेश्या ने चिता सजाकर आग जला दी और उसमें वैश्य-

रूपधारी वह महापुरुष प्रवेश कर गया। यह देखा तो महानन्दा बड़े विस्मय में पड़कर खेद करने लगी और अपने घरवालों से कहने लगी कि हे महाशयां! मैं इन वैश्य महोदय से एक रत्नजटित कर-कङ्कण लेकर तीन रात के लिए इनकी पत्नी हुई थी। इसी बीच इस प्रकार इनकी मृत्यु होगयी तो मैं भी इनकी चिता में जल मरूँगी। ऐसा न करने से हमारा सत्यव्रत नष्ट हो जायगा। क्योंकि सत्य से ही स्वर्ग तथा मोक्ष मिलता है *।

इस प्रकार सत्य में तत्पर वेश्या अपने बन्धु-बान्धवों के मना करने पर भी अपना सर्वस्व ब्राह्मणों को दान करके पतित-पावन भगवान् शङ्कर का ध्यान करती हुई अग्नि में प्रवेश कर गयी। इस प्रकार अग्नि में प्रवेश करते ही भगवान् शिवजी ने उसे बचा लिया और उसके इस सत्यप्रेम तथा साहस की प्रशंसा करते हुए पंचवदन, त्रिनेत्र, नागयज्ञोपवीती, गङ्गासिरधारी, भाल-चन्द्रमाविहारी, महाप्रभु शिवजी ने उसे दर्शन दिया। इसके अनन्तर अश्रुपूर्ण नेत्र तथा रोमांचित वदनवाली उस वेश्या का हाथ पकड़कर महादेवजी ने कहा—हे सत्यव्रते! तुम्हारे इस कार्य से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए मैं स्वयं वैश्यवेष में आया था।

---

* सत्यः श्रेयः परो धर्म्मः सत्येनपरमा गतिः।
सत्येन स्वर्गमोक्षौ च सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ४८ ॥

अब तुम्हारी परीक्षा हो चुकी, तुम मनोवाञ्छित वरदान माँगो। तुम्हें आज मैं सुर-मुनियों के भी दुर्लभ पद देने को उपस्थित हूँ।

यह आश्चर्यमयी घटना देख महानन्दा विस्मित होकर बोली—हे देवदेव ! मुझे लौकिक सुख-सम्पत्ति नहीं चाहिये। मैं तो केवल आपके चरणारविन्द को चाहती हूँ। अतः यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे अपनी दासी बनावें और मेरे परिवार-वालों को भी अपना परम धाम देवें।

न मे वाञ्छास्ति भोगेषु भूमौ स्वर्गे रसातले।
तव पादाम्बुजस्पर्शादन्यत्किंचिन्न कामये ॥५६॥
(शिवपु०)

एकसौ सातवाँ रत्न।

एक वेश्या।

दक्षिण देश के वाष्कल नामक ग्राम में 'विदुर' नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह दुष्ट, दुराचारी एवं वेश्यागामी था। वह दिन भर अपने घर का काम-काज करता और रात में वेश्या के घर सोया करता था। * ऋतु स्नान के बाद भी वह अपनी उस सुन्दरी स्त्री का परित्याग कर वेश्या से ही रमण करता था।

* ऋतौ भार्यामुपेयात् इति शास्त्रीय नियमः।

इस प्रकार अपने पति का अनाचार देखकर तथा कामदेव की प्रबलता को न सह सकने के कारण ब्राह्मणी ने एक दिन ब्राह्मण से विनयपूर्वक कहा—हे स्वामिन् ! आप प्रति दिन मेरा अनादर करके वेश्या के यहाँ जाते हैं और मैं रूपवती होती हुई भी प्रतिदिन कामवेदना सहती हूँ। मुझ से यह कब तक सहा जायगा ? आप अब से भी मेरे ऊपर दया करें। ब्राह्मण बोला—हे कामिनि ! तुम भी परपुरुष से प्रेम करो और उससे धन लेकर मुझे दो। मैं वेश्या को उस धन से प्रसन्न करूँगा। ऐसा करने से हम दोनों की कामचेष्टा पूरी होगी।

कुछ दिनों तक इसी प्रकार चला। बाद में जब उस कुकर्मी की मृत्यु हुई, तब दैवयोग से एक महापर्व के दिन उसकी स्त्री गोकर्णक्षेत्र में गयी। वहाँ तीर्थस्नान करके उसने एक देवालय में किसी विद्वान् ब्राह्मण द्वारा पुराण की कथा सुनी। उसमें उन्होंने कहा था कि जो स्त्री पर-पुरुष के साथ प्रेम करती है, उस स्त्री के गुह्यस्थान में यमदूत लोग तपे हुए लोहे का सलाका डालते हैं। इस प्रकार भयंकर यमदण्ड सुनकर उस भयभीत ब्राह्मणी ने एकान्त में उस कथावाचक विद्वान् से कहा—हे विद्वन् ! मैंने अनजान में बड़ा उग्र पाप किया है। उसके परिणाम का मुझे बड़ा भय है। मैं बारम्बार काँप रही हूँ। मुझ पापिनी को धिक्कार है, जो क्षणिक सुख के लिए मैंने ऐसी दुर्गति देनेवाला पाप किया। हाय ! मैं उन भयंकर यमदूतों द्वारा रौरवकुण्ड में, तप्त

तेल में पकाए जानेवाले, अग्नि से तपाये और लोहखम्भों में सटाये जानेवाले भयंकर यमदण्डों को कैसे सह सकूँगी ? दस हज़ार अश्वमेध यज्ञ तथा सैकड़ों वर्ष गंगास्नान करने पर भी तो इस पाप से छुटकारा नहीं मिलेगा। मैं अब दिन-रात इसी चिन्ता में रहती हूँ कि कैसे मेरा उद्धार होगा। हे ब्राह्मण देवता ! अब आप ही मेरे गुरु हैं, मैं आपकी शरण आयी हूँ। मेरे उद्धार का कोई उपाय बताइये। इस प्रकार चरणों पर गिरी हुई उस स्त्री को दयालु ब्राह्मण ने उठाया और कहा कि तुम डरो मत। अब मैं तुम्हें तुम्हारे पापों को नष्ट करनेवाला और उत्तम गति देनेवाला उपाय बताता हूँ।

विद्वान् ब्राह्मण ने कहा—"हे ब्राह्मणि ! भगवान् शङ्कर की उत्तम कथा के सुनने से तुम्हारी बुद्धि इस समय विमल हो गयी है। इसीलिए तुम ऐसा कह रही हो।

* किये हुए कुकर्मों को करने पर जिस प्राणी को सन्ताप हो, वह शिवजी का दृढ़ता से स्मरण करे। यह एक उत्तम प्रायश्चित्त है। इस लिए तुम दिन-रात पुरुषोत्तम शिवजी का स्मरण किया करो। इससे समस्त पातक नष्ट हो जाते हैं और प्राणी पवित्र हो जाता है। मेरे कहे उपायों को

* कृते पापे च वै तापो यस्य पुंसः प्रजायते ।
प्रायश्चित्तन्तु तस्यैकं शिवसंस्मरणं परम् ॥ ३८ ॥
तस्मादहर्निशं शम्भुं संस्मरन्पुरुषोत्तमम् ।
न याति नरकं शुद्धस्संक्षीणाखिलपातकः ॥ ३८ ॥

ध्यान से सुनो। पापकर्म जो होगया सो होगया। अब भविष्य में न करना। उत्तम कथा सुनने एवं सत्सङ्गति करने से मन पाप में नहीं जाता। व्रतोपवास पापनाशक होता है। जैसे धोये हुए शुद्ध दर्पण में अपना स्वरूप साफ़ दिखायी देता है वैसे ही सत्सङ्ग तथा पूजन से चित्त शुद्ध होता है। शिव-नाम के जपने से मनोविकार दूर होजाता है। कायिक, वाचिक और मानसिक पापों को शिवजी की निर्मल कथा क्षण भर में नाश कर देती है। सब प्रकार से पवित्र हृदय-वाले लोग शिवधाम में जाकर सद्गति पाते हैं। सांसारिक सभी विषयों से मन को हटाकर उत्तम शिव-भक्ति में अपनी इन्द्रियों को अर्पित करके शिव-कथा सुनने से चित्त शुद्ध होने पर विश्वेश्वर में प्रेम होता है. प्रेम होने से शिवजी के चरणार-विन्द में ध्यान होता है, ध्यान से विमल ज्ञान उत्पन्न होता है और ज्ञान* से मुक्ति मिलती है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि पापी से भी पापी शिवाराधन से निष्पाप होकर सद्गति को प्राप्त करता है। इस लिए हे ब्राह्मणि! अब तुम निश्चिन्त होकर शिवार्चन में लग जावो।"

इस प्रकार ब्राह्मण-गुरु द्वारा सदुपदेश सुनकर वह ब्राह्मणी शिव-पूजन में लग गयी। नित्य-नियमानुसार उनका पूजन-ध्यान करने लगी। वह शिवजी के प्रेम में गद्गद हो आँसुओं

---

* ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः।

की धारा से आर्द्रवदन होकर गिरिजापति भगवान् शङ्कर की इस प्रकार स्तुति करने लगती थी—

"हे विश्वेश्वर, हे विश्ववन्द्य, हे शिवशम्भो! मेरे ऊपर कृपा करो, मैं आपको बार २ प्रणाम करती हूँ। हे चन्द्रभाल, हे शान्तमूर्त्तें, हे गङ्गाधर! हे अमरवृन्दवन्दित-चरण!! हे भक्त-वत्सल भूतेश!!! मुझ दीन के पातकों का संहार करके शरण दो। हे नीलकण्ठ! हे महादेव! हे उमापते! हे महेश्वर! हे जगन्निवास!! हे जगदीश्वर!!! आप आशुतोष और पापनाशक हैं। इस लिए मेरी ओर भी दयादृष्टि करें, मैं प्रणाम करती हूँ।" इस प्रकार वह प्रतिदिन शिवस्तुति करने तथा शिवगुण-गान करने लगी। कालान्तर में जब उसकी मृत्यु हुई तब शिवजी के दूत वहाँ आये और उसे अपने दिव्य विमान पर बैठाकर आनन्द के साथ कैलासपुरी में शिव की शरण में ले गये। वहाँ नन्दी-भृंगी आदि गणों से युक्त दिव्य शिव-परिवार को देख वह ब्राह्मणी विस्मय में पड़ गयी और वाम भाग में श्रीपार्वती, गोद में श्रीगणेश और षडानन तथा अन्यान्य पार्षदों से शोभायमान भगवान् शङ्कर को उसने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। पुलकित अङ्गोंवाली उस स्त्री को पार्वतीजी ने बड़े आदर भाव से अपने निकट बैठाया और उसे अपन दासी बनाकर आनन्दित किया।

एक बार उस स्त्री ने श्रीपार्वतीजी से पूछा—हे स्वामिनि! मेरा पति इस समय कहाँ है और उसकी सद्गति कैसे होगी?

पार्वतीजी ने कहा—वह तुम्हारा दुष्ट पति यमलोक में जाकर नाना प्रकार की यम-यातनाओं को सह कर इस समय विन्ध्यपर्वत पर पिशाच हुआ है। ऐसा सुनकर उसने अपने पति के उद्धार के लिए पार्वतीजी से प्रार्थना की। बारंबार उसकी प्रार्थना सुनकर दयामूर्ति पार्वताजी ने तुम्बुरु नामक गन्धर्व को बुलाकर कहा—हे तुम्बुरु! तुम इस स्त्री के साथ विन्ध्याचल पर्वत पर जाओ, वहाँ क्रूर बुद्धिवाला इसका पति पिशाच-योनि में है। उसके सामने दुर्गतिनाशिनी मेरी प्यारी कथा कहकर उसे निष्पाप करके भगवान् के पास ले आओ। आज्ञा पाते ही वह गण शीघ्र विन्ध्य पर्वत पर पहुँचा और उस पिशाच को शिवाशिव की अद्भुत कथाएँ सुनाने लगा। उन पाप-विनाशिनी कथाओं के सुनते ही वह पिशाच-योनि से मुक्त होगया और दिव्य शरीरधारी होकर स्त्री समेत विमान द्वारा शिवपुरी में ले आया गया। यहाँ आकर वह भगवान् शङ्कर की इस प्रकार स्तुति करने लगाः—

विश्वेश विश्वनिलय स्थितिजन्महेतो
विश्वैकवन्द्य शिव शाश्वत विश्वरूप ।
विध्वस्तकालविपरीतगुणावभास
श्रीमन्महेश मयि धेहि कृपाकटाक्षम् ॥७॥

शम्भो शशाङ्ककृतशेखर शान्तमूर्त्ते
गङ्गाधरामरवरार्चितपादपद्म ।
नागेन्द्रभूषण नगेन्द्रनिकेतनेश
भक्तार्त्तिहृन्मयि निधेहि कृपाकटाक्षम् ॥८॥
श्रीविश्वनाथ करुणाकर शूलपाणे
भूतेश भर्गभुवनत्रयगीतकीर्त्ते ।
श्रीनीलकण्ठ मदनान्तक विश्वमूर्त्त
गौरीपते मयि निधेहि कृपाकटाक्षम् ॥९॥

(ब्रह्मा० खण्ड २२ अ०)

सावधान होकर जो मनुष्य इस पापनाशक स्तोत्र का पाठ करता, इस चरित्र को सुनता तथा दूसरों को प्रेमसहित सुनाता है, वह इस संसार में सुख भोगकर अन्त में सर्वोत्तम गति को पाता है।

य इदं शृणुयान्मर्त्यः कीर्त्तयेद्वा समाहितः ।
शम्भोर्गुणप्रकथनं विचित्रं पापनाशनम् ॥३१॥
परमानन्दजनकं भवरोगमहौषधम् ।
भुक्त्वेह विविधान्भोगान् मुक्तो याति परां गतिम् ॥३२॥

(ब्रह्मो० खं० २२ अ०)

एक सौ आठवाँ रत्न।

एक पक्षिणी।

एक समय किसी से अर्पित नैवेद्य को खाने के लिए एक पक्षिणी शिवालय में आयी जिसके पैरों से अनायास धूलिका मार्जन होगया। उस कर्म के विपाक (फल) से वह उत्तम स्वर्ग को प्राप्त हुई और श्रेष्ठ (उत्तम) स्वर्गसुख भोगकर इस संसार में काशीराज की कन्या हुई। उसका सुन्दरी नाम पड़ा। राजकुमारी सुन्दरी देवी परम भक्ति और श्रद्धा से अपने हाथों शिवालय में मार्जन करती थी। इस तरह शिव-मन्दिर में मार्जन करते देखकर महात्मा उद्दालक ऋषि ने कहा—हे पवित्रे! हे मंदहासिनि!! हे शुभे!!! तुम राजकुमारी होती हुई भी आप ही अपने हाथों संमार्जन क्यों करती हो? हे देवि! तुम्हारे पास बहुत से दास और दासियाँ हैं तुम्हारी आज्ञा से दासियाँ शिव-मन्दिर की सफाई कर देंगी। इस वचन को सुना तो उसने हँसकर कहा—हे महात्मन्! हे ऋषिराज!! जो पुरुष और स्त्रियाँ शिवजी की सेवा करती हैं, वे निश्चय शिवलोक में जाती हैं। जो हाथों से मार्जन, पाँवों से शिव-दर्शन की यात्रा, आँखों से शिव-दर्शन तथा मन से शिवजी का सुमिरन करते हैं, वे उत्तम हैं। जो लोग शिवजी को प्रणाम करते हैं वे उत्तम पुण्यवाले हैं। ऐसी बात सुनकर ऋषि ने विचार किया कि किस पुण्य से यह राजकुमारी हुई

है। उसी समय ऋषि ने ज्ञाननेत्र से सब कुछ जान लिया। भगवान् शिवजी के प्रभाव को जानकर उद्दालक मुनि उत्तम ज्ञान को प्राप्त हुए।

सुन्दर्य्युवाच —

शिवसेवां प्रकुर्वाणाः शिवभक्तिपुरस्कृताः ।
ये नराश्चैव नार्यश्च शिवलोकं व्रजन्ति वै ॥ ६० ॥
संमार्जनञ्च पाणिभ्यां पद्भ्यां यानं शिवालये ।
दर्शनञ्चैव चक्षुर्भ्यां स्मरणं मनसा तथा ॥ ६१ ॥
शिरःप्रणामसंयुक्तं येषां ते पुण्यभागिनः ॥ ६२ ॥

(केदारखं० अ०)

इति ।



गज़ल ।

ऐसा तो करना शंभू जब प्राण तन से निकले ।
शिवनाम रटते-रटते मेरा प्राण तन से निकले ॥
युगल छवि मूरति तिहारी हृदय मेरी बसीहो ॥ऐसा०॥
इन्द्रिय विषय से हटकर तव ध्यान में लगी हो ॥ऐसा०॥
मन आप में डटा हो अरु प्रेम में छका हो ॥ऐसा०॥
मस्तक में प्राण आकर जब योग में रमा हो ॥ऐसा०॥
चिन्तन हो आपका बस शिव शिव रटन लगा हो ॥ऐसा०॥
वरदान यह सदा हो प्रभु आपकी शरण हो ॥ऐसा०॥
शिव आपकी कृपा से साधन सभी सुलभ हो ॥ऐसा०॥

भजन ।

प्रात भयो अब चेत नहीं तो चिड़िया चुंगसि खेत ।
क्षण-क्षण पल-पल अवसर बीते क्यों मूरख तू भयो अचेत॥
आशा-नदी मनोरथ-जल में खाता गोता केहि के हेत ।
राग-ग्रह के पड़्यो फन्द में मोह फाँस में भयो अचेत ॥
तज अज्ञान त्याग विषयन को यही है बन्धन का सब हेत ।
निश्चय पार हुआ चाहो तो कर लो उमारमण से हेत॥
भवसागर तरने के हित यह गौरीशंकर सुन्दर सेत ॥

कजली ।

प्रभु बिन कोई नहीं है तेरा मनवाँ ज़रा बिचारो ना ।
धन परिवार देख मत भूलो यह माया को फँसारो ना ॥प्रभु०
चमक चाँदनी है दो दिन की इनमें तुम उलझानो ना ॥प्रभु०
अन्तहु तोहिं तजेंगे पामर तब तुम होगे दुखारो ना ॥प्रभु०
हृदय कमल बिच उमा शम्भु को जरा निहारो ना ॥प्रभु०
श्रुति सिद्धान्त जान मन इनको परमानन्दहिं मानो ना ॥प्रभु०
प्रभु-पद-कंज निरख तेहि चण महँ होय त्रिताप नशानो ना॥प्रभु०
गौरीशंकर सुखद-सिन्धु में गोता मारोना ॥प्रभु०॥ १॥

कजली ।

आये सावन अति मनभावन पूजो शिवजी को मनलाय ।
पाद्य अर्घ्य आचमन देके बाघम्बर छहराय ॥ आये०
अक्षत गंध पुष्प की माला अंग अंग पहनाय ॥ आये०
धूप-दीप नैवेद्य आरती स्तुति करहु चितलाय ॥ आये०
युगल चरण बिच करहु दण्डवत् मन में मोद बढ़ाय ॥आये०
छत्तर-चामर करहु प्रभू को मन में अति हरषाय ॥आये०
नाच अरु गान करो बहु विधि से ढोल मृदङ्ग बजाय ॥आये०
गौरीशंकर क्या सोचत हो धरो चरण लपटाय ॥ आये०

भक्ति-ग्रन्थमाला की पुस्तकें।



प्रथम संस्करण।

शिव-भक्त-माल पूर्वार्द्ध ... ... ॥।≈) सजिल्द
,, उत्तरार्द्ध ... ... ॥) अजिल्द

परिवर्द्धित संस्करण।

शिव-भक्त-माल पूर्वार्द्ध ... ... ॥)
,, उत्तरार्द्ध ... ... ॥)
शिवपूजा विधान सहित ... ... ।॥)
श्रीकाशीमोक्षनिर्णय जगद्गुरु सुरेश्वराचार्य्यजी
कृत (भा॰ टी॰ सहित) ।-)
शिव-पूजा-विधान—
(पूजा के पदार्थ किस प्रकार प्रयोग में लाने चाहिये इसमें दर्शाया गया है) ।)
द्वादशज्योतिर्लिङ्गमाहात्म्यम् द्वादश स्थानों का पता -)॥

मिलने का पताः—
गौरीशङ्कर गनेड़ीवाला,
गोरखपुर।